गिरिजाकुमार माथुर का काव्य

बनावट और बुनावट

८९१.८०९
मधु/गि

गिरिजा कुमार माथुर के काव्य की
बनावट और बुनावट

गिरिजा कुमार माथुर के काव्य की बनावट और बुनावट

डॉ० (कु०) मधु माहेश्वरी
एम० ए०, एम० फिल०, पी-एच० डी०
प्रवक्ता : हिन्दी विभाग
गिन्नीदेवी सत्यनारायण सेकसरिया गर्ल्स डिग्री
कालिज, चिड़ावा (राजस्थान)

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

•

© मधु माहेश्वरी

•

मूल्य : ७०.००

प्रथम संस्करण : १६८८

•

लोकभारती प्रेस
१८, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

प्राक्कथन

"प्रस्तुत पुस्तक 'गिरिजा कुमार माथुर के काव्य की बनावट और बुनावट' आगरा विश्वविद्यालय के लिये लिखा गया मेरा शोध-प्रबन्ध है और इस पर मुझे सन् १९८४ में पी-एच० डी० की उपाधि मिली थी।

अपनी रोमानी संवेदना, सामाजिक यथार्थ, युगीन परिप्रेक्ष्य में मानव की परिस्थितियों के सही मूल्यांकन तथा नवीन वैज्ञानिक चेतना की सरस एवं सरल अभिव्यक्ति के साथ-साथ टेकनीक के क्षेत्र में किये गये क्रान्तिकारी परिवर्तनों के कारण श्री गिरिजा कुमार माथुर निःसन्देह नयी कविता की एक ऐसी पृथक् और महत्वपूर्ण इकाई के रूप में सामने आते हैं जिनके काव्य के समग्र मूल्यांकन की उपेक्षा नहीं की जा सकती। कवि के कृतित्व की इसी महत्ता को ध्यान में रखते हुए उन पर संरचनात्मक दृष्टि से सम्यक् शोधपरक अध्ययन सम्पन्न करके एक अभाव की पूर्ति करने की बलवती इच्छा जाग्रत हुई। उस इच्छा को साकार रूप देने के लिये मैंने अपने गुरुवर श्रद्धेय डा० विद्यानिवास मिश्र से सम्पर्क किया तथा अपनी इच्छा व्यक्त की। फलतः उनकी प्रेरणा, परामर्श तथा आदरणीय डा० वागीशदत्त पाण्डेय के कृपापूर्ण निर्देशन का प्रतिफल ही इस शोध प्रबन्ध के रूप में सामने है। यद्यपि मैंने यथासंभव विषय के साथ न्याय करने की चेष्टा की है, फिर भी पूर्णता का दावा तो कोई भी नहीं कर सकता। प्रस्तुत शोध-कार्य के रूप मे संरचनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में मेरा यह प्रयास यदि हिन्दी साहित्य की समृद्धि में थोड़ा सा भी योगदान दे सका, और विद्वानों के बीच कुछ परितोष अनुभव किया गया तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूंगी।

आदरणीय डा० पाण्डेय की सौजन्यपूर्ण उदारता एवं अनन्य कृपा के लिए क्या कहूँ जिनके सुयोग्य निर्देशन में मुझे यह शोध प्रबन्ध लिखने का सुअवसर मिला। वस्तुतः यह उन्हीं की शुभाशंसाओं का सुफल है कि किसी विषय की मात्र प्रारम्भिक रूपरेखा आज इस आकृति में अपनी परिणति पा सकी है।

श्रद्धेय डा० विद्यानिवास मिश्र (निदेशक, क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय, आगरा) ने इस प्रबन्ध-लेखन के आद्यंत प्रवाह में मेरी बहुविध उलझनों तथा शंकाओं के जो समाधान किये तथा अपने सुचिन्तित वक्तव्यों एवं परामर्शों द्वारा यथावसर मेरी दृष्टि को स्पष्ट और संतुलित करते हुए मुझे सदैव ही आगे बढ़ने की जो प्रेरणा प्रदान की, उनके इस पितृतुल्य स्नेह, उदाराशयता एवं अगाध पांडित्य के प्रति मैं अपना हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ।

स्वयं कविवर श्री माथुर से भी साक्षात्कार करने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ है। अस्वस्थ होने पर भी अपने स्नेहिल व्यवहार से उन्होंने जिस प्रकार मेरी अनेक शंकाओं का निवारण किया, उसके लिये मैं उनकी हृदय से अनुगृहीता हूँ।

पूज्य पिताजी श्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी से भाषा-परिमार्जन तथा सामग्री-संकलन की दिशा में प्राप्त वात्सल्यपूर्ण निर्देशों के प्रति न तो मैं आभार प्रदर्शित कर सकती हूँ, न कृतज्ञताज्ञापन, केवल श्रद्धावनत हूँ। अपने ज्येष्ठ भ्राता डा० ओंकार प्रसाद माहेश्वरी (वरिष्ठ प्रवक्ता हिन्दी, आगरा कालेज, आगरा) का सम्यक् मार्गदर्शन भी मुझे बराबर प्राप्त हुआ है। वे मेरे अपने बड़े भाई ही हैं, अतः औपचारिक आभार व्यक्त कर मैं अपने ऊपर उनके सहज स्नेह को हल्का नहीं करना चाहती। "सूरसागर परियोजना" के मेरे सहयोगी डा० कृष्ण गोपाल कपूर को भी उनके रचनात्मक सहयोग के लिए हार्दिक धन्यवाद देती हूँ।

अपने इस शोध-कार्य को इतने अल्प समय में ही मैंने पूर्ण कर दिया, इसके लिये आगरा विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय तथा क० मुं० हिन्दी एवं भाषा-विज्ञान विद्यापीठ के पुस्तकालयाध्यक्ष को धन्यवाद देती हूँ।

शोध के सुन्दर टंकण का श्रेय श्री मुकेश कुमार शर्मा (मुकेश कॉमर्शियल इंस्टीट्यूट, जयपुर हाउस, आगरा) को है, जिसके लिये मैं उनको आभारी हूँ।

मैं उन सभी विद्वानों एवं लेखकों के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ जिनकी रचनाओं का उपयोग मैंने अपने इस शोधकार्य के लिये प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में किया है।

अपने इस शोध-प्रबन्ध के मुद्रण प्रकाशन के लिए उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा जो मुझे ३,०००/- (तीन हजार रुपये) की उदारता पूर्वक वित्तीय सहायता प्रदान की गई उसके लिए भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

उत्कृष्ट हिन्दी साहित्य की विख्यात प्रकाशन-संस्था 'लोकभारती, इलाहाबाद' की मैं हृदय से ऋणी हूँ जिन्होंने मेरे इस प्रयास को प्रकाशनार्थ स्वीकार कर इसे यह सुन्दर, साकार स्वरूप दिया है तथा अपना बहुमूल्य योगदान प्रदान किया है।

दिनांक दिसम्बर १, १९८७
ए-४६, आलोक नगर,
आगरा-१०

विनयावनता
—मधु माहेश्वरी

विषयानुक्रमणिका

विषय प्रवेश ९-१६

(क) विषय की आवश्यकता तथा महत्व
(ख) अद्यावधि उपलब्ध सामग्री का विवेचन
(ग) प्रस्तुत अध्ययन की योजना और उसका स्वरूप
(घ) काव्य की पृष्ठभूमि

प्रथम अध्याय

गिरिजा कुमार माथुर—व्यक्तित्व-कृतित्व और युगीन-संदर्भ १७-४१

(क) गिरिजा कुमार माथुर—जीवन वृत्त और व्यक्तित्व
(ख) कृतित्व—काव्य ग्रंथों का कालक्रमानुसार परिचय
(ग) काव्यगत विभिन्नवाद

द्वितीय अध्याय

काव्य की बनावट और बुनावट : सैद्धान्तिक पीठिका ४२-६६

(क) शैली विज्ञान : सैद्धान्तिक पक्ष
(ख) काव्य की संरचना : स्वरूप-निरूपण
(ग) काव्य की बनावट और बुनावट : विश्लेषण

तृतीय अध्याय

माथुर जी के काव्य की बनावट का केन्द्रीय भाव ६७-१११

(क) व्यक्ति-धरातल
(ख) लोक-धरातल—सामाजिक चेतना
(ग) प्रकृति-चित्रण
(घ) वैज्ञानिक संदर्भ

चतुर्थ अध्याय

कवि माथुर के काव्य में तनाव की अवधारणा और उसका समाधान — ११२-१२७

(क) तनाव
(ख) तनाव का समाधान

पंचम अध्याय

कवि माथुर के काव्य में अप्रस्तुत योजना का स्वरूप — १२८-१५६

(क) बिम्ब-विधान
(ख) प्रतीक-विधान
(ग) सादृश्य-योजना
(घ) नव्य प्रयोग विधान

षष्ठ अध्याय

माथुर जी के काव्य में शिल्पगत भाषा-सौन्दर्य का स्वरूप — १५७-२०८

(क) वाक्य-विन्यास
(ख) पदबंध
(ग) शब्द-शिल्प
(घ) लाक्षणिकता
(ङ) शब्द-ध्वनि
(च) छन्द-विधान
(छ) काव्य-शैली

उपसंहार — २०९-२१२

संदर्भ-ग्रन्थ सूची : सहायक-ग्रन्थ — २१३-२१७

हिन्दी
सहायक शोध प्रबन्ध
अंग्रेजी
पत्र-पत्रिकाएँ

विषय-प्रवेश

(क) विषय की आवश्यकता तथा महत्त्व

साहित्य-रचना में प्रारम्भ से ही भावाभिव्यंजना एवं शैली के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग होते रहे हैं। इस प्रयोगशीलता की प्रवृत्ति में कवि के मानस में वर्तमान समाज के जीवन्त चित्र को विभिन्न दृष्टियों से मुखरित करने की भावना होती है। नयी कविता में प्रयोगों का बहुत महत्त्व रहा है, किन्तु उसे बदलते हुए सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नए कथ्य के अनुरूप ही देखना उचित होगा, क्योंकि नयी वास्तविकता की अभिव्यक्ति नए रूपाकारों में होना ही संभव है। प्रयोगों को विचार और कथ्य से अलग देखना बिल्कुल उचित नहीं है।

श्री गिरिजा कुमार माथुर के कथ्य की नवीनता के संदर्भ में उनके रचना-विधान का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया गया है। साहित्यिक मूल्यांकन में वह अभी तक नहीं दिया गया है।

माथुर जी का कवि व्यक्तित्व निरन्तर विकासशील एवं वर्धमान है। हिन्दी के अन्य आधुनिक कवियों की तुलना में मुझे गिरिजा कुमार माथुर के काव्य ने सबसे अधिक प्रभावित किया। वह अपनी पीढ़ी के अन्य कवियों की भाँति एक बिन्दु पर आकर रुके नहीं, न अपनी ही परिपाटी से बँधकर रह गये। यही कारण है कि वे अब तक एकदम नई-नई भावभूमियों, भाषा, मुहावरों और संवेदना के अपरिचित रूपाकारों की उद्भावना करते रहे हैं। इस कथन की पुष्टि श्रीमती शकुन्त माथुर के शब्दों से हो जाती है—

"यदि किसी आधुनिक कवि के बारे में यह कहा जाय कि उसकी रचनाओं में एक साथ अनेक दिशाएँ समाहित हो गई हैं—उनमें श्रेष्ठ गीतात्मकता है और महाकाव्योचित गुण भी; रंग रोमान भी है, और प्रगतिशील ऊर्जा भी, तथा प्रयोगधर्मी ताजगी, अन्तर्मुखी संवेदना, उग्र सामाजिक चेतना के साथ वैज्ञानिक युग की आधुनिकता, तो हिन्दी कविता में लगभग एक ही नाम सामने आयेगा—गिरिजा कुमार माथुर।"[1]

नयी कविता के सम्बन्ध में अब तक यह धारणा बनी हुई है कि वह जटिल है, अतः स्वाभाविक है कि नयी कविता के कवि भी इस धारणा से ग्रस्त हों। नयी कविता

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—माथुर, डा० नगेन्द्र, भूमिका—शकुन्त माथुर, पृष्ठ ३।

के क्षेत्र में जो महत्त्व माथुर जी को मिलना चाहिए था, वह उन्हें उतना नहीं मिला। इसका मूल कारण यही रहा कि समीक्षा की सर्जक कसौटियों पर उनकी रचनाओं को परखने का समग्र प्रयास अभी बहुत नहीं किया गया। वांछित मूल्यांकन न होने के कुछ अन्य कारण भी हैं—

(१) समय पर ग्रंथों का प्रकाशन न होना और सामग्री का पूर्णरूप से उपलब्ध न होना।

(२) साहित्य के मूल्यांकन में शिविर बद्धता का बढ़ना।

मेरे विचार से आलोचना की समग्रतावादी कसौटी पर ही माथुर जी के समस्त काव्य का विश्लेषण हो सकेगा। बिना ऐसी कसौटी के उन जैसे कवि पर सही मूल्यांकन नहीं हो सकता, जिनकी प्रगतिवादी और नयी कविता में प्रमुख भूमिका रही है। वस्तुतः माथुरजी नयी कविता की एक ऐसी पृथक् और महत्त्वपूर्ण इकाई के रूप में सामने आते हैं जिनके काव्य के समग्र मूल्यांकन की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

(ख) अद्यावधि उपलब्ध सामग्री का विवेचन

माथुर जी पर संक्षेप में निम्नलिखित सामग्री उपलब्ध होती है :—

(१) **आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—गिरिजा कुमार माथुर—डा० नगेन्द्र एवं कैलाश वाजपेयी**—इस पुस्तक में गिरिजा कुमार माथुर को समसामयिक काव्य की तुलना में परम्परा से हटकर प्रयोगशील कवि के रूप में उभारा गया है। उनकी रोमानी प्रवृत्ति को गहराई से विवेचित किया है। भाषाई सामर्थ्य और विज्ञान के संदर्भ में हुए प्रयोगों से उनकी वैज्ञानिक चेतना को स्पष्ट किया गया है। तृतीय विश्वयुद्ध के संदर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को स्पष्ट करने का प्रयत्न इस कवि में दिखाई देता है।[1]

(२) **नयी कविता—डा० कान्ति कुमार**—लेखक ने इसमें नयी कविता का जन्म, इतिहास, कतिपय आलोचकों की नयी कविता के संदर्भ में मान्यताएँ तथा संरचनात्मक विश्लेषण के संदर्भ में विचार व्यक्त किये हैं। इसमें विभिन्न वादों की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए माथुर जी की मान्यता को प्रस्तुत किया गया है।[2]

(३) **नयी कविता—डा० विश्वम्भर 'मानव'**—डा० मानव ने माथुर जी की कविता के अनेक पक्षों को उद्घाटित किया है। इसमें प्रयोगशील प्रवृत्ति, छायावादी शैली का प्रभाव, चिन्तन की अनुभूति परक गहराई, प्रेम की अभिव्यंजना, और उनके प्रकृति-चित्रण आदि के संदर्भ में विचार प्रकट किये गये हैं।[3]

(४) **नयी कविता में संवेदना और शिल्प—डा० मंजुला पुरोहित**—लेखक ने

---

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—माथुर, डा० नगेन्द्र, एवं कैलाश वाजपेयी देखिये—पृ० १४ एवं ३०-३१।

२. नयी कविता, डा० कान्ति कुमार, पृ० ५४-५५।

३. नयी कविता, विश्वम्भर मानव, पृ० २१५-२१६।

इस पुस्तक में माथुर जी की कविताओं में संवेदनात्मक स्तर पर उनका चिन्तन, मनन और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि को जहाँ अभिव्यंजित किया है, वहीं पर शिल्प के अन्तर्गत बनावट, बुनावट, बिम्ब, प्रतीक और टेकनीक, छन्द-योजना लय आदि के संदर्भ में विचार किया है।[१]

(५) **नयी कविता—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी**—आचार्य वाजपेयी ने माथुर जी को एक गीतकार की कोटि में स्थापित करते हुए उन्हें छायावाद के अधिक समीप ठहराने के लिए तर्क दिये हैं और उनकी प्रयोगशीलता को स्पष्ट किया है। उनके द्वारा भाषा के संदर्भ में और शैली के विषय में माथुर जी के रूप को भी स्पष्ट किया गया है।[२]

(६) **कविता के नये प्रतिमान—डा० नामवर सिंह**—डा० नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक में माथुर जी को परम्परा और आधुनिकता के संदर्भ में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है, और जहाँ उनकी काव्य-भाषा को उपयोगिता की कसौटी पर कसा है, वहीं संरचना के अन्य पक्षों को भी माथुर जी के संदर्भ में स्पष्ट किया है।[३]

(७) **हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि—डा० ऊषा यादव, श्री राजकिशोर सिंह**—इन्होंने माथुर जी की काव्यकला, शृङ्गार-भावना, विरह-भावना और सामाजिक वैषम्य की पीड़ा, यान्त्रिक सभ्यता और प्राकृतिक चित्रण के संदर्भ में विचार किया है। इसी कृति में माथुर जी की प्रयोगवादी प्रवृत्ति, भाषाई स्वरूप, संगीतात्मकता, बिम्ब और प्रतीक विधान, आलंकारिकता, उपमान योजना और छन्द-विधान पर भी बड़ी गहराई से कार्य किया गया है। आपने इनकी काव्यकला के पूर्वार्द्ध का रंग, रस, रोमान प्रधान रूप तथा उत्तरार्द्ध का अति यथार्थवादी व्यंग्य प्रधान रूप प्रस्तुत किया है। उनकी रोमांटिक प्रवृत्ति को भी उद्घाटित किया है, तथा कवि की विकास यात्रा को भी मुखरित किया है।[४]

(८) **नयी कविता का स्वरूप विकास**—प्रो० श्यामसुन्दर घोष ने अपनी इस पुस्तक में लोक धरातल पर कवि की अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए तारसप्तक में उनकी भूमिका को स्पष्ट किया है। प्रकृति के विभिन्न रूपों को उनकी कविताओं में अंकित किया है। छायावादी कवियों के सौन्दर्य-बोध को कवि ने किस प्रकार से मूल्यांकित किया है, इसका भी अंकन सूक्ष्म दृष्टि से किया गया है। छन्द लयात्मकता और तालबद्धता के संदर्भ में जिन मान्यताओं का रूप मिलता है, उनका माथुर जी पर प्रभाव और कवि की दृष्टि को स्पष्ट किया है। नाट्य काव्य के संदर्भ में माथुर जी की मान्यताओं का निदर्शन करते हुए आधुनिकता के भाव-मूल्यों में माथुर जी के योगदान को

---

१. नयी कविता में संवेदना और शिल्प, डा० मंजुला पुरोहित, पृ० ५४।
२. नयी कविता, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० २९ एवं ५२।
३. कविता के नये प्रतिमान—डा० नामवर सिंह, पृष्ठ ८७।
४. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, डा० ऊषा यादव, श्री राजकिशोर सिंह, पृ० ५९३-६१६।

अंकित किया है।[1]

(९) **नयी कविता—रचना-प्रक्रिया**—डा० ओमप्रकाश अवस्थी ने अपनी इस कृति में रचना-प्रक्रिया में बिम्ब की भूमिका प्रतीक की कविता के समग्र भाव को अभिव्यक्त करने में शिल्प की दृष्टि से उसका वैशिष्ट्य उपमानों के प्रयोग में कवि के कौशल को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। छन्द के विषय में भी विचार करते हुए कविता की संरचना को विश्लेषित करने का प्रयत्न बड़ी गम्भीरता से किया गया है।[2]

(१०) **नया हिन्दी काव्य**—डा० शिवकुमार मिश्र ने माथुर जी की कविता में अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप को उद्घाटित किया है। उन्होंने जहाँ छायावाद और प्रगतिवाद के बीच इस कवि की भूमिका को स्पष्ट किया है, वहीं उनके द्वन्द्व, मानवतावादी चेतना और प्रयोगशील प्रवृत्ति का उद्घाटन भी किया है। शिल्प की दृष्टि से उनके प्रयोग-वैशिष्ट्य और प्रतीक को तथा छन्द की दृष्टि से उनके काव्य की सामर्थ्य को स्पष्ट किया है। नयी पीढ़ी के कवियों में माथुर जी से जो आशावाद जाग्रत हुआ है, उसका स्पष्ट चित्र इनकी कृतियों में मिलता है।[3]

(११) **आधुनिक कविता की प्रवृत्तियां एवं वर्णन कौशल—डा० प्रेम प्रकाश गौतम**—आपने माथुर जी को रंग, रस, रोमान, चित्रमयता, आकांक्षा, उदासी, सामाजिक चेतना, इतिहास-बोध एवं रोमानी प्रवृत्ति आदि के समन्वयवादी कवि के रूप में प्रस्तुत किया है।[4]

(१२) **प्रयोगवादी काव्य धारा तथोक्त नयी कविता**—डा० रमाशंकर तिवारी ने माथुर जी की व्यंजक पदावली को, उनके सजीव स्वरूप को, उनकी वर्णनात्मक प्रवृत्ति को, और तारसप्तक में उनकी भूमिका को स्पष्ट किया है। उनके छन्द में संगीतात्मकता के रूप को भी स्पष्ट किया है।[5]

निष्कर्षतः इन समस्त पुस्तकों के अध्ययनोपरान्त यह सिद्ध होता है कि श्री अज्ञेय द्वारा प्रवर्तित "प्रयोगवादी काव्यधारा" के सात नव अन्वेषकों में जो सर्वाधिक सशक्त और उभरा हुआ कवि प्रकट हुआ, वह था—गिरिजा कुमार माथुर। माथुर जी की प्रतिभा और मौलिकता परम्परा के निर्वाह या विकास में इतनी नहीं जितनी कि नवीनता और प्रयोगशीलता में रही है। काव्यगत मान्यताओं, काव्य-रचनाओं और काव्यकला सभी में कवि अपने वैशिष्ट्य का परिचय देता है। कवि ने अनेकानेक प्रयोगों

---

१. नयी कविता का स्वरूप विकास, प्रो० श्यामसुन्दर घोष, पृ० ५७-८४।
२. नयी कविता रचना प्रक्रिया, डा० ओमप्रकाश अवस्थी, संकलित-तारसप्तक, सं० अज्ञेय, पृ० १२०-२६।
३. नया हिन्दी काव्य, डा० शिवकुमार मिश्र, पृ० २६८।
४. आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ एवं वर्णन कौशल, डा० प्रेम प्रकाश गौतम, पृ० ८७।
५. तार सप्तक, सं० अज्ञेय, पृ० ४२।

द्वारा नयी कविता की भाषा का संस्कार किया। नवीन शब्दावली का निर्माण किया, पुराने शब्दों को नयी भंगिमा दी, नये वैज्ञानिक प्रतीकों की योजना की। कुलमिलाकर माथुर जी का काव्य उन्हें नयी पीढ़ी के समर्थ कवियों की पंक्ति में बिठा देने को पर्याप्त है। वस्तु और शिल्प के प्रति इतनी संतुलित दृष्टि नये कवियों में कम लोगों ने ही प्रदर्शित की है।

उपर्युक्त प्रमुख पुस्तकों के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं में भी इनसे संबंधित सामग्री उपलब्ध होती है, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं :—

(१) कल्पना, मार्च १९५६, मार्च १९६०
(२) नयी कविता (अंक-६)
(३) आलोचना (अंक-१२, १४)
(४) अवन्तिका, जनवरी-१९५४।[१]

सामान्य रूप से किसी साहित्यिक कृति का एक ही पक्ष प्रमुख नहीं होता, अपितु उस कृति में अनेक पक्ष होते हैं, जिनमें अनेक संभावनाएँ अन्तर्निहित होती हैं। प्रयोगवादी कवि और उनकी कृतियों में साहित्यिकता, शाब्दिक संरचना में नहीं होती, अपितु उस विशिष्ट संरचना की विशिष्टता से उत्पन्न अर्थ और शक्ति में निहित होती है, जिसे कवि एक विशिष्ट शैली के रूप में अभिव्यक्त करता है। इस साहित्यिक कृति में घटक एक दूसरे पर आश्रित होते हुए आपसी सम्बन्धों में एक संश्लिष्ट योजना का परिचय देते हैं तथा उस योजना की समग्रता का संयोजन विशिष्ट संरचना के रूप में मुखरित होता है। इस संयोजना से कवि की बुनावट और बनावट का जहाँ अध्ययन होता है, वहाँ कवि के व्यक्तित्व के अन्य पक्ष भी इस संरचना से मुखरित होते हैं। इसका एक मनोवैज्ञानिक यथार्थ होता है, आन्तरिक अनुभव की उपलब्धि होती है, तथा उस उपलब्धि का वस्तुपरक तात्विक अध्ययन कृति के शैली वैज्ञानिक अध्ययन में निहित होता है।

इस संदर्भ में अनेक विद्वानों ने साहित्य के संरचनात्मक पक्ष को स्पष्ट करने के लिये अपने मतों का प्रतिपादन किया है। मुख्य पाँच पुस्तकों के नाम यहाँ उल्लेखनीय हैं :—

(१) संरचनात्मक शैली विज्ञान	—डा० रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव
(२) रीति विज्ञान	—डा० विद्यानिवास मिश्र
(३) शैली विज्ञान की रूपरेखा	—डा० कृष्ण कुमार शर्मा
(४) साहित्य की संरचना	—डा० सुरेश कुमार
(५) शैली विज्ञान	—डा० भोलानाथ तिवारी

इन समस्त पुस्तकों में विद्वानों ने रचना के संघटक उपांगों की संघटिनिष्ठा पर,

१. साक्षात्कार के समय स्वयं कवि माथुर जी द्वारा संकेतित पत्रिकाओं की सूची दी गई।

संरचक घटकों पर, अर्थवत्ता, प्रयोजन, काव्य के बुनावट पक्ष, काव्यभाषा और बिम्ब, प्रतीक की भूमिका और काव्य के घटकों को स्पष्ट किया है।

(ग) प्रस्तुत अध्ययन की योजना और उसका स्वरूप

कविता की अभिव्यंजना में जहाँ भाव पक्ष का महत्व होता है, वहीं उसकी संरचना का भी उससे कम महत्व नहीं होता। रचना की प्रक्रिया में कवि के 'मानस' और वर्तमान समाज की दृष्टि का मूर्त रूप से चित्रण होता है। दूसरे चित्रण में "काव्य का शिल्प" महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

प्रयोगशील काव्य में "कलापक्ष" के लिये कवि का आग्रह साग्रह होता है। उसकी इस प्रवृत्ति का रूप भाव से व्यंजित तो होता नहीं, क्योंकि सभी काल में वर्तमान परिस्थितियों के चित्र उभरते हैं, परन्तु प्रयोगशील कवि भावों के साथ-साथ रूप के गठनात्मक पक्ष पर भी बल देता है। इसलिए बनावट-बुनावट की दृष्टि से अध्ययन के जितने पक्ष हो सकते थे, उन सबका समावेश प्रस्तुत कार्य की रूपरेखा में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। बनावट-बुनावट का सम्बन्ध केन्द्रीय भाव, तनाव, शब्द-सम्पदा, काव्य-भाषा की संरचना और उसमें साभिप्राय विचलन, सादृश्य विधान, बिम्ब, प्रतीक और काव्यभाषा के अन्य कलात्मक उपकरणों से होता है। कवि के कथन की विशिष्टता इन्हीं तत्वों के संयोजन से उभरती है, उसको उभारने में कवि ने किस-किस प्रयोग को किस-किस ढाँचे में रखकर प्रस्तुत किया है, उन सबका, संरचनात्मक बनावट एवं बुनावट के तत्वों का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है।

सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध छह अध्यायों में विभक्त किया गया है—प्रथम अध्याय के अन्तर्गत कवि माथुर के व्यक्तित्व और कृतित्व का विवेचन किया गया है। द्वितीय अध्याय में शैली वैज्ञानिक सैद्धान्तिक रूप, काव्य की संरचनात्मक तथा बनावट और बुनावट की दृष्टि से सैद्धान्तिक पीठिका विश्लेषित की गई है। तृतीय अध्याय में केन्द्रीय भाव को चार वर्गों में विभक्त किया गया है—व्यक्ति धरातल, प्रकृति चित्रण, लोक धरातल और वैज्ञानिक संदर्भ। चतुर्थ अध्याय में काव्य में व्याप्त तनाव और उसके समाधान के लिये कवि ने क्या उपाय प्रस्तुत किये हैं, विश्लेषित है। पंचम अध्याय में अप्रस्तुत योजना के अन्तर्गत, बिम्ब, प्रतीक, सादृश्य आदि वर्णित है। षष्ठ अध्याय में भाषा के अन्तर्गत समस्त रूपों का वर्णन किया गया है, यथा - पद-विन्यास, वाक्य-विन्यास, शब्द-चयन, शब्द-संगीत आदि। इस प्रकार से इस अध्ययन से माथुर जी की कविताओं के कथ्य और शिल्पपक्ष की संरचना का विश्लेषण हो जाता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध पूर्वोल्लिखित अभावों की पूर्ति का ही विनम्र प्रयास है।

(घ) काव्य की पृष्ठभूमि

साहित्य एवं समाज का अविभाज्य सम्बन्ध है। कवि समाज का ही एक अभिन्न अंग है। वह अपने समय की राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, आर्थिक, सामाजिक तथा साहित्यिक

सभी प्रकार की परिस्थितियों में विचरण करता है, और उनसे प्रभावित होता है। उसके विचार और भाव विभिन्न परिस्थितियों के आधार पर ही निर्मित, परिवर्तित, संगठित और परिमार्जित होते हैं। यही कारण है कि कवि की रचनाओं में समकालीन समाज की झलक मिलती है। यह सत्य है कि कवि किसी समाज की परिस्थितियों को देखकर, राजनेताओं की तरह घोषणाएँ नहीं करता, अपितु समाज-जीवन में चलने वाली परिस्थितियों का यथार्थपरक चित्र अंकित करता है। आलोच्य कवि के साहित्य का पूर्ण अध्ययन करने से पूर्व उसकी पूर्व पृष्ठभूमि पर एक विहंगम दृष्टिपात करना आवश्यक है—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि

उस समय एक ओर भारतीय समाज में उभरता हुआ जन-संकट था, तो दूसरी ओर रूस में मार्क्सवादी दर्शन के आधार पर स्थापित साम्यवाद, जो वहाँ के विषम संकट और संघर्ष से गुजरे जन-जीवन को बल दे रहा था, जो सामन्तवाद और पूँजीवाद की विभीषिकाओं को कुचलकर सर्वहारा का अधिनायकत्व स्थापित कर रहा था। भारतीय बुद्धिजीवी एक ओर अपने समाज में उत्पन्न अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक विसंगतियों और संकटों को देख रहा था, दूसरी ओर वह रूस के उस समाज को देख रहा था, जो इन विसंगतियों और संकटों से गुजरकर एक ऐसी व्यवस्था स्थापित कर रहा था जिसमें सामान्य जन-जीवन को महत्ता प्राप्त हो रही थी। रूस में प्रतिष्ठित साम्यवाद और पश्चिम के अन्य देशों में फैलता हुआ उसका मार्क्सवादी दर्शन भारतीय बुद्धिजीवियों के लिए प्रेरणा-केन्द्र बन रहा था। इधर देश की परिस्थिति विषम हो रही थी, और उस विषम परिस्थिति में युवकों का हृदय असन्तोष और विद्रोह से कसमसा रहा था। जगती हुई उग्र जन-चेतना, रूस में स्थापित समाजवाद तथा पश्चिम के अन्य देशों में प्रचारित कम्युनिज्म के सिद्धान्तों से उभरते हुए विश्वव्यापी प्रभाव के कारण भारत में १९३५ ई० के आसपास साम्यवादी या समाजवादी आन्दोलन उगने लगा था। साहित्य भी उससे प्रभावित हुआ और प्रगतिवादी साहित्य का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ।

कवि माथुर ने मात्र देश की समस्याओं, दुःख-दर्द एवं परिस्थितियों का चित्रांकन ही नहीं किया है, अपितु कवि के लिए मानवतावादी दृष्टि प्रमुख होती है, वह व्यक्ति का इकाई के रूप में विचार करता है। कवि मानवता के लिए जीता है, उसकी तड़प में उस इकाई के लिए संवेदनात्मक वेदना होती है। इसी वेदना और परिस्थितियों का चित्रण कवि के काव्य में मुखरित होता है। द्वितीय महायुद्ध-जन्य, विनाश, आर्थिक विपन्नता, संघर्ष की तीव्र प्रतिक्रियाएं आदि स्थितियों का चुभता चित्रण हमें इनकी कविताओं—'मशीन का पुर्जा' 'युग सांझ' 'दीवारें' आदि लम्बी कविताओं में मिलता है। इसी दृष्टि से ''पहिए'' कविता की कुछ पंक्तियों का यहाँ विश्लेषण प्रस्तुत है—

"अन्धी लिप्सा वह उपनिवेश हथियाने की
चढ़ चले जोतने सिन्धु भयंकर स्टीमर
बारूद और गोलों के ले काले पहाड़
जल-थल के कोने-कोने में
फैलाने संगीनों से अपना सामराज ।
× × ×
पर परिवर्तन का तेज चक्र बढ़ता आगे
है धार काटती नागपाश
बस इसीलिये होगा विनाश—
मानव का मानव पर
दुःख, दोहन, अनाचार
इसलिए कि रुकता नहीं कभी गति का पहिया
अविरल चलता विकास का क्रम
वह पास लिये आता है मनुज समाज नया
जब दुःख की सत्ता मर जायेगी
पीले बासी फूलों सी ।[1]
× × ×

स्पष्ट है कि कवि माथुर के काव्य में प्राप्त अग्रगामी सामाजिक दृष्टि और परिवर्तन का स्वर व मानवीय समाज में मनुष्य को प्रतिष्ठित करने के आग्रह की प्रवृत्ति यही अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि है ।

(२) राष्ट्रीय पृष्ठभूमि

भारतेन्दु युग राष्ट्रीय जागरण का युग था । अंग्रेजों के दुर्व्यवहार ने भारतीयों के सम्मुख उनकी वास्तविक स्थिति स्पष्ट कर दी थी । अब वे अंग्रेजों की स्वार्थपूर्ण नीति से अनभिज्ञ नहीं थे । उनके हृदय में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो उठी थी और वे हिंसात्मक कार्यों की ओर प्रवृत्त होने लगे थे । श्री उमेशचन्द्र बनर्जी के सभापतित्व में उदारपंथी विचारधारा की प्रतिनिधि संस्था—"इंडियन नेशनल कांग्रेस" का निर्माण हुआ । इस संस्था का उद्देश्य शान्तिपूर्ण साधनों द्वारा भारतीयों की दशा में सुधार करना था । संस्था के सभी कार्यकर्ताओं के अथक परिश्रम करने पर भी स्थिति उलझन-वैचित्र्यपूर्ण ही रही । ऐसे समय में बालगंगाधर तिलक ने कांग्रेस में प्रवेश किया । "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" के नारे ने आग में घी का कार्य किया । जनता में जागृति की भावना प्रबलतर होने लगी । संयोगवश समस्त विश्व में भी कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जिनसे भारतीयों में राष्ट्रीय-चेतना का उन्मेष हुआ ।

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० २१ ।

द्विवेदी युग में यही स्थिति अधिक गम्भीर हो उठी। लार्ड कर्जन ने अपनी निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारिता की नीति के कारण बंगाल के टुकड़े कर दिये। सारे भारत में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। परिणामस्वरूप कांग्रेस ने अपनी राष्ट्रीय नीति को बदला। उदार नीति का बहिष्कार कर दिया गया। कांग्रेसी कार्यकर्ताओं में मतभेद हुआ तथा कांग्रेस के दो विभाग हो गये—एक गरम दल जो हिंसा की नीति का समर्थक था दूसरा नरम दल जो अहिंसा का पुजारी था। स्वतंत्रता के युद्ध के लिये तत्पर इस प्रथम कांग्रेस समिति के परस्पर मतभेद का लाभ अंग्रेजों ने उठाया। उन्होंने कूटनीति का आश्रय लेकर "मार्ले-मिन्टो-सुधार" द्वारा उदारपंथियों को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। तिलक कैद कर लिये गये। विपिनचन्द्र पाल को छह मास की सजा हुई। संक्षेप में भारत का वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा।

छायावाद भारतीय जीवन के लिये विषम संघर्ष का समय था। देश ऐसे साम्राज्यवादियों के चंगुल में फँसा हुआ था जिनकी शासन-पद्धति प्राचीन काल के विदेशियों से मुख्यतः भिन्न थी। अंग्रेजों से पहले जितने भी विदेशी आक्रमणकारी यहाँ आये वे या तो लूटमार करके वापिस चले गये, या देश में देश के ही होकर रह गये। निःसन्देह वे अपने वर्ग या धर्म पर आस्था रखने वालों को अधिक सुविधाएँ देते थे, और दूसरे धर्म के लोगों को वैसी समानता का अधिकार नहीं मिल पाता था, फिर भी वे इस देश में रहते हुए किसी दूसरे हित की बात नहीं सोचते थे। इसके विपरीत अंग्रेज शासक यहाँ रहते हुए भी यहाँ के निवासी नहीं बने। उनका उद्देश्य था—इस देश का शोषण कर अपने देश की श्री वृद्धि करना। इसलिये उनके प्रति आक्रोश होना स्वाभाविक ही था। यह आक्रोश धीरे-धीरे बढ़ता हुआ स्वाधीनता-संग्राम के रूप में फूट पड़ा, और महात्मा गांधी के नेतृत्व में आजादी का संघर्ष अहिंसा और सत्य पर आधारित असहयोग के एक नये रूप में हमारे सामने आया।

छायावादोत्तर काल में राष्ट्रीय वातावरण नवीन परिस्थितियों के कारण एक नये प्रकार के भाव से आन्दोलित हो रहा था। गांधी जी के नेतृत्व में जो स्वाधीनता आन्दोलन चल रहा था, उससे युवा हृदय की विद्रोही भावना को अभिव्यक्ति नहीं मिल पा रही थी। सन् १९३४ में कांग्रेस 'सोशलिस्ट' पार्टी का जन्म हुआ। इससे विदित हुआ कि स्वयं कांग्रेस में गांधी जी के अहिंसावादी सिद्धान्तों से असन्तुष्ट लोग उभर रहे थे। ये उग्र विचारों के थे, और उग्र आचरण में विश्वास करते थे। महात्मा गांधी ने हिंसा के भय से बार-बार जनता के आन्दोलन को रोक दिया था। उमड़ता हुआ जन-जीवन इसे सहज भाव से स्वीकार नहीं कर पाता था, अतः उग्र प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक था।

इस राष्ट्रीय पृष्ठभूमि की कुछ विशेषताएँ कवि के काव्य में विद्यमान हैं। कवि की दृष्टि किन्हीं स्थूल बिन्दुओं तक ही नहीं होती है, अपितु वह युग-द्रष्टा तथा भविष्य की कल्पना को अपने अनुभव एवं ज्ञान की गहराई से पकड़ने का प्रयत्न करता है। कवि माथुर में इसी सूक्ष्म चिन्तन से राष्ट्रीय जीवन को भी पहचानने, परखने की अनूठी

क्षमता है। उन्होंने राष्ट्रीय चेतना की हर संघर्ष भरी अवस्था को समझने का प्रयत्न किया है। स्वर्णिम भविष्य को साक्षात्कृत करने के लिए अथक परिश्रम, अटूट आत्म-विश्वास, और अचंचल त्याग, समग्रता के भाव आवश्यक हैं। आस्था और विश्वास से युक्त उनकी "आग और फूल" कविता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं—

"बहू भूमि किन्तु न मिट सकी
आगत फसल की राह में
वह फूल मुरझाया नहीं
ऋतु रंग लाने के अमर विश्वास में
वह आग की पीली शिखा
उठती रही जलती रही
आलोक कलश ले बचा
वह अग्नि दोनों को सतत् बोती रही
फिर से नया सूरज उगाने के लिए।"[1]

इस कविता से स्पष्ट है कि वैयक्तिक निराशा, कुंठा, अवसाद आदि के आक्रोश के बीच 'कल उगने' 'नया सूरज निकलने' आदि की चर्चा यदा-कदा सुनाई पड़ी।

(३) सामाजिक पृष्ठभूमि

मनुष्य द्वारा समाज का निर्माण होता है। भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग की राजनीतिक विशृंखलता ने समाज में परिवर्तन किया तथा उसे चेतना प्रदान की। अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली का प्रचार हुआ। भारतीयों की विचारधारा में नवीनता आयी। आधिकार-परिष्कार के युग में वर्ग-संघर्ष, जमींदारी-प्रथा, स्त्री-दुर्दशा, दास-वृत्ति सभी के विरुद्ध कठोर प्रतिक्रिया पाई जाने लगी। मानवतावादी दृष्टिकोण ने मुख्यता प्राप्त की। डा० खण्डेलवाल के शब्दों में—"पाश्चात्य साहित्य के प्रभावस्वरूप स्वच्छन्दतावाद की भावना हृदयों में जन्म लेने लगी। पाश्चात्य नवीन बुद्धिवाद, विचार और कार्य की वैज्ञानिक प्रक्रिया तथा नवीन शिक्षा और साहित्यानुशीलन ने लोगों को उदार-हृदय व खुले मस्तिष्क से वस्तु-स्थिति पर अनासक्त ढंग से विचार करने, उन पर अपनी स्वतंत्र धारणा स्थित करने तथा नवीन परिस्थितियों के आग्रह से समन्वय की व्यापक भावना के साथ प्रत्येक वस्तु के प्रति एक सजग, तटस्थ, विवेकपूर्ण दृष्टि को ग्रहण करने का अवसर तथा उत्तेजना प्रदान की।"[2]

स्वतंत्रता प्राप्त हो जाने के बाद देश के प्रबुद्ध वर्ग का ध्यान समाज में पीड़ित वर्ग की ओर गया और स्वयं पीड़ित वर्गों में नवीन चेतना उत्पन्न हुई। युग की सबसे

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ५२।
२. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, डा० रामेश्वर दयाल खण्डेलवाल, प्रथम सं०, पृ० २३८।

बड़ी आवश्यकता यह थी कि व्यक्ति दीन-दुखियों की सेवा करे, उनके कल्याण के लिए, उन्हें सुखी बनाने के लिए अपना जीवन समर्पित कर दे। यह भाव भी व्यक्त किया गया कि ईश्वर दीन-दुखियों की सेवा करता है; वह दीन-दुखियों के हृदय में निवास करता है। इसलिए जो ईश्वर-भक्ति करना चाहता है, उसका प्रधान कर्तव्य यह है कि वह दलित और शोषित वर्ग के उद्धार के लिए साधना करे। स्त्रियों की दृष्टि से हिन्दू कोड एक महत्त्वपूर्ण कदम था। कोड से हिन्दू स्त्री-पुरुषों के अधिकारों में समानता ला दी गई। तलाक को कानूनी मान्यता प्राप्त हो जाने से स्त्रियों में स्वतंत्र व्यक्तित्व का जन्म होने लगा। द्विविवाह और बहुविवाह पर नियंत्रण लग जाने से स्त्री अब अधिक सुरक्षित अनुभव करने लगी। बढ़ती हुई जनसंख्या, आर्थिक कठिनाई और स्त्रियों के स्वास्थ्य को दृष्टि में रखते हुए गर्भपात भी वैध घोषित हो गया। इसी प्रकार, अस्पृश्यता को लेकर समाज में जो अन्याय और पीड़न प्रचलित था, उसे १९५५ के अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम द्वारा रोक दिया गया। अब अस्पृश्यता दण्डनीय अपराध है। अनुसूचित जातियों के विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाएँ और छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती है। जमींदारी उन्मूलन और देशी रियासतों का अस्तित्व मिट जाने के बाद गाँवों के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में आई रिक्तता की पूर्ति का उत्तरदायित्व समाज ने अपने ऊपर ले लिया है।

प्रयोगवादी कवि ने जिस नये सत्य के शोध और प्रेषण के नये माध्यम की खोज की घोषणा की थी, वह सत्य इसी मध्यवर्गीय समाज के व्यक्ति का सत्य था। मध्यवर्ग के व्यक्ति की आकांक्षाएँ विराट् थीं, सपने रंगीन थे, संवेदनाएँ कोमल थीं। वह अपने को समाज से कटा हुआ, हारा हुआ, कुण्ठित समझने लगा था। इस पृष्ठभूमि में कवि माथुर ने परम्परागत मावनाओं का मात्र भावुकता की दृष्टि से नहीं अपितु वर्तमान परिवेश की मान्यताओं तथा उन घटनाओं की यथार्थपरक भूमिका विश्लेषित करने में कौशल्य का परिचय दिया है। सामाजिक कुरीतियों, बुराइयों और अनीतियों के उन्मूलन को दृष्टि में रखकर अनेक सुधारवादी आन्दोलनों को पिछली एक शताब्दी ने भारत में देखा था, तथापि स्वतंत्र भारत की सामाजिक स्थिति संतोषजनक न थी। समाज के मध्यवर्ग की स्थिति दयनीय थी। बढ़ते हुए पूँजीवाद दबाव से यह वर्ग आर्थिक दृष्टि से पिसता जा रहा था, जिसका सफल चित्रण "मशीन का पुर्जा" इस कविता में होता है —

"कुहरा भरा भोर जाड़ों का,
शीत हवा में ठंडे सात बजे हैं,
ठिठुरन से सूरज की गरमी जमी हुई है,
सारा नगर लिहाफों में सिकुड़ा सोता है,
पर वह मजबूरी से कँपता उठ आया है,
दोनों बाँहें कसे छाती पर,
उसकी फाइल सी भरी आँखों के नीचे,

रातों जगी हुई कालस है ।''
× × ×
रफ़ू किया उसका वह स्वेटर
तीन सर्दियाँ देख चुका है ।[1]
× × ×

कवि की सजग सामाजिक-चेतना जिसकी हल्की रेखाएँ उसके मस्तिष्क में ''मंजीर'' काल से ही थी, आगे ''नाश और निर्माण'' आदि काव्यों में शक्ति और दृढ़ता, आशा और उल्लास के साथ मुखरित होती हैं। इस दृष्टि से प्रसिद्ध कविताएँ हैं—दीवारें, उजियाला, नया बसन्त आदि।

(४) आर्थिक पृष्ठभूमि

द्वितीय महायुद्ध (१९३९-१९४५) की समाप्ति के लगभग एक वर्ष बाद १५ अगस्त, १९४७ को जब भारतवर्ष स्वतंत्र हुआ तो उसके आधुनिक दौर का एक दौर समाप्त हो गया। ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी में पूर्व और पश्चिम का जो संघर्ष प्रारम्भ हुआ, और जिसके फलस्वरूप राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, रमन महर्षि आदि विभूतियों का जन्म हुआ। फिर इण्डियन नेशनल कांग्रेस (१८८५), बंग-भंग आन्दोलन (१९०३-४), होमरूल आन्दोलन (१९१७), आतंकवादी आन्दोलन, असहयोग (१९२१), तथा उसके साथ हुए अन्य अनेक आंदोलन—दांडी कूच (१९३०), विभिन्न किसान-मजदूर आन्दोलन। और अन्त में ''भारत छोड़ो'' (क्विट इण्डिया १९४२) आन्दोलन और गांधी जी के ''करो या मरो'' आदि के एक लम्बे संघर्ष और बलिदान के बाद, द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप उत्पन्न विषम घरेलू आर्थिक परिस्थितियों के कारण जब १९४७ में इंग्लैंड की मजदूर सरकार के नेता लार्ड एटिली भारत को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शिकंजे से मुक्त करने के लिये बाध्य हुए तो देश में चारों ओर उल्लास की लहर दौड़ गई।

अंग्रेजों ने भारतीयों का शोषण किया, किन्तु भारतीय उद्योग-धन्धों में विकास भी हुआ। अंग्रेज भारतीय पूँजीपतियों को अपनी ओर मिलाकर अपना काम निकालना चाहते थे। उनका यह विचार सन् १९१९ की ''मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट'' से स्पष्ट है। इसी विचार से उन्होंने भारतीय उद्योगों का संरक्षण किया, जिसके कारण सन् १९०० से १९२४ तक हमें भारत के औद्योगिक क्षेत्र में उन्नति दिखाई देती है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् अंग्रेजों द्वारा ''औद्योगिक कमीशन'' की रिपोर्ट स्वीकार न करने से वास्तविक स्थिति स्पष्ट हुई। विदेशी आयात पर चुंगी कम कर दी गयी, तथा भारतीय वस्तुओं पर कर बढ़ा दिये गये। आर्थिक संकट विकराल रूप धारण कर खड़ा था। देश

---

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ९२।

अत्यधिक निर्धन था, आर्थिक स्थिति जर्जर थी, यातायात के साधनों की कमी थी। शासन-तन्त्र और सेना की बुरी हालत थी। देशी रियासतों का प्रश्न भी सामने था। द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप खाद्यान्न-संकट विकराल रूप धारण किये हुए था। धाने पीने की चीजों के दाम दिन पर दिन बढ़ते जा रहे थे। देश के उपजाऊ भाग का एक बहुत बड़ा अंश पाकिस्तान में चला गया था। राष्ट्रीय सरकार ने अत्यन्त गंभीरतापूर्वक इन समस्याओं पर विचार किया, और सन्तोषजनक रूप में उनका समाधान कर देश को एक भयंकर अराजकतापूर्ण परिस्थिति से बचा लिया।

कवि माथुर की मान्यता है कि आज के समाज पर आर्थिक प्रभाव न मात्र उसके जीवनयापन की भौतिक वस्तुओं पर ही पड़ता है, अपितु आर्थिक विषमता व्यक्ति-व्यक्ति में अनेकों तनावों को जन्म देती है। तनावों की विभीषिका में सामान्य मनुष्य की क्या अवस्था होती है, इससे कवि अपरिचित नहीं है। ये आर्थिक विषमता और आर्थिक तनाव मनुष्य को किस दिशा की ओर ले जाते हैं, स्वयं कवि के शब्दों में ही आर्थिक पृष्ठभूमि का यथार्थपरक विश्लेषण इस प्रकार मिलता है—

"डेढ़ सौ वर्षों के निरंकुश विदेशी शोषण के फलस्वरूप स्वतंत्र भारत की आर्थिक स्थिति बुरी तरह गिरी। महायुद्ध-जन्य उपभोग वस्तुओं की कमी और तज्जन्य मँहगाई अभी उतर नहीं पाई थी। पूँजीवादी शक्ति में समाज ढलता जा रहा था, जिसके कारण अमीरों और गरीबों में आर्थिक स्थिति बुरी तरह गिरी। अमीरों और गरीबों में आर्थिक असमानता की खाईं चौड़ी होती गई। इसका सफल अंकन "आग और फूल" कविता के निम्नलिखित अंश से होता है—

> "यह व्यक्ति और समाज का
> उत्तप्त मन्थन काल है
> संक्रान्ति की घड़ियाँ बनी हैं भृङ्खला
> बन्दी हुई है देह
> मन को बाँधने बढ़ते पतन के हाथ हैं
> है फैल विष का फैलता ही जा रहा
> अब डूबता अन्तिम ग्रहण की छाँह में
> आलोकहत नक्षत्र मिट्टी से बना
> जिसका कि पृथ्वी नाम है।"[१]

(५) साहित्यिक पृष्ठभूमि

सबसे पहले छायावाद युग की साहित्यिक विरासत पर विचार करना उचित होगा। इस युग से पूर्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने रीतिकालीन काव्यधारा का विरोध किये बिना साहित्य में सामाजिक जीवन के विविध रूपों और समस्याओं को चित्रित करने

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ५१।

का प्रयास किया था। इसका प्रभाव यह हुआ कि साहित्य का पाट विस्तृत होने लगा। भारतेन्दु के काव्य में एक नई अदा भी दिखाई देती है, जो उसे अपने युग-बोध की स्वीकृति से प्राप्त हुई।

द्विवेदीयुगीन काव्य व्यापक नैतिकता से आक्रान्त था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने काव्य की सामाजिक उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए साहित्य में 'सरलता, असलियत और जोश' पर बल दिया। इस युग में रीतिकालीन संवेदना का तीव्र विरोध तथा ठोस यथार्थ के चित्रण का प्रबल आग्रह दिखाई देता है। खड़ी बोली की प्रतिष्ठा हुई।

छायावाद के आगमन से कुछ पूर्व ही पश्चिम में रोमांटिक काव्यधारा जोर पकड़ चुकी थी, जिसका कुछ प्रभाव पूर्व के स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन पर भी देखा जा सकता है, यद्यपि मूलतः यह धारा पश्चिम की धारा से भिन्न थी। रोमांटिक काव्य-धारा में प्राचीन शास्त्रीय साहित्यिक परम्पराओं के प्रति विद्रोह था, किन्तु यहाँ यह द्विवेदी युग के स्थूल आदर्शों तथा इतिवृत्तात्मकता के प्रति प्रतिक्रिया थी। डा० नगेन्द्र इसी संदर्भ में लिखते हैं—

"छायावाद में प्रारम्भ से ही जीवन की सामान्य और निकट वास्तविकता के प्रति एक उपेक्षा, एक विमुखता का भाव मिलता है। नवीन चेतना से उद्दीप्त कवि के स्वप्न अपनी अभिव्यक्ति के लिये चंचल हो रहे थे, परन्तु वास्तविक जीवन में उसके लिये कोई संभावना नहीं थी। स्वभावतः उसकी वृत्ति निकट यथार्थ और स्थूल से विमुख होकर सुदूर रहस्यमय और सूक्ष्म के प्रति आकृष्ट हो रही थी।"[1]

सन् १९२० से १९३६ तक का कविता-काल हिन्दी साहित्य के इतिहास में "छायावाद" के नाम से अभिहित होता है। छायावाद आधुनिक हिन्दी कविता की एक बड़ी समृद्ध, सरस, भाव-प्रवण एवं कल्पना प्रधान धारा है। संक्षेप में छायायुग की निम्न विशेषताएं हैं—

(१) पद्य के साथ-साथ गद्य का विकास हुआ।

(२) भाषा के क्षेत्र में महान् क्रान्ति हुई। खड़ी बोली, साहित्य क्षेत्र में धीरे-धीरे राष्ट्रभाषा के रूप में मान्य हुई।

(३) मानवतावाद अथवा व्यक्तिवाद की प्रवृत्तियों ने काव्य में स्वच्छन्दतावाद का प्रचलन किया। रूढ़ियों से मुक्त व्यक्तिगत जीवन की अनुभूति तथा स्वच्छन्द कल्पना पर बल दिया गया।

(४) व्यक्तिगत होकर कवि ने अन्तर्जगत का विश्लेषण किया। उसके हृदय का दर्द, विषाद तथा वेदना अभिव्यक्ति के लिये छटपटा उठी। अतः इस युग की कविताओं में वेदना की अधिक अभिव्यक्ति हुई।

(५) शृङ्गार के सूक्ष्म एवं स्वस्थ रूप के दर्शन इस युग में होते हैं। बाबू

१. साहित्य और विचार, डा० नगेन्द्र, प्रथम संस्करण, पृ० १३।

गुलाबराय कुछ आलोचकों द्वारा लगाये गये मांसल शृङ्गार के आरोप का निराकरण इस प्रकार करते हैं—

"छायावाद ने प्रेम और शृङ्गार का बहिष्कार नहीं किया है, वरन् उसका परिमार्जन किया है। वे लोग उसके मानसिक पक्ष को अधिक उभार लाये हैं। उसके सौन्दर्य-वर्णन में स्थूल नहीं वरन् एक वायवी दिव्यता है, और प्रेम, आक्रमण के रूप में न रहकर आत्म-निवेदन का रूप धारण कर लेता है।"[1]

(क) व्यक्तिवादी गीतिकविता

'व्यक्तिवादी गीतिकविता' धारा के कवियों तथा छायावादी कवियों में दृष्टि और विषय की बड़ी समानता है। इन कवियों की दृष्टि रोमानी है, वस्तुजगत के प्रति इनकी भी प्रतिक्रिया अत्यन्त भावात्मक है। इनका भी विषय मूलतः सौन्दर्य और प्रेम तथा तज्जन्य उल्लास और विषाद की अनुभूति है। इनकी भी अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम गीत ही है। इनकी वेदना छायावाद की घिसती हुई वेदना की तरह सामान्य नहीं वरन् निजी प्रतीत होती है। इस धारा की कविताओं का विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि लौकिक प्रेम इनकी केन्द्रीय वृत्ति है। इस धारा के प्रसिद्ध कवि नरेन्द्रशर्मा, बच्चन, रामेश्वर शुक्ल अंचल, भगवतीचरण वर्मा आदि हैं।

(ख) प्रगतिवाद

प्रगतिवादी काव्य की संज्ञा उस काव्य को दी गयी जो छायावाद के समाप्ति-काल में १८३६ ई० के आस-पास से सामाजिक चेतना को लेकर निर्मित होना आरम्भ हुआ। प्रगतिशीलता के सिद्धान्त को मानकर तथा नवीन सामाजिक यथार्थवादी नवोन्मेषशालिनी दृष्टि वाली कविता प्रगतिशील कविता कहलाई, जिसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

(१) इसने जनसमूह में सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना से उद्भूत भावनाएँ भरीं।

(२) बौद्धिक दृष्टिकोण एवं नास्तिकता का पोषण।

(३) पूँजीपति के प्रति तीव्र घृणा एवं क्रूर आक्रोश।

(४) शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति।

(५) नारी के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण।

(ग) प्रयोगवाद

प्रगतिवाद के साथ ही पोषित होकर तथा कुछ अपनी स्वतंत्र विशेषताओं के साथ अंकुरित व पल्लवित होकर "प्रयोगवाद" का विकास हुआ, जिसमें धार्मिक कट्टर-

---

१. काव्य के रूप, बाबू गुलाबराय, प्रथम संस्करण, पृ० १३६।

ताओं, रूढ़ियों, प्राचीन साहित्यिक मान्यताओं एवं परम्पराओं का विरोध था। प्रयोग-वाद की प्रमुख विशेषताएँ हैं—

(१) नवीन उपमानों, प्रतीकों एवं बिम्बों के माध्यम से सामाजिक जीवन के स्वर और रूप को अभिव्यक्ति प्रदान करना।

(२) प्रगतिवाद ने जिस अहं का समाजीकरण कर दिया था, उस अहं को प्रयोगवाद ने मुक्ति प्रदान की।

(३) वेदना को जीवन प्रदायिनी शक्ति के रूप में स्वीकार किया।

(४) विषय के अतिरिक्त शिल्प के क्षेत्र में नवीनता का समावेश, तथा भाषा की शक्ति में वृद्धि की है।

(घ) नयी कविता

इस शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है—सामान्य अर्थ में तथा रूढ़ अर्थ में। सामान्य अर्थ में नयी कविता, कविता की वह प्रकृति है, जो सन् १९३७ के आस-पास निराला आदि स्वच्छन्दतावादी कवियों ने आरम्भ की थी। रूढ़ अर्थ में नयी कविता की सीमा में एक विशिष्ट प्रकार की रचनाएँ आती हैं। "नयी कविता" हिन्दी काव्यक्षेत्र का एक आन्दोलन विशेष है। नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) समसामयिकता अथवा युगबोध।

(२) नवीन वास्तविकता की अभिव्यक्ति।

(३) यथार्थवादी दृष्टि।

(४) नवीन सौन्दर्य बोध।

(५) नयी कविता और रूमान।

कवि माथुर के काव्य पर राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक इन समस्त पृष्ठभूमियों की स्पष्ट छाप है।

प्रथम अध्याय

गिरिजा कुमार माथुर—व्यक्तित्व-कृतित्व और युगीन-संदर्भ

(क) गिरिजा कुमार माथुर—जीवन वृत्त और व्यक्तित्व

आधुनिक बोध और नूतन काव्य संवेदनाओं के सफल कलाकार के रूप में गिरजा कुमार माथुर "तार सप्तक" के कवियों में सबसे अलग दिखाई पड़ते हैं। माथुर जी भारतवर्ष के उन जुझारू व्यक्तियों में से एक सशक्त हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने जीवन को बहुत निकटता से देखकर यथार्थपरक दृष्टि से बिखरे हुए सूत्रों को एकत्रित किया है। उनकी पैनी दृष्टि से समस्याएँ तथा परिवेश ओझल नहीं हो पाते हैं। वे जिस दृष्टि की ओर चिन्तन धरातल को मोड़ते हैं, उसी की गहराई में उतर कर तत्वों को खोजने के कुशल पारखी हैं। ऐसे कुशल पारखी कवि का जन्म भाद्रपद कृष्ण द्वादसी सन् १९१९ में अशोक नगर (मध्य प्रदेश) के एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। उनके इसी व्यक्तित्व की अनोखी पहचान के कारण कैलाश वाजपेयी ने कहा है, और उनके ये वाक्य, कवि के बचपन के वातावरण को यथार्थ रूप देने में सक्षम हैं :—

> "टूटे खपरैल, सीले गलियारे, घुप्प अंधेरा, एकदम सूनसान—
> परिवेश और उदासी यह था उसके बचपन का वातावरण"[1]

इस वातावरण का प्रभाव कवि के काव्य कर पड़ा। उनकी ममतामयी माँ जन्म के बाद से ही गम्भीर रूप से बीमार हो गईं। इस घटना ने कवि के मन पर यह प्रभाव छोड़ा कि दुःख जीवन का आवश्यक अंग है। कवि माथुर के घर में शिक्षा का सुसंस्कृत वातावरण था। काव्य और संगीत के प्रति प्रेम माथुर जी को पैतृक संस्कार के रूप में प्राप्त हुआ। उन्होंने सन् १९३८ में लखनऊ से अंग्रेजी में एम० ए० किया, तदुपरान्त एल-एल० बी० और फिर दिल्ली में शकुन्त माथुर से विवाह। शकुन्त माथुर एक विदुषी महिला हैं तथा स्वतंत्र विचारों वाली कवयित्री भी।

सन् १९४३ में आप ऑल इंडिया रेडियो में नियुक्त हुए। १९५० में रेडियो से त्याग पत्र देकर संयुक्त राष्ट्र संघ न्यूयार्क में सूचनाधिकारी का पद भार संभाला। १९५३ में आकाशवाणी लखनऊ में उपनिदेशक हो गये। सन् १९५६ में आप ने सांस्कृतिक शिष्ट मण्डल में नेपाल यात्रा की। इसके बाद आप १९५६ में ही आकाश-

---

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—माथुर, भूमिका—डा० कैलाश वाजपेयी, पृ० ५९६।

जाने प्रतिनिधि मण्डल में रूस तथा चेकोस्लोवाकिया की यात्रा पर गये, स्विटजरलैंड का भी भ्रमण किया। तदनन्तर भोपाल, इलाहाबाद, दिल्ली, उड़ीसा में प्रवास रहा। तबसे भारतवर्ष के विभिन्न नगरों में रेडियो स्टेशनों पर कार्य करते रहे। १९७८ में आप ऑल इंडिया रेडियो, दिल्ली में डायरेक्टर रहे। सम्प्रति आप अपने निवास जनकपुरी, दिल्ली में काव्य की सृष्टि कर रहे हैं।

एम० फिल् से लेकर अब तक मुझे माथुर जी से तीन बार साक्षात्कार करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। बड़ा ही मिलनसार, स्वाभिमानी तथा आकर्षण व्यक्तित्व था माथुर जी का। श्रीमती माथुर के शब्दों से उनका व्यक्तित्व और अधिक प्रखर होकर सामने आता है —

"हंसता हुआ आकर्षक चेहरा, खनकदार अनुगूंज वाली गहरी आवाज, आँखें जो बात करते या कविता सुनाते समय अचानक न जाने कहाँ खो जाती हैं—जैसे दूर शून्यों में कोई अर्थ तलाश रही हों, फिर अचानक वहाँ से वापस आकर चमक जाती हैं। जहाँ पहुँच जायें, वहाँ का वातावरण खिल जाये, हल्का हो जाये। चिर युवा मन। हर सुन्दर चीज के प्रति आसक्त, ठहाकेदार हँसी, मानो भीतरी आनन्द को सुगन्ध की तरह बिखराकर ही जायेंगे।"[1]

कवि माथुर जी का जीवन विविधताओं का चलचित्र है। विविध स्थान, विविध परिस्थितियाँ एवं विविध विचार धाराओं के गहरे प्रभाव से कवि के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। कवि ने ऐतिहासिक और भौगोलिक वातावरण का अनुभव मालवा, बुन्देलखण्ड एवं ग्वालियर में रहकर प्राप्त किया। लखनऊ में रहकर वैभव, विलास एवं अभिजात्य संस्कार ग्रहण किए। दिल्ली के निवास से आपने नगरीय संस्कृति का बोध प्राप्त किया। इसके पश्चात् रूस, अमेरिका और यूरोप के विभिन्न देशों के भ्रमण से आपके हृदय पर आधुनिक बोध तथा वैज्ञानिक चेतना का गहरा प्रभाव पड़ा।

डॉ० नगेन्द्र ने माथुर जी के व्यक्तित्व के दूसरे पहलू की सराहना निम्नलिखित शब्दों में की है—

"उनके व्यक्तित्व की संस्कार पीठिका, मालवा की शतियों लम्बी ऐतिहासिक विभूतिगन्ध, बुन्देलखण्ड का अदम्य विद्रोह बोध, ग्वालियर के बीहड़ जंगलों का उद्दाम संगीत, लखनऊ की अभिजात नफासत, मिठास और रंगीनी, दिल्ली की नगरीय संवेदना तथा अमेरिका, रूस आदि की अति आधुनिकता और वैज्ञानिकता से विनिर्मित है।

कवि माथुर के हृदय में एक ओर स्नेह की तरलता है, दूसरी ओर विद्रोह की आग; एक ओर त्रस्त और उत्पीड़ित मानवता के प्रति असीम करुणा है, दूसरी ओर

---

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—माथुर, डा० नगेन्द्र, भूमिका— शकुन्त माथुर, पृ० ३

अन्याय और शोषण के प्रति आक्रोश तथा एक और वर्तमान के प्रति क्षोभ है, दूसरी ओर भविष्य के प्रति आशा और विश्वास। उनका व्यक्तित्व कुछ ऐसे विरोधी तत्वों से निर्मित है, जिसमें कुसुम-सी कोमलता और वज्र-सी कठोरता का योग है।"[1]

(ख) कृतित्व—काव्य ग्रंथों का काल-क्रमानुसार परिचय

गिरिजा कुमार माथुर तारसप्तक के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। आपने अपनी अनेक कृतियों द्वारा हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। आपकी बहुमुखी प्रतिभा के फलस्वरूप प्रयोगवादी धारा को विशेष बल मिला है, और कविता के क्षेत्र में अनेक नये प्रयोगकर काव्य के भावपक्ष को और अधिक सामर्थ्यवान बनाया है। आपकी रचनाओं में एक नवीन ताजगी और बाँकापन मिलता है।

गिरिजा कुमार माथुर के काव्यों में जहाँ एक ओर रंग, रस, रोमान, चित्र-मयता, आकांक्षा और उदासी है, तो दूसरी ओर सामाजिक चेतना और इतिहास-बोध। वस्तुतः वे रोमानी प्रवृत्ति के समन्वयवादी कवि हैं। माथुर जी के काव्य में आधुनिक शहरी सम्वेदना, नया रोमान, इतिहास की सांस्कृतिक दृष्टि और शिल्प का नया रूप है। डॉ॰ नगेन्द्र के शब्दों में—

"माथुर जी के कृतित्व में रूप, रस, रोमान, मूर्त, मांसल अनुभूति, स्वस्थ्य सुन्दर रूप में सामाजिक वैषम्य की पीड़ा, सुष्ठ प्रयोगशीलता, अर्थ सौन्दर्य-क्षमता, ध्वनि और रंग का तीव्र बोध, और छन्द-लय का समुचित विधान है। विज्ञान चेतना भी उनके काव्य में कहीं-कहीं (यथा पृथ्वीकल्प में) प्राप्त होती है।"[2]

अब तक इस काव्य संग्रह एक समीक्षा ग्रंथ तथा बिहारी सतसई के अंग्रेजी अनुवाद पर संपादित एक ग्रन्थ 'The veiled moon' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। काव्य प्रवृत्तियों और रचनाकाल के आधार पर माथुर जी के कृतित्व को तीन वर्गों में रखा सकते हैं :—

(1) भाव का बीज रूप में प्रारम्भ, अंकुरण—सन् 1934 से 1941 तक।
(2) विकास-पल्लवन, पुष्पन—सन् 1942 से 1961 तक।
(3) परवर्ती रचनाएँ—सन् 1961 से 1974 तक।

(1) "भाव का बीज रूप में प्रारम्भ, अंकुरण"

इस शीर्षक के अन्तर्गत निम्नलिखित काव्य संग्रह उल्लेखनीय हैं :—

(क) मंजीर : 1941

मंजीर का अर्थ है—झंकार भरे गीत। जैसे व्यंजना से मंजीर नूपुरों को भी

1. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—माथुर, डा॰ नगेन्द्र, पृ॰ 15।
2. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—माथुर, डा॰ नगेन्द्र।

कहा जा सकता है।

इस संग्रह के गीतों का प्रमुख स्वर 'प्रणय' है। वस्तुतः माथुर जी के काव्य का भाव रूप यहीं से प्रारम्भ होता है। प्रेम और सौन्दर्य प्रधान विषय हैं। मंजीर की भूमिका लिखते हुए 'निराला' जी ने लिखा—

"गिरिजा कुमार माथुर निकलते ही हिन्दी की निगाह खींच लेने वाले तारे हैं। काव्य के आकाश से उनका बहुत ही मधुर और रंगीन प्रकाश हिन्दी धरातल पर उतरा है। बोलने वाले तार की तरह मजबूत स्वर से मिले हुए अपनी ही झंकार से उन्होंने लोगों का दिल ले लिया।[१]

"मंजीर" काव्य संग्रह की अधिकांश रचनाओं का आधार मूर्त और मांसल है। उनके प्रणय का आलम्बन कल्पनागम्य नहीं है, वह इसी धरती का है, मूर्त है। 'अभी तो झूम रही है रात', 'चूड़ी का टुकड़ा', 'रेडियम की छाया', 'देह की आवाज' आदि कविताएँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। मिलन के चित्र इनकी रचनाओं में मिलते अवश्य हैं, किन्तु सांकेतिक रूप में। उनका नग्न रूप में चित्रण नहीं किया गया है। इस दृष्टि से "मंजीर" की यह रचना द्रष्टव्य है—

"बड़ा काजल आँजा है आज
भरी आँखों में हल्की लाज
तुम्हारे ही महलों में प्रान
जला क्या दीपक सारी रात।"[२]

× × ×

इस प्रकार के रूप-चित्रों की सृष्टि माथुर जी की रचनाओं में सर्वत्र देखी जा सकती है। रूप और रस के मांसल स्पर्श से पूर्ण परिष्कृत चित्रों को ध्यान में रखते हुए डा० नगेन्द्र ने कहा है—

"यह शृङ्गार न तो भूखे तन और भूखे मन का आहार है, और न किसी अदृश्य आलम्बन के साथ कल्पना-विहार है। कवि ने जीवन की मधुर भावना को बड़े हल्के हाथों से, किन्तु पूरी गहराई के साथ, बिम्बित करने का सफल प्रयत्न किया है।[३]

मंजीर के अधिकांश गीतों की विशेषता है—निराशा, प्रणय-जन्य असफलता प्रिय से दो क्षण के लिये मिलाप हुआ था, किन्तु विदा बेला निकट आ गई और प्रिय से बिछोह हो गया। ऐसी अवस्था में वह अपने आपको नितान्त असमर्थ पाता है—

"दो क्षण ही तो हम मिल पाये
और विदा की बेला आई
इतनी जल्दी तुम्हीं बताओ
कैसे दूँ मैं आज बिदाई।[४]

---

१. तारसप्तक, भूमिका, निराला, पृ० ३०।
२. मंजीर, माथुर, पृ० ६६।
३. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—माथुर, डा० नगेन्द्र।
४. मंजीर, माथुर, पृ० ६।

जहाँ तक प्रश्न है, शिल्प-पक्ष का वह प्रायः छायावादी स्तर का है, "बड़ा काजल आँजा है आज", "प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा", "विदा समय क्यों भरे नयन हैं", आदि गीतों में रूमानियत, रोमांस, और सरल काव्यात्मक भाषा आदि भरी पड़ी मिलती है।

(ख) तारसप्तक : १९४३

'तारसप्तक' का प्रकाशन सन् १९४३ में हुआ। इसमें अज्ञेय ने सात कवियों की प्रतिनिधि रचनाएँ संकलित की थीं, जिनको अज्ञेय ने 'नये प्रयोग' कहा और आलोचकों ने प्रयोगवादी काव्य"। यहाँ पर कवि गिरिजा कुमार माथुर "तारसप्तक" में संकलित प्रभाव से एकदम मुक्त और नयी भाव-शैली का प्रेणता बन गया है। स्वयं उसी ने स्पष्ट कर दिया है—"प्रयोगों का लक्ष्य है—व्यापक सामाजिक सत्य के खण्ड अनुभवों का साधारणीकरण करने में कविता को भावानुकूल माध्यम देना, जिसमें व्यक्ति द्वारा इस व्यापक सत्य का सर्वबोधगम्य प्रेषण संभव हो सके।" अतएव यथार्थप्रियता, संगीतप्रियता और नई भाषा-शैली इन कविताओं के विशेष गुण हैं, यथा "शाम की धूप", और "आदमी रचे नये समाज का भवन" आदि।

(२) विकास पल्लवन, पुष्पन

इस काल तक आते-आते कवि पर्याप्त अंशों में लोकप्रिय हो चुका था। इसका एक बड़ा कारण था—नये प्रयोगों से युक्त उसकी काव्य-रचनाएँ जिनको चार वर्गों में रख सकते हैं।

(क) नाश और निर्माण : १९४६

इस संग्रह के शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह संग्रह मन के दुहरे वात्या-चक्र के अंकन का संग्रह है। इसकी अधिकांश कविताएँ छायावाद व प्रगतिवाद के संधि-काल की उपज हैं। कवि जीवन के एक पहलू का परिचायक उसका नाश पक्ष है, दूसरे का उसका निर्माण पक्ष। इस संकलन में एकांगी प्रणय की तथा सामाजिक यथार्थपरक रचनाएँ हैं। निराशा और अवसाद की घनीभूत छाया से भी यह संकलन अछूता नहीं है। इसके उत्तरार्ध के गीतों में मन का उल्लास दमक उठा है, और प्रणय में वासना तथा भोग का स्वर तीव्रतर हो उठा है।

इस संग्रह की अनेक कविताओं में कवि ने अपनी प्रेयसी के साथ बिताये रंगीन क्षणों का निःसंकोच चित्रण किया है। संयोग के नाजुक क्षण जिनमें प्रेयसी लजाती, शरमाती प्रिय के सम्मुख आई, उन क्षणों का सूक्ष्मता से चित्रण किया है। ऐसे स्थलों पर अनुभव की प्रामाणिकता सर्वत्र दृष्टिगत होती है—

"पिछली इसी बसंत रात की याद उमड़ जाती है।
जब तुम पहली बार मिली थीं
पीले रंग की चूनर पहिने
देख रही थी चोरी चोरी
मेरे मीठे गीत प्यार के
मेरे पास अचानक आकर
छीन लिया था उन्हें तुम्हारे मेंहदी रंगे हुए हाथों ने
और लाल होकर क्वारी लज्जा से तुमने
मुख पर आंचल खींच लिया था
जल्दी से निज चांद छुपाने।[1]

इस संकलन में प्रेम और सौन्दर्य तो कवि की लेखनी के विषय बने हैं, परन्तु निराशा और विषाद अधिक गहराई से कवि के जीवन में उतर गये प्रतीत होते हैं। थकान, पराजय, ऊब और उदासी से कवि आक्रांत है—

"जिन पर बोझिल पहियों के लम्बे निशान हैं
माथे पर की सोच भरी रेखाओं जैसे
पानी रंगी दीवालों पर सूने राही की छाया पड़ती
पैरों के धीमे स्वर मर जाते हैं
अनजानी उदास दूरी में।"[2]

(ख) धूप के धान : १९५५

'धूप के धान' कवि की कविता-यात्रा के प्रथम चरण का एक उत्कृष्ट बिन्दु है और उसमें परिपक्व रूप में वे सारे के सारे तत्व हैं, जिनको लेकर कविता शुरू की गई थी—यानि सौन्दर्य-बोध, जीवन की आसक्ति, सामाजिकता, प्रगति और प्रयोग का एक परिपक्व रसायन। इस काव्य की अनुभव पीठिका बहुत विस्तृत है। एक तरफ 'ढाकबनी' (गाँव) दूसरी तरफ 'न्यूयार्क में फाल' आधुनिकतम सभ्यता से परिपूर्ण रचनाएँ।

इस संकलन में कवि की प्रौढ़ रचनाएँ संगृहीत हैं—अर्थात् फरवरी ४५ से अप्रैल ५४ तक की कविताएँ। "धूप के धान" का व्यंजक अर्थ भी यही होना चाहिये—"वह धान जो धूप में पककर पुष्ट हुआ है, प्रकारांतर से—वे रचनाएँ जो प्रौढ़ावस्था के साथ-साथ प्रौढ़ एवं पुष्ट हुई हैं। इस संदर्भ में स्वयं माथुर जी ने लिखा है—

"धूप के धान" मेरी पिछले नौ-दस वर्षों की चुनी हुई रचनाओं का संकलन है। इन वर्षों में हिन्दी की नयी कविता पनपी और बढ़ी है। उसका सुकुमार पौधा

---

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ५९।
२. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० २१।

अनजानी और अपरिचित मिट्टियों से रस लेकर बलवतर हुआ है, उसकी शाखाएँ फैली हैं, और काव्य-क्षेत्र में अब वह क्रमशः गरिमा तथा प्रतिष्ठा की ओर अग्रसर होगा, ऐसा निश्चित है। हर नये चीज की तरह नयी कविता के सम्मुख भी गम्भीर समस्यायें रही हैं। नये कवि ने साहस के साथ उसका सामना किया है, और अपने यत्नों में वह अन्ततः सफल होगा, यह हमारा विश्वास है। यदि उसमें यह शक्ति न होती तो उसके ये प्रयत्न एकाकी और एकांतिक रहकर कभी के समाप्त हो गये होते। यह नयी कविता के उज्ज्वल और जीवन्त पक्ष का प्रमाण है।''[1]

इस पुस्तक की रचनाओं को तीन मुख्य विभागों में रखकर देखा जा सकता है। एक तो रूमानी गीतात्मकता, दूसरे यथार्थ और रूमान का समन्वय, तीसरे मानववादी बहिर्मुखी भाव धारा। माथुर जी प्रथमतः शृङ्गारी कवि हैं। ''रात की मीठी कथा'' के गीत उन्होंने गाये हैं। रूमानी दृश्य अंकित करने में वे अतिशय सफल हुए हैं—

''नयन लालिम स्नेह दीपित भुज मिलन तन-गंध सुरभित
उस नुकीले वक्ष की वह छुवन, उकसन, चुमन, अलसित।''[2]

यह होते हुए भी विदेश में देखा हुआ नारी का अनावृत रूप माथुर जी को रमा नहीं पाता। उठते वक्ष, खुलती बाँह, गोरी जाँघ से कवि अपने को दूर अनुभव करता है। शृङ्गारिकता का सांकेतिक वर्णन ही उसे अधिक प्रिय है। माथुर जी ने रूमानियत से आगे बढ़कर नई मनुजता के पथ पर चलना चाहा है। उक्त पथ का निरूपण भी अपने ढंग से किया है। मानव संस्कृति संकटग्रस्त है, ऐसा वे नहीं मानते। यह अवश्य है कि मानव संस्कृति विराट परिवर्तनों से होकर गुजर रही है, और इन परिवर्तनों से सामाजिक विघटन हुआ है, पर ये विघटित तत्व एक नई संतुलन भूमि खोजने के लिए क्रियाशील हैं। यह संतुलन भूमि शायद ''नई भारती'' है, जो पूर्व के जन-जागरण की आरती-सी है। इस ''नई भारती'' से कवि ने प्रार्थना भी की है—

''कोटि मनुजों में भरी छवि सभ्यता की।
कोटि कंठों में बनी ध्वनि मनुजता की।''[3]

× × ×

''एशिया का जागरण'' कविता में बंदी मानवता की पीड़ाओं का उल्लेख करते हुए कवि ने कहा है—

''मेरी मानवता पर रक्खा गिरि-सी सत्ता का सिंहासन।
मेरी आत्मा पर बैठा है, विषधर-सा सामंती शासन।
मेरी छाती पर रखा हुआ साम्राज्यवाद का रक्त कलश।''[4]

---

१. नयी कविता सीमाएँ और संभावनाएँ, माथुर, पृ० ५८।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ५४।
३. धूप के धान, माथुर, पृ० २।
४. धूप के धान, भूमिका, माथुर, पृ० १०

पूर्वोक्त रूमानियत और इस मानवतावाद के बीच कवि माथुर ने कई लम्बी और पेचीदी मंजिलें नापी हैं। उन्होंने अनुभव किया है कि "यह व्यक्ति और समाज का उग्रतम मन्थन काल है।" तभी तो वय संधि के रोमांस से आगे बढ़कर प्रौढ़ रोमांस की स्थिति पर पहुँचे हुए कवि को कहना पड़ा है—"मन के संघर्षों से, बाहर के संघर्ष अधिक बोझिल हैं।"

बाहर के उक्त संघर्षों को कवि ने कई स्तरों पर अनुभव किया है। एक ओर तो वह मात्र कवि तक सीमित संघर्ष है: "है वही जिंदगी का दर्द, है संघर्ष वही। हर नया साल आता है पुराना बनकर।" अपने इस निजी संघर्ष से मुक्ति पाने का बड़ा रोचक उपाय कवि ने खोजा है। यह उपाय है: प्यार! प्रेम का आश्रय गिरिजा कुमार माथुर का सबसे बड़ा आश्रय है—

"शक्ति दो मुझको सलोनी प्यार से। लड़ सकूं मैं मौत की ललकार से।"[1]

उपरोक्त संग्रह की कतिपय विशेषताओं को दृष्टिपात करते हुए हम यह कह सकते हैं कि कवि ने जो कविताएँ लिखीं हैं, वे महत्वपूर्ण हैं। उनको पढ़ने पर हम मानों अन्वेषित करते हैं कि गिरिजा कुमार प्रचारक कवि हैं'—जो मनुजता, सभ्यता, भारतीयता, जागरण, जीवन आदि उदात्त और उज्ज्वल विषयों के प्रचार-प्रसार में संलग्न हैं। संग्रह की अनेक कविताओं के शीर्षक मात्र से यह स्पष्ट है "पूरब की किरन", "नई भारती", "युगारंभ", "एशिया का जागरण" आदि। यही नहीं 'पहिये', 'दो चित्र' 'अर्फ का चिराग' आदि रचनाएँ भी ऐसे ही विषयों को लेकर लिखी गई हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि इस संग्रह की कविताएँ बहुत अच्छी हैं। स्वयं माथुर जी ने लिखा है—

"धूप के धान" इस कविता-संग्रह का यह दावा तो नहीं है कि नयी काव्य-धारा का यही एकमात्र सफल उदाहरण है, उसका इतना निवेदन अवश्य है कि उसके कवि ने नयी धाराओं—शैलियों के स्वस्थ तत्वों का समन्वय करने की अथक चेष्टा की है।"[2]

'नाश और निर्माण' में दो प्रवृत्तियाँ प्रमुख हैं—

(१ जिन्दगी का साक्षात्कार और संघर्ष

(२) नयी सौन्दर्य दृष्टि तथा नयी प्रगतिशील सामाजिकता।

जिन्दगी के संघर्ष के रास्ते से गुजर कर 'सत्य का साक्षात्कार' की परिणति 'धूप के धान' में है। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता की दृष्टि से 'धूप के धान' श्रेष्ठ रचना है।

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ८३

२. धूप के धान, भूमिका, माथुर, पृ० १४

(ग) शिला पंख चमकीले : १९६१

प्रस्तुत काव्य कृति विचार-प्रधान है। इसमें भावना के स्थान पर चिंतन का प्राधान्य पाया जाता है। कवि की दृष्टि फुटपाथ, कच्चे घरों, बंगलों सभी पर गई है। वह देखता है कि मनुष्य कहीं दरिद्रता से घिरा है, कहीं अन्धविश्वास से, कहीं कृत्रिमता से। वह सृजन भी करता है, विनाश भी। मनुष्य के उत्थान और पतन की संभावनाएँ अनन्त हैं।

प्रस्तुत रचना भी कवि की स्वतंत्र कविताओं का संकलन है, जिसमें डा० कैलाश वाजपेयी के शब्दों में—

एक ओर "खट्मिट्ठी चाँदनी" जैसी लघु प्रगीत रचनाएँ हैं, वहीं दूसरी ओर "हृवा देश" जैसी उदात्त शैली से लिखी लम्बी ऐतिहासिक कविताएँ भी।"[1]

कवि मानव के दुहरे व्यक्तित्व के बनावटी चेहरों को समाप्त करके, संशय, भय, नफरत, आदि के कृत्रिम भेद-भावों को समूल नष्ट करना चाहता है। उसका विश्वास है कि मानव सूर्य के समान दीप्त व्यक्तित्व से सम्पन्न होगा, अन्यायों और अत्याचारों के स्थान पर मानवीय मूल्यों में उसकी आस्था बढ़ेगी। इसलिये वह आधुनिक मानव को नया ताप, नयी तपन देना चाहता है—

दुहरे व्यक्तित्वों के
चेहरे कर भस्मसात
संशय, भय, नफरत की
भेद झिल्लियाँ विराट
निकलेगा व्यक्ति नया
× ×
इन्सानी मूल्यों के डाल सोन-तार नये
जीवन को फिर विराट गीत का अक्षर दो
अग्नि दो, तपन दो, नया ताप दो।[2]
× × ×

इस संकलन की कविताओं के विषय में स्वयं माथुर जी ने इस पुस्तक की भूमिका में लिखा है—

"इस संकलन (शिला पंख चमकीले) की कविताएँ अधिकतर मानव-व्यक्तित्व एवं मानव-भविष्य के प्रति आस्था और विश्वास से स्पन्दित हैं, उनमें निराशा की नहीं, अनुभव से उत्पन्न तृप्ति एवं परिपक्वताजन्य उल्लास की मुद्रा है, जो कवि की संवेदनशीलता और गतिमयता के अकुंठित रूप को प्रत्यक्ष करती हैं।"[3]

---

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—माथुर, कैलाश वाजपेयी, पृ० २५
२. शिला पंख चमकीले, माथुर, पृ० ८५
३. भूमिका, शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ३०७

इस कविता-संग्रह में अनेक ऐसी कविताएं हैं, जो उन्हें उनके प्रारम्भिक काव्य संग्रहों से भिन्न करती हैं। प्रारम्भ में माथुर जी रंग रस की चर्चा करते हुए दिखाई देते हैं, किन्तु यहाँ उनका दृष्टिकोण बदल गया। "सूरज का पहिया" यह कविता आधुनिक भावबोध से युक्त एवं अभिव्यंजकता की सूक्ष्म, संयमित, नवीन भंगिमाओं से अनुस्यूत एक परिष्कृत गीत है, जिसकी भाव-भूमि वैयक्तिक परिधि से अनुस्यूत एक मुक्तक है, और जीवन के व्यापक स्वरूप के प्रति एक मंगलमय उदात्त निष्ठा से आलोकित लगती है। गीत की विधा को छायावादी और उत्तरछायावादी सीमाओं से निकाल कर प्रगति, प्रयोग और नयी कविता की भूमिका तक सफलतापूर्वक ले आने का दुष्कर कार्य माथुर जी ने किया है। "खट्मिट्ठी चाँदनी" कवि की चाँदनी विषयक अनेक प्रसिद्ध रचनाओं में अपना स्वतन्त्र स्थान रखती है। चाँदनी यहाँ मात्र उजली रात की रोशनी नहीं है, वह कवि के प्रेरक भाव-स्रोत का सुकुमार प्रतीक भी है। उसके द्वारा प्राप्त जीवन-रस में केवल मधुर ही नहीं कटु, तिक्त, खट्टे आदि अन्य रसों का भी समावेश है, जिसके कारण कवि की अनुभूति साधारण रूमानी स्तर से सर्वथा भिन्न अनुभव की विविधता के आस्वाद से सिक्त और पकी हुई दिखाई देती है। यह पकाव उस कवि का नहीं है, जिसकी कामना है "जिन्दगी सिक के ताजा फूल बने, घर के मृदु वक्ष की गरमाई में।"

'शिला पंख चमकीले' में नयी जमीन की तलाश है। इस संग्रह में क्लासिक तत्व मिलता है। नयी शैली की खोज है। जिसका पहला रूप प्रसाद जी की 'कामायनी' में है तथा निराला की 'शक्ति-पूजा' में, उसी का एक रूप 'शिला पंख चमकीले' काव्य में परिलक्षित होता है।

(घ) छाया, मत छूना मन : १९६५

इस संकलन के गीतों में काव्य-तत्व के साथ संगीतमयता भी है, जो शब्दों से सही क्रम-संयोजन से स्वतः प्राप्त हो जाती है। शुरू की रचना "याद यह हो आई मुझको पुरानी" या "सेजो पे आ जाना निंदिया कुमारी" में भी नये शब्द-विधान के साथ ध्वनि और भाषा का भी ताजा प्रयोग है। अनेक गीतों में फैन्टसी शिल्प का प्रयोग किया है। जैसे "पलकों से कुहू उड़ी छा गयी" में। स्वयं माथुर जी का कहना है :—

"मेरे गीतों में यांत्रिक ढंग से छन्द की आवृत्ति नहीं है। कथ्य की जरूरत के अनुसार छन्द तोड़ दिया है, शब्द गढ़ गये हैं, लय लम्बी हो गयी है। मैंने स्वर-ध्वनि के तुकान्त लिए हैं, कहीं-कहीं व्यंजन ध्वनियों के समान शब्दों से तुकान्त और लयवत्ता उत्पन्न की है जैसे—"हरी धूप की किरन सी लता में।" इस तरह अपने गीत को प्रचलित जमीन से मैंने अलग रखा है। कुछ गीतों में विदेश के अनुभव हैं—"कातिक की पंचमी" तथा "ये अधूरे चांद का ऐपन, रंगा मण्डल", "गौर माथे पर गिरे उड़ चम्पई कुन्तल"—चम्पई कुन्तल चांद के ऐपन रँगे मण्डल के साथ मिलकर विदेशी सुनहरे बालों का चित्र उपस्थित करता है। गीत में कितनी सहज अभिव्यक्ति

होगी। उतना ही वह प्रभावी होगा और उतनी ही गहराई से भाव सत्य को सामने लाने में समर्थ होगा।[1]

(३) परवर्ती रचनाएँ

माथुर जी की कविता का उत्कर्ष रूप निम्नलिखित रचनाओं में परिलक्षित होता है—

(क) जो बंध नहीं सका : १९६८

इस संग्रह में नवीन मूल्यों की तलाश है। आदमी के प्रति प्यार और ममत्व को पुन: प्रतिष्ठित किया गया है।

इसके अन्तर्गत १९६१-६८ तक की कविताएँ हैं। यह तीन खंडों में विभक्त है :—

(१) इतिहास की दृष्टि, (२) काल दृष्टि, (३) प्रतिबिम्बों की लय।

इस काव्य संग्रह में "इतिहास" शीर्षक से कुछ कविताएँ संग्रहीत हैं, जैसे— "इतिहास का सिंहासन", "इतिहास का हल", "इतिहास एक आदिम न्याय", "इतिहास एक बच्चा" आदि। इन कविताओं में इतिहास के विविध सत्यों के साथ-साथ आधुनिक युग-बोध को भी साकार किया गया है। इतिहास को अन्धा, बहरा, लंगड़ा तथा गूंगा चित्रित किया है। गूंगे इतिहास का एक चित्र—

"युद्ध, ध्वंस, तूफान
पृथ्वी की बाल-मूर्ति
पंचामृत रक्त स्नान
न्याय असहाय
अन्याय दल बलवान
स्वीकृत सबकी समान
इतिहास गूंगा है।"[2]

× × ×

जय और पराजय के नियम को कवि ने इतिहास के आदि न्याय के रूप में प्रस्तुत किया है। इतिहास ने सदैव विजयी का गुणगान किया, उसे ही शिव माना है, और पराजित को सदैव अशिव ही माना गया। कवि शंका प्रकट करते हुए कहता है कि जो मिट गया, समाप्त हो गया, क्या वह सब कुछ असत्य था ? और जो विद्यमान है, भले ही कितना क्रूर व आततायी क्यों न हो सत्य ही रहेगा ? क्योंकि जय और पराजय क्षणिक उपलब्धि है। इसे मानदण्ड मान लेना ही सबसे बड़ी भूल है, जो पूर्ववर्ती कालों में बार-बार दोहराई जाती रही।

---

१. छाया, मत छूना मन, भूमिका, माथुर, पृ० १०।
२. जो बंध नहीं सका, माथुर, पृ० १०५

"जो मिट गया क्या असत् था
अवशेष ही क्या सत्य है
क्या सही वह जो बीतता
जो हार जाता अशिव है
यह जय-पराजय का नियम
है दाय आदिम न्याय का"[1]

× × ×

व्यक्ति मानव की प्रतिष्ठा माथुर जी के काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। उन्होंने एक साधारण मध्यवर्गीय मनुष्य को उसकी दुर्बलताओं, सबलताओं सहित काव्य में प्रस्तुत किया है। उन्होंने सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही व्यक्ति के महत्त्व को स्वीकारा है, क्योंकि सामाजिक चेतना और व्यक्ति चेतना को अलग-अलग रखकर नहीं देखा जा सकता। इस विषय में माथुर जी के विचार प्रस्तुत हैं—

"नयी कविता का स्वर क्रमश: विकसित स्वर, व्यक्ति की पावनता और सामाजिक गरिमा की आकांक्षा का ही स्वर है। उसने निराकार "समूह-समष्टि" का पक्ष ग्रहण नहीं किया, यद्यपि इकाई को सामाजिक सन्दर्भ से अलग नहीं देखा, और न दूसरी ओर आत्मलीन ऐकान्तिक व्यक्तिवादिता को ही स्वीकार किया। वह केवल एक चीज का पक्ष लेती है, इकाई रूपी "आदमी का"।[2]

"अर्ध आधुनिकों की बातचीत" कविता द्वारा मानव के सही रूप को चित्रित करने का प्रयास किया है। विषम सामाजिक परिवेश की प्रतिक्रिया स्वरूप आज मानव की स्थिति रेजगारी की भाँति हो गई है, जहाँ व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य कोई भावात्मक सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य में व्यस्त है, अपनी समस्याओं में लीन है—

"विकृत हो गये हैं सभी मूल्यमान
सिर्फ घूमता है
रेजगारी-सा इन्सान"[3]

× × ×

"जो बँध नहीं सका" काव्यसंग्रह में कवि की व्यक्तिवादी अभिव्यंजना समाज से अलग नहीं है। जहाँ कवि का मैं समष्टि का मैं बन गया है। "कोणार्क पर तीसरा पहर" कविता यहाँ प्रस्तुत है—

"मैं अंकित हो गया हूँ सम्पूर्ण
हर मूर्तित स्थिति में

---

१. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० १२।
२. नयी कविता सीमाएँ और संभावनाएँ, माथुर, पृ० १३३।
३. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ३०।

घटित हुआ हूँ मैं
अब अपना कुछ नहीं है शेष
और अब मैं नहीं हूँ।"[1]

× × ×

इस संग्रह को अन्य संग्रहों से पृथक रूप में स्पष्ट देखा जा सकता है जैसा कि डा० विनोद गोदरे ने इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

"इस संग्रह में आत्मसत्य से लेकर इतिहास, तीक्ष्ण बोध, और आज के आदमी की विडंबना, संत्रास तथा ट्रेजडी को रंगमयता एवं प्रगीतात्मकता से वेष्टित किया गया है। प्रगीत की दृष्टि से "प्रतिबिम्ब की लय" खण्ड दृष्टव्य है।[2]

परिवर्तन के प्रति कवि आस्थावान है। इतिहास की गति हमेशा आगे चलती है, कभी पीछे नहीं रुकती। क्रूरता और निर्ममता के विरुद्ध अन्याय के विरुद्ध लड़ना यही कवि की कविता का मूल स्वर है।

(ख) भीतरी नदी की यात्रा : १६७५

गिरिजा कुमार माथुर के काव्य-व्यक्तित्व की छठी कड़ी है—"भीतरी नदी की यात्रा"। इसका प्रकाशन नवम्बर, १६७५ में हुआ। इसमें कवि के विशिष्ट काव्य-व्यक्तित्व के साथ-साथ नयी कविता के सौन्दर्य-बोध की भी हानि व्यक्त हुई है। "भीतरी नदी" से कवि का अभिप्राय पलायन से न होकर साधारणीकृत अनारंभ अनुभूतियों के व्यक्तिकरण से है। मूलतः रोमानी कवि होने पर भी "भीतरी नदी की यात्रा" में अनुभूतियों के विभिन्न रूप परिलक्षित होते हैं। इसमें जीवन के मधुर पक्ष को उद्घाटित करने वाली सौन्दर्य और प्रेम सम्बन्धी कविताएँ तो हैं ही, इसके साथ-साथ स्वस्थ सामाजिक यथार्थ को उजागर करने वाली कविताएँ भी हैं। कुछ कविताएँ प्रकृति के मनोहर रूप को उद्घाटित करने वाली हैं। और कुछ माथुर जी की यात्राओं की भावात्मक अभिव्यक्ति को साकार करने वाली हैं। ये सभी रचनाएं मानवीय प्रेम और संवेदना, जीवन के प्रति अतिरिक्त एवं भरपूर आस्वाद जैसे अन्तः सूत्र में जुड़ी हुई हैं।

प्रस्तुत काव्य कृति का एक विशेष उद्देश्य है—मानव के प्रति प्रेम और अपनत्व की प्रतिष्ठा करना तथा प्रकृति के मनोहर रूप का चित्रांकन करना। स्वयं माथुर जी ने लिखा है—

नयी कविता में नगर-बोध के नाम पर अधिकांश कविताएँ देश के उस वृहद ग्रामांचल से कट गयी हैं, जो हमारे जीवन का सबसे बड़ा और बुनियादी हिस्सा है। तीव्र भावना, रसमयता, प्रकृति के रंग, पेड़-पौधों, फूलों और फसलों के रंगों को इस

१. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ८७।
२. छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत, डा० विनोद गोदरे, पृ० १६६।

तरह "रोमानी" कहकर खदेड़ दिया गया है, जैसे कि वह सब यथार्थ से विमुख प्रवृत्ति हो।[1]

यही कारण है कि उनके इस काव्य-संग्रह की अधिकांश कविताएँ मानवीय प्रेम से समन्वित, प्रकृति के स्वाभाविक वातावरण के करीब हैं। उनमें वैज्ञानिक यांत्रिकता नहीं है। प्रकृति और मनुष्य-जीवन की स्वाभाविक लय के साथ अपनी रचना-धर्मिता को जोड़ना ही कवि का प्रयास परिलक्षित होता है।

रंग, रस आदि का चित्रण भी इस संग्रह की कविताओं में किया गया है। सौंदर्य और प्रेम-संबंधी कविताओं में मानव-जीवन के प्रति कवि की गहरी पैठ व सूझ-बूझ का परिचय मिलता है। ऐसी कविताओं में चिन्तन की प्रौढ़ता व दृष्टिकोण की परिपक्वता दृष्टिगत होती है। ऐसी कविताओं में प्रेम के उदात्त रूप के साथ, प्रिय के प्रति उद्दाम आकर्षण की भावना, रूपासक्ति तथा प्रणयजन्य मादकता भी परिलक्षित होती है। "मामूली शब्दों की मुस्कराहट", "खुले बालों की रात", "स्थायी खुशबू", "थोड़ी देर हो गई है", "खुशबू बहुत है" आदि कविताएँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

गिरिजा कुमार माथुर के प्रस्तुत कविता संकलन में प्रकृति के सुन्दर व प्रेरक रूप तथा वैयक्तिक सुख-दुख के साथ-साथ सामाजिक संचेतना का स्पर्श भी मिलता है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि व्यक्ति समाज से कहीं भी कटा हुआ नहीं है, वस्तुतः वे एक दूसरे के पूरक ही हैं। इस संग्रह में कवि स्वयं भी इस बात को स्वीकारते हुए कहता है—

"असलियत में जीवन की समस्त अनुभूतियों को मैं दो स्तरों पर भोगता रहा हूँ। एक को मैं आत्मीय और व्यक्तिगत कहूँगा और दूसरे को सामाजिक। वे दोनों प्रकार की रचनाएँ एक दूसरे की पूरक हैं, क्योंकि मैं मानता हूँ कि जीवन का अन्तरंग भोग सामाजिक न्याय और स्वस्थ पक्ष के बिना संभव नहीं।[2]

सामाजिक चेतना को उजागर करने वाली कविताओं में जीवन की कटुता, घुटन, अवसाद व टूटते हुए पारिवारिक सम्बन्धों का चित्रण है। आधुनिक इलेक्ट्रोन सभ्यता ने मानव को संवेदनहीन व मानवीय सद्भावनाओं से शून्य बना दिया है। अपने चारों ओर फैली अनास्था, घुटन और अन्धकार का चित्रांकन कवि ने "मूड ट्रैंक्वेलाइजर, "बीसवाँ अन्धकार", "रचनाहीन", "यन्त्र-त्रास" तथा "वणिक् संस्कृति का मृत्युगीत" आदि कविताओं में किया है।

"बीसवाँ अन्धकार" इस काव्य संग्रह की सशक्त रचना है जिसमें कवि ने पाश्चात्य देशों में मशीनीकरण के दुष्परिणामों का आकलन किया है। जो अन्धकार चंगेज़ खाँ के जमाने में था, वह आज भी व्याप्त है। औद्योगिक संस्कृति में अनेक विकृ-

---

१. भीतरी नदी की यात्रा, भूमिका, माथुर।
२. भीतरी नदी की यात्रा, भूमिका, माथुर।

१०४०५

तियाँ आ गई हैं। हिंसा, हत्या, संहार, मूल्यों का टूटना, प्रदूषण इन सबको "बीसवाँ अन्धकार" कहा गया है।

प्रस्तुत संकलन की कविताएं भाव पक्ष के साथ-साथ कलापक्ष की दृष्टि से भी प्रौढ़ है। इन कविताओं में सरलता, सादगी के साथ-साथ युगीन भाव-बोध को अभिव्यक्त करने की क्षमता भी है।

(ग) साक्षी रहे वर्तमान : १९७९

"साक्षी रहे वर्तमान" की कविताएँ समकालीन सामाजिक यथार्थ को पर्त-दर पर्त खोलती हुई मानवीय संवेदना की सनातन भूमि पर अवस्थित हैं। इन कविताओं में दुहरे-तिहरे स्तर पर गतिशील जीवन की आन्तरिक तथा बाह्य विसंगतियों का गहरा स्पंदन है, समय के क्षिप्र वेग में बनते-मिटते मूल्यों की संस्थिति है, साथ ही इनमें संघर्ष का एक स्वस्थ तेवर है जो मनुष्य को आत्मबल प्रदान करता है।"[1]

गिरिजा कुमार माथुर अपने आरंभिक कविता-संकलन "मंजीर" (१९४१) में ही उत्तर छायावादी भावुकता से विद्रोह कर चुके थे, और "नाश और निर्माण" (१९४६) में उन्होंने सृजन के धरातल पर एक युगानुकूल सामाजिक दृष्टि का निर्माण कर लिया था। आरम्भ ही से उनकी काव्य-संवेदना में सघन भावना के बिंबों के साथ-साथ यथार्थ बोध का प्रखर स्वर रहा है। प्रस्तुत संकलन की कविताओं में यह स्वर अपनी संपूर्णता में मुखर हुआ है।

मानवीय यथार्थ के प्रति गिरिजा कुमार माथुर का दृष्टिकोण अन्य नये कवियों से नितान्त भिन्न है। उन्होंने मानवीय विकृतियों का खुलकर उद्‌घाटन किया है, किन्तु अधिकांशतः नये कवियों की तरह लघुता को ही व्यक्तित्व की सार्थकता नहीं माना है। वे मानवीय विकास की संभावनाओं के प्रति आशंकित न होकर पूर्ण आस्था और विश्वास प्रकट करते हैं। मानव की मौलिक विशेषताओं का वर्णन उन्होंने सशक्त वाणी में किया है। मानव की लघुता में भी उन्नयन की संभावनाओं व निर्माण की क्षमता को खोजा है।

जिस मानव को आज तक "बेजुबान कठपुतली" "समूह की एक इकाई मात्र" समझा गया, वही हाड़ मांस का मनुष्य सब कुछ करने की अपार शक्ति भी रखता है। विकृतियों का पुंज होने पर भी वह सब कुछ करने का साहस रखता है, क्योंकि उसका आत्मसम्मान तथा आत्मविश्वास अभी मरा नहीं है। इन भावों की अभिव्यक्ति उन्होंने "निर्णय का क्षण" नामक कविता में की है—

"भीड़ वह नहीं है
जिसे तुम हिकारत से
कहते रहे नाचीज

1. साक्षी रहे वर्तमान, सम्पादक—माथुर

× × ×

दुतकारते रहे हर बार
तुमने जिसे समझा है
बेज़ुबान कठपुतली
वह हाड़ मांस की
सबसे बड़ी ताकत है
आज नहीं तो कल यह जरूर समझोगे
जनता को आखिरी बात कहने की आदत है।[1]

× × ×

"साक्षी रहे वर्तमान" की कविताओं का यह वैशिष्ट्य है कि ये अपने काल को समेटती हुई, उसकी सीमाओं का अतिक्रमण करती हुई भविष्य की ओर झाँकती हैं।.........इस तरह गिरिजा कुमार माथुर एक इतिहास द्रष्टा के रूप में सामने आते हैं।.........यह संकलन कवि के सृजनात्मक संकल्प और सतत् संघर्षशीलता का साक्षी है।[2]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि माथुर जी की रचनाओं में निराशा, विषाद, विफलता और रुग्णता का उतना ही वर्णन मिलता है जितना कि रोमांटिक स्थितियों का। उनमें एक ओर छायावाद युगीन संस्कार रंगमयता, कोमल मानसिक प्रतिक्रियाएँ प्रगीतात्मकता आदि हैं, दूसरी ओर आधुनिक आज के मनुष्य की विडम्बना, त्रास और उसके दुःख को व्यक्त करने की चेष्टा है।

(घ) कल्पान्तर

यह विज्ञान काव्य है। इसकी विस्तृत चर्चा वैज्ञानिक संदर्भ के अन्तर्गत की गई है।

अन्त में डॉ० शिवकुमार मिश्र के अनुसार उनका समग्र विकासक्रम स्पष्ट कर देना आवश्यक है—

"श्री गिरजा कुमार माथुर नये युग की हिन्दी कविता के एक समर्थ व्यक्तित्व हैं। प्रेम और सौन्दर्य उनकी प्रधानवाणी हैं, रंग, रस और रोमान उनका प्रधान आकर्षण। परन्तु इसके बावजूद जो बात उन्हें युगीन यथार्थ की कटुताओं से जूझने वाले, जीवन और समाज के वर्तमान कुरूप और विकृत नक्शे को बदलकर मानवता के एक नये युग की स्थापना के लिये आकुल और सचेष्ट कवियों की पंक्ति में बिठा देती है, वह है उनके काव्य में सतत् सुनाई पड़ने वाला सामाजिकता का अटूट स्वर, जो शनैः शनैः कवि के मन पर जमी निराशा, कटुता, घुटन, पराजय और मस्ती को चीरते हुए उनके

१. साक्षी रहे वर्तमान, संपादक—माथुर, पृ० ५०।
२. साक्षी रहे वर्तमान, संपादक—माथुर, पृ० ९।

कविता-संग्रह "धूप के धान" में अधिक मुक्त और निर्द्वन्द्व होकर फूटा है, और आगे की रचनाओं में भी उसी तीव्रता और उन्मुक्तता को लिए हुए विद्यमान है। प्रेम, सौन्दर्य, रस और रोमान को कवि ने छोड़ दिया हो, ऐसा नहीं है—वस्तुतः अपनी इस आसक्ति को स्थिर रखते हुए भी वह समाज और राष्ट्र के स्वरों में, मानवता और अन्तर्राष्ट्रीयता के स्तर पर पूरी शक्ति के साथ बोल सका है। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ प्रारम्भिक रचनाओं में प्रेम और सौन्दर्य, निराशा, विषाद और थकान की भावनाएं ही प्रमुख थीं, सामाजिक स्वर अपेक्षाकृत कम तीव्र, वहाँ बाद की कविताओं में ये भावनाएँ सामाजिक चेतना के आवरण में, मानव भविष्य के प्रति कवि की अडिग आस्था की परिधि में विश्वास और दृढ़ता की सीमाओं में व्यक्त हुई हैं। उनके स्वर में प्रधान सामाजिकता, अन्तर्राष्ट्रीयता और मानवतावाद का स्वर है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि माथुर जी अपने मूल रूप को स्थिर रखते हुए भी युग की आकांक्षा के अनुरूप उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सके हैं। यही उनका महत्व और उनकी सर्वप्रधान विशेषता है। "मंजीर" से लेकर "धूप के धान" और उसके बाद की कविताओं तक का उनका विकासक्रम इस कथन का प्रमाण है।"[1]

निष्कर्षतः "मंजीर" में बीज का प्रस्फुरण, इस काव्यसंग्रह में रूमानी कविताएँ हैं, इनमें रूमानी कविता की प्रेमपरकता, सौन्दर्यप्रियता तथा प्रेम की असफलताजन्य निराशा तथा व्यथा देखी जा सकती हैं। बीज का पल्लवन "नाश और निर्माण", "धूप के धान", "शिलापंख-चमकीले" में। "नाश और निर्माण" में रूमानी संस्कार, प्रगतिवादी चेतना और प्रयोगधर्मिता की संक्रान्ति दिखाई पड़ती है। "धूप के धान" में यह संक्रान्ति एक स्वस्थ समन्वय के रूप में उभरती है, जिसमें सामाजिक यथार्थ कवि की तीव्र संवेदना का स्पर्श पाकर नये रूप-रंगों में खिल उठा है। परवर्ती रचनाएँ "भीतरी नदी की यात्रा", "साक्षी रहे वर्तमान" और विज्ञान काव्य 'कल्पान्तर' में कवि के बीज रूप भावों और विचारों की चरम परिणति हुई है। पहले की दिशा एक है, दूसरे में अलग दृष्टिकोण स्पष्ट है।

(ग) काव्यगत विभिन्नवाद

हिन्दी साहित्य एक सजीव साहित्य है। इसमें प्रकृति के परिवर्तनशील रूपों को चित्रित करने की क्षमता है। दृष्टिकोण की इन्हीं विभिन्नताओं के कारण ही इसमें विभिन्न प्रकार की रचनाएँ सम्भव हो रही हैं। हर प्रकार की रचना के मूल में एक प्रकार का दर्शन रहता है। इन दर्शनों से ही हिन्दी साहित्य में अनेक वादों का जन्म हुआ। साहित्य मानव अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का साधन है, तथा परिस्थिति, देश युग आदि के प्रभाव से अनुभूतियों के रूप में अन्तर पड़ता है, जिससे रचनाओं के दृष्टिकोण में भी अन्तर पड़ जाता है। मानव-समाज की आवश्यकताएँ समयानुसार

१. नया हिन्दी काव्य, डा० शिवकुमार मिश्र, पृ० २६८।

नया रूप धारण कर लेती हैं, अतः उनकी अभिव्यक्ति का ढंग भी नया हो जाता है। हिन्दी साहित्य के विकासक्रम में इन्हीं मुख्य कारणों ने अनेकवादों को जन्म दिया जिनमें छायावाद, गीतिकविता, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, और नयी कविता आदि प्रमुख हैं।

छायावाद, गीतिकविता, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता आदि की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन साहित्यिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत किया जा चुका है। यहाँ उन समस्त वादों की प्रमुख विशेषताओं को दृष्टिगत करते हुए यह सिद्ध किया गया है कि कवि माथुर की कविताओं में उन समस्त विशेषताओं का प्रतिफलन अपने चरम रूप में है। इस दृष्टि से सर्वप्रथम आता है—छायावाद।

(क) छायावाद

वैयक्तिक भावना छायावाद की एक प्रमुख विशेषता रही है। इसके मूल भाव हैं—प्रणय और अर्थ। कवि माथुर के काव्य की एक प्रमुख विशेषता वैयक्तिकता है। इस संदर्भ में डा० कान्ति कुमार ने अपनी पुस्तक में लिखा है—

"माथुर जी के प्राकृत काव्य संस्कार छायावादी हैं। प्रारम्भ से आज तक उनके काव्य के श्रेष्ठ अंश में छायावादी रूमानियत किसी न किसी रूप में निरन्तर विद्यमान रही है, उन्होंने अपने काव्य में छायावादी और उत्तर छायावादी प्रवृत्तियों का समाहार किया है। छायावादी काव्य का रंग, रस और रूमान उत्तर छायावादी की मांसलता के साथ उनके काव्य में उपस्थित हुआ है।"[1]

माथुर जी की अधिकांश रचनाओं का आधार मूर्त और मांसल है। उनके प्रणय का आलम्बन कल्पनाभव्य नहीं है। वह इसी धरती का है, मूर्त है। "अभी तो झूम रही है रात", "बूढ़ी का टुकड़ा", "रेडियम की छाया" आदि कविताएँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। मिलन के चित्र इनकी रचनाओं में मिलते अवश्य हैं, किन्तु सांकेतिक रूप में। इस दृष्टि से मंजीर की यह रचना द्रष्टव्य है—

"बड़ा काजल आंजा है आज
भरी आँखों में हल्की लाज
तुम्हारे ही महलों में प्रान
जला क्या दीपक सारी रात
निशा का सा पलकों पर चिन्ह
जागती नींद नयन में प्रात
सखी, ऐसा लगता है आज
रोज से जल्दी हुआ प्रभात"[2]

× × ×

१. नयी कविता, डा० कान्ति कुमार, पृ० ५४।
२. मंजीर, माथुर, पृ० ६८।

कवि की रचनाओं में जहाँ जीवन के प्रति तीव्र आसक्ति तथा संयोगजन्य उल्लास का चित्रण हुआ है, वहीं प्रणयजन्य विषाद का भी मार्मिक चित्रण किया गया है। सावन की बदली के समान प्रिय मिलन के क्षण बहुत कम मिलते हैं। फलस्वरूप वही अतृप्ति, वही निराशा अपना घेरा चारों ओर डाल देती है—

"प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा
कोटि दीप जलते थे मन में,
कितने मरु तपते यौवन में
रस बरसाने वाले आकर
विष ही छोड़ गये जीवन में
जल की जगह ज्वाल ही बरसी
सदा प्यार के लघु सावन में"[1]

× × ×

काव्य में निराशा की अभिव्यक्ति छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है। किन्तु इस निराशा का आधार वैयक्तिक नहीं था, वहाँ दार्शनिक तत्व की प्रधानता थी। यह प्रवृत्ति कवि माथुर के प्रसिद्ध काव्य संग्रह "मंजीर", "नाश और निर्माण" में मुखरित होती है। घोर पराजय के भावों के मध्य आशा की क्षीण किरण भी यत्र-तत्र दिखाई देती है—

"राजमहल तो उजड़ गया
पर खंडहर में सपने बाकी हैं
फूल वहाँ के नहीं किन्तु फूलों जैसे पाषाण लिये हूँ
रूठ गये वरदान सभी फिर भी मैं मीठे गान लिये हूँ"[2]

× × ×

प्रकृति का आलम्बन रूप में यथार्थ दृष्टि से चित्रण किया गया है। प्रकृति के माध्यम से कवि ने कहीं-कहीं विग्रह-भावों को निवेदित किया है—

"याद यह हो आई मुझको पुरानी
इसी ऊनी सी पतली चाँदनी में
तरल चन्दन-सी बहते हो उजेली
खेलते धूप-छाँह हम यामिनी में"।[3]

× × ×

कवि ने शिल्प के क्षेत्र में छायावादी भाषा की टक्कर में अपनी एक विशेष प्रकार की शब्दावली निर्मित की है, जो वैसे ही कोमल और श्रुति-सुखद शब्दों से युक्त

---

१. मंजीर, माथुर, पृ० ५१।
२. मंजीर, माथुर, पृ० १६-२०।
३. मंजीर, माथुर, पृ० २।

है। काव्य का शब्द-विन्यास और वाक्य-विन्यास भी एक निश्चित साँचें में ही ढला प्रतीत होता है, पर उसका महत्व इसी कारण है कि न केवल सशक्त भाषा और शिल्प बल्कि सामाजिक कथ्य और स्थानीय रंग देशजवेश के बल पर कवि ने चित्र रचना तथा वातावरण निर्माण के क्षेत्र में कुछ बड़ी ही सुन्दर उपलब्धियाँ की हैं। "ढाकबनी" कविता इसका उदाहरण है :—

"सनसनाती साँझ सूनी
वायु का कठुला खनकता
झींगुरों की खंजड़ी पर
झाँझ सा बीहड़ झनकता"।[1]

× × ×

मुक्त छन्द की प्रेरणा कवि को छायावादी कवियों से मिली। डा० ओम प्रकाश अवस्थी ने माथुर जी को मुक्त छन्द के प्रयोग में अधिक सफल माना है—

"माथुर ने मुक्त छन्द को स्वीकार किया, तथा उसके वार्णिक और मात्रिक दोनों ही रूपों को अपनाया। उन्होंने वार्णिक में कवित्त के विराम का रूपान्तर कर नये छंद का प्रयोग किया। इसके साथ ही सवैये के विरामों पर संगीतमय मुक्त छन्द की रचना भी की"।[2]

यह सत्य है कि माथुर जी के काव्य की विशेषताएँ छायावादी हैं, लेकिन कवि ने अपनी प्रखर बुद्धि से उसे नवीन रूप दिया और उसे प्रशस्त किया है।

(ख) गीतिकविता

माथुर जी ने अपने हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति गीतों के माध्यम से की है। गीतिकाव्य मूलतः वैयक्तिक होता है, क्योंकि उसमें हृदयगत भावों का सहज उच्छलन होता है। गीति-रचनाओं में माथुर जी के काव्य की प्रमुख विशेषता है, प्रेम और शृङ्गार। रंग, रस और रोमान की प्रवृत्ति उनके काव्य में सर्वत्र देखी जा सकती है। माथुर जी ने स्वयं इसे अपने काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है, और कुछ उदाहरण भी दिये हैं। प्रेम को इन्होंने लौकिक धरातलों पर स्वीकार किया है, और उसकी स्थूल और केन्द्रीय अभिव्यक्ति भी की। उन्होंने सामाजिक बन्धनों को अस्वीकार करते हुए वैयक्तिक पीड़ा, उल्लास, उदासी तथा असन्तोष के स्वरों को अपने काव्य में अभिव्यक्त किया है। "मंजीर" तथा "नाश और निर्माण" ये दोनों रचनाएँ रोमानी रूप और आभा से मण्डित है। "मंजीर" के गीतों में उन्होंने किशोर हृदय की रंगीन भाव कल्पनाओं को स्वर प्रदान किया है। इन गीतों में छायावाद की रंगीनी

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ८५।
२. नयी कविता रचना प्रक्रिया, डा० ओम प्रकाश अवस्थी, पृ० ५०।

तो है, किन्तु इनकी भाव-वस्तु छायावादी नहीं है ...इन गीतों में छायावाद की आभा को इस नये कवि ने रूप प्रदान किया है।''[1]

मंजीर के अधिकांश गीतों की विशेषता है—निराशा, प्रणय-जन्य असफलता। उदाहरणार्थ—

"दो क्षण ही तो मिल पाये हम
और विदा की बेला आई
इतनी जल्दी तुम्हीं बताओ
कैसे दूँ मैं आज विदाई।''[2]
× × ×

"मंजीर" के गीतों की इसी सरसता और सादगी को देखकर निराला जी ने भूमिका में कहा है—

"श्री गिरिजा कुमार माथुर निकलते ही हिन्दी को निगाह खींच लेने वाले तारे हैं।''[3]

(ग) प्रगतिवाद

"साहित्य के क्षेत्र में दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं—प्रगतिशील और प्रगतिवादी। व्यापक रूप में प्रयोगशीलता का अर्थ है—आगे बढ़ना, नवीनता की ओर विकास। प्रगतिशील रचनाओं का दृष्टिकोण यथार्थवादी होता है।''[4]

प्रगतिवादी कवियों में गिरिजा कुमार माथुर प्रमुख हैं। कवि की प्रगतिवादी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ, मानवतावादी विचारधारा, यथार्थबोध तथा काव्य की सहज अभिव्यक्ति आदि विशेषताएँ पाई जाती हैं। उनका काव्य प्राचीन संस्कृति से पर्याप्त रूप में प्रभावित है। उसमें आस्था और विश्वास के स्वरों की प्रमुखता है। उन्होंने छायावादी काल्पनिक आदर्श के स्थान पर यथार्थ बोध को अपनाया है, किन्तु यह यथार्थ नग्न यथार्थ नहीं है। वस्तुतः माथुर जी विकासशील कवि हैं। प्रगतिशील तत्वों की दृष्टि से "नाश और निर्माण", "धूप के धान", 'शिलापंख चमकीले' व 'कल्पांतर' इनमें मध्यवर्गीय व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व की स्पष्ट किया गया है। इस कथन की सत्यता का अनुभव हमें "मशीन का पुर्जा" नामक कविता से होता है—

"शीत हवा में ठंडे सात बजे हैं,
ठिठुरन से सूरज की गर्मी जमी हुई है,

---

१. कविता के नये प्रतिमान, डा० नामवर सिंह।
२. मंजीर, माथुर, पृ० २।
३. मंजीर, माथुर, भूमिका निराला, पृ० ६९।
४. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, डा० कैलाश वाजपेयी, पृ० २००।

सारा नगर लिहाफों में सिकुड़ा सोता है,
पर वह मजबूरी से कंपता उठ आया है।
× × ×
रफ़ू किया उसका वह स्वेटर
तीन सर्दियाँ देख चुका है
उसका जीवन भावहीन मशीन बन गया
जाड़ों के दिन की मिठास
अब जहर हुई है।"[१]
× × ×

प्रगतिशील चेतना की दूसरी प्रमुख विशेषता है, लोकतंत्र, समता, सामाजिक परिवर्तन, मानवता। कवि माथुर की रचनाओं में सामाजिक चेतना के साथ-साथ राजनीतिक चेतना के स्वरों की भी प्रधानता है। इस दृष्टि से "एशिया का जागरण" नामक कविता बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपने काव्य में मानव को उसकी सम्पूर्ण दुर्बलताओं व सबलताओं के साथ प्रस्तुत किया है। इनके काव्य में मानव मात्र के सर्वांगीण विकास की आकांक्षा का चित्रण हुआ है। मानव की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए कवि ने उसकी बाँहों को शक्ति का प्रतीक माना है जिसके द्वारा वह सामाजिक ढाँचे को अपनी इच्छानुसार गढ़ सकता है, अपने सपनों को साकार कर सकता है तथा कठोर परिश्रम से आकाश के स्वर्ग को धरती पर उतार सकता है—

"ये शक्तिवान मेहनत की बाँहों के प्रतीक
उन रूखे भारी हाथों के गरिमान् चित्र
गढ़ते जाते हैं जो सामाजिक मूरत को
जीवन की मिट्टी को संवार
सच्चे कर देते हैं सपने
लेते हैं स्वर्ग उतार विचारों के नभ से"[२]
× × ×

कवि ने आर्थिक समता लाने के लिये, समाज को सुखी, सम्पन्न व वैभवशाली बनाने के लिये क्रान्ति व विध्वंस का आह्वान नहीं किया। उन्होंने निर्माण-पक्ष को अधिक महत्वपूर्ण समझा है। वास्तव में मनुष्य का वास्तविक सुख उसकी मेहनत में है। किसानों व मजदूरों की लगन तथा मेहनत से नये समाज का उदय होगा। अपने खून-पसीने से ही वह अपना रास्ता बना सकता है। नयी पीढ़ी, आज के दुःख, दर्द व संघर्ष की मजबूत छाती पर ही संवर सकेगी—

---

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ८२-८३।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० १८।

"असल सुख के लिये मेहनत
पसीने से बनेगा पथ
× × ×
इसी से जिन्दगी को तिक्त
कड़वी, कटीली अनुभूति
मन में और पचने दो
हमारे दर्द, सुख संघर्ष को
मजबूत छाती पर
नई पीढ़ी संवरने दो ।"[1]
× × ×

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि कवि माथुर की प्रारम्भिक रचनाओं में जहाँ वैयक्तिक सुख-दुःख की प्रधानता है, वहाँ प्रगतिशील रचनाओं में मानव मात्र के कल्याण की कामना भी व्यक्त है। भूख, गरीबी व शोषण के अन्त द्वारा कवि ऐसे समाज का निर्माण करना चाहता है, जहाँ सुख-सम्पन्नता व ऐश्वर्य का साम्राज्य हो, मानव-मानव में भ्रात-भाव का विकास हो।

(घ) प्रयोगवाद

प्रयोगवादी कविता एकान्तिक रूप से न तो व्यक्ति को महत्व देती है और न समाज को। उसमें व्यक्ति को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। काव्यगत प्रयोगशीलता को श्री माथुर ने वैज्ञानिक दृष्टि से स्पष्ट करने का प्रयास किया है—

"प्रयोग सभी कालों में होते आये हैं, यह कहकर ही आधुनिक प्रयोगों की सार्थकता सिद्ध नहीं की जा सकती। उसके सम्बन्ध में आज हमें यह देखना भी जरूरी है कि किस संदर्भ में वे किये जा रहे हैं, और उनका लक्ष्य क्या है। फिर पहले जो प्रयोग हुए थे उनमें और आज के इन प्रयोगों में परिस्थिति, प्रयोजन, दिशा और आग्रह का अन्तर है। इसके अलावा, कवि या लेखक-विशेष का शैली-वैशिष्ट्य भी अपनी नवीनता की उद्भावना के अर्थ में एक सीमा तक नया प्रयोग कहा जा सकता है...।"[2]

प्रयोगवाद ने विषय-वस्तु और रूपविधान में नवीनता लाने का प्रयास किया। कवि के अनुभूत सत्य को नवीन अभिव्यंजना-पद्धति के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया।

प्रयोगवाद की इस नयी प्रवृत्ति का विकास करने में माथुर जी का बहुत बड़ा

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ११६, १२०।
२. नयी कविता सीमाएँ और संभावनाएँ, माथुर।

योगदान है। विज्ञान के नये आविष्कार और उसकी संभावनाएँ इस नये कवि की काव्य-चेतना में ढलने लगी—अणुयुग के वैज्ञानिक चमत्कारों को, अन्तरिक्ष-विजय की नयी संभावनाओं और उनके प्रकाश में मानवता के भविष्य की कल्पनाओं को साकार करने के लिये कवि ने "पृथ्वी कल्प" के रूप में अत्यंत साहसिक प्रयास किया है।

शिल्प या क्रिया-कल्प इस कवि का अपना वैशिष्ट्य है। संगीत का सहज ज्ञान होने के कारण उसने स्वर-लय की अनेक सूक्ष्म संयोजनाएँ प्रस्तुत करने में अद्भुत सफलता प्राप्त की है। कवि के उपमान और बिम्ब शृङ्खार की प्रधानता के कारण छायावाद और रीतिकाव्य के उपमानों और बिम्बों से प्रायः अभिन्न से हैं। उनमें नवीन स्पर्श तो है, किन्तु पुनरावृत्ति के दोष से वे मुक्त नहीं है। धीरे-धीरे उनके क्षेत्र का विस्तार हुआ, और नई सभ्यता के आकर्षक उपकरणों को सुरुचि के साथ समाजेश किया गया। परम्परागत उपमान और प्रतीक नये उपमान-प्रतीकों के साथ मिलकर नूतन-बिम्बों का निर्माण करने लगे। उदाहरणार्थ—

"यह झकाझक रात
चाँदनी उजली कि सूई में पिरो लो ताग
चाँदनी को दिन समझकर बोलते हैं काग।"[1]

× × ×

भाव और विचारपक्ष की भाँति माथुर जी के काव्य का कला और शिल्प पक्ष भी सतत विकासशील रहा है। इसका प्रधान कारण यही है कि काव्य के वस्तुपक्ष को महत्व देते हुए भी कवि ने उसके शैली और शिल्प को भी समान उतना ही महत्व प्रदान किया है। वस्तुतः इसी बिन्दु से उनते प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की काव्य-धाराओं का समन्वय करने की चेष्टा की है। अपनी इस प्रवृत्ति में असफलताओं के बाव-जूद कवि कुछ ऐसी उपलब्धि कर सका है जो उसे नये हिन्दी काव्य के एक उत्कृष्ट शिल्पी के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

(ख) नयी कविता

नयी कविता के कवियों के संदर्भ में डा० नामवर सिंह ने लिखा है:—

"नयी कविता में जो रूप की नवीनता है, उसकी बुनियाद बहुत कुछ निराला, नरेन्द्र ने ही डाल दी थी। उसी बुनियाद पर कुछ नई ईंटें रखने का कार्य कुछ दिनों बाद सन् ४०-४२ के आसपास अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, मुक्ति-बोध, नेमिचन्द्र, भारतभूषण, भवानीप्रसाद मिश्र आदि अन्य कवियों ने किया।"[2]

नयी कविता के एक प्रमुख हस्ताक्षर गिरिजा कुमार माथुर ने भाषा का यथार्थ-वाद और उसकी व्यावहारिकता नयी कविता का एक अत्यंत विशिष्ट गुण स्वीकार

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ६४।
२. नयी कविता का स्वरूप विकास, प्रो० श्यामसुन्दर घोष, पृ० ५७।

किया है। नयी कविता में, कवियों ने समाज जीवन में व्यवहृत होने वाली जन-सामान्य की भाषा का प्रयोग किया है। इसमें समाज जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है—माथुर जी के शब्दों में—

"भाषा का यह रियलिज्म और उसे व्यावहारिक बोल-चाल से एक कर देने का प्रयत्न नये कवियों की विशिष्टता है। इसका अर्थ यह है कि हिन्दी की नयी कविता अब अधिकाधिक साधारण जीवन के निकट, आती जा रही है, उसके उपकरण और माध्यम दोनों ही सामाजिक यथार्थ की ओर तेजी से अग्रसर हो रहे हैं। नयी पीढ़ी में भाषा, शब्द-योजना, उपमान, प्रतीक चित्रों का यह रियलिज्म अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है जो भविष्य की काव्य प्रक्रियाओं पर असर डालेगा। भाषागत यथार्थ गद्य में और विशेषकर कहानी, उपन्यास में प्रेमचन्द के बाद से काफी आ चुका था, कविता में वही चीज बोलचाल की भाषा को लेकर आ रहा है।"[1]

नयी कविता के शिल्प पक्ष में प्रतीक, बिम्ब, छन्द, चित्र विधान आदि विशेषताएं उल्लेखनीय हैं। नये प्रतीकों का अधिकता से प्रयोग हुआ है। सामान्यतया प्रतीकों को लोक जीवन से ही लिया जाता है, किन्तु नये कवियों ने नये भावों की अभिव्यक्ति के लिये सामान्य की अपेक्षा विशेष प्रतीकों का व्यवहार किया है जिससे अर्थ की प्रतीति में बाधा पड़ती है। माथुर जी के काव्य संग्रह "जो बंध नहीं सका" में इतिहास की व्यंग्य स्थिति, खिलौना, विकृत-सत्य, बच्चा सिंहासन आदि विविध नवीन प्रतीकों के माध्यम से निरूपित किया गया है। बिम्ब विधान एवं उपमान भी नये प्रयुक्त करना इनकी अपनी विशेषता है।

यह निर्विवाद सत्य है कि नयी कविता जिन मूलभूत विशेषताओं को लेकर चली है, वे सब अधिकांश मात्रा में माथुर जी की रचनाओं में मिल जाती हैं। आपने ही नाद-सौन्दर्य एवं अर्थ सौन्दर्य से हिन्दी की नयी कविता को साज-सँवारकर नूतन शिल्प की सृष्टि की है जिसकी पुष्टि डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना के निम्नलिखित कथन से हो जाती है—

"कवि के नये-नये छन्दों, नये-नये बिम्बग्राही प्रयोगों ने उन्हें न केवल नयी कविता का अग्रणी कवि बनाया है, अपितु वे नयी कविता के प्रवर्तक भी जान पड़ते हैं। उनके सूक्ष्म एवं कोमल बिम्ब नवीन अभिव्यंजना-कौशल के द्योतक हैं, उनके चित्रमय उपमान नूतन काव्य-चेतना के पोषक हैं। कवि माथुर नूतन काव्य तत्व एवं नूतन काव्य-शिल्प की दृष्टि से नयी कविता के उत्कृष्ट कवि हैं।"[2]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि कवि माथुर का कथ्य और शिल्पपक्ष अपने चरमरूप में समस्त विशेषताओं को लेकर मुखरित होता है जो उन्हें नये हिन्दी कवियों की कोटि में मुख्य स्थान प्रदान करता है।●

---

१. गिरिजा कुमार माथुर, आलोचना, अंक-१२, जुलाई-५४, पृ० ६८।
२. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ० ५२८।

द्वितीय अध्याय

काव्य की बनावट और बुनावट : सैद्धान्तिक पीठिका

(क) शैली विज्ञान : सैद्धान्तिक पक्ष

शैली विज्ञान साहित्य के अध्ययन की एक प्रणाली है। जिसकी आधारभूमि भाषा विज्ञान और काव्यशास्त्र है। इस पद्धति में भाषाविज्ञान की वस्तुवादी और वैज्ञानिक प्रणाली तथा काव्यशास्त्र की गहरी विवेचना पद्धति अन्तर्निहित है। शैली वैज्ञानिक आलोचना रचना को स्वायत्त मानकर चलती है, उसके केन्द्र में कृति होती है। वह कवि या पाठक और सामाजिक परिवेश, नैतिक मूल्य आदि उपादानों को साहित्येतर मानती है।

किसी कृति का विश्लेषण उसकी संरचना-पद्धति द्वारा ही किया जा सकता है, जिसे शैलीविज्ञान के अन्तर्गत मुख्य आधार मानते हैं। इससे कृति की मूलतम भावना अर्थात् साहित्यिक फलक का बोध होता है। डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव की मान्यता है—

"शैलीविज्ञान भी साहित्य को समझने-समझाने की एक दृष्टि है जो "शैली" के साक्ष्य पर एक ओर साहित्यिक कृति की संरचना और गठन पर प्रकाश डालती है, तथा दूसरी ओर कृति का विश्लेषण करते हुए उसमें अन्तर्निहित "साहित्यिकता" का उद्‌घाटन करती है।"[१]

शैलीविज्ञान को विस्तार से जानने के पहले हम "शैली क्या है ?" पर विचार करें तो अधिक संगत होगा।

शाकटायन के उणादि सूत्र (४-३८) में "शी" (शीङ् शयन) धातु में लक् प्रत्यय के योग से शैली को निष्पन्न माना है। पाणिनि के धातु पाठ में प्राप्त भ्वादिगण की शील धातु का अर्थ है "एकाग्र" होना तथा "चुरादिगण" में आई "शील" धातु का अर्थ है—अभ्यास करना। इसी अभ्यास की विशिष्ट पद्धति शैली के नाम से जानी जाती है। डा० भोलानाथ तिवारी ने "शैली" शब्द के मूल में शील शब्द की स्थिति मानी है। इसी 'शील" शब्द में अण् प्रत्यय के योग से शैली बना है। उनके शब्दों में—

"भाषिक अभिव्यक्ति के विशिष्ट ढंग को शैली कहते हैं।"[२]

१. संरचनात्मक शैलीविज्ञान, रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, पृ० १८।
२. शैलीविज्ञान, डा० भोलानाथ तिवारी पृ० १५।

शैली के अध्ययन की भारतीय तथा पाश्चात्य परम्परा बहुत प्राचीन है, यद्यपि शैली के सिद्धान्त और उसके अध्ययन की प्रणाली में अन्तर दिखाई देते रहे हैं। भारतीय तथा पाश्चात्य परम्पराओं में भी भारतीय परम्परा का प्राचीन युग पाश्चात्य परम्परा के प्राचीन युग से अधिक समृद्ध रहा है। संस्कृत काव्यशास्त्र का सिद्धान्त प्रधान रूप से शैली के अध्ययन का सिद्धान्त ही है। चाहे उसे इस रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया जिस रूप में आधुनिक युग में किया गया है, और ऐसा होना अस्वाभाविक भी नहीं। संस्कृत काव्यशास्त्र-साहित्यशास्त्र या अलंकारशास्त्र का मेरुदण्ड है। साहित्यिक प्रभावों का भावामूलक और भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्त-निरूपण, यही आधुनिक शैलीविज्ञान का भी मूलतत्त्व माना जाता है। "शैलीविज्ञान" से जो हम इस समय समझते हैं, और जिसे हमने "आधुनिक शैलीविज्ञान" की संज्ञा दी है, उसके बहुत निकट की मान्यताएं संस्कृत काव्यशास्त्र में मिलती हैं।

(क) संस्कृत काव्यशास्त्र

संस्कृत में "शैली" का सममूल्य "रीति" है। इसी शब्द का प्रयोग अधिकांश लेखकों ने किया है। यद्यपि सभी लेखक इसी परिभाषा पर एकमत नहीं थे। "मार्ग", "संघटना" और "वृत्ति" इसी रीति से अंशतः संबद्ध तथा सदृश रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

सामान्य रूप से संस्कृत शैलीविज्ञान के दो प्रमुख संप्रदाय माने जा सकते हैं—

(१) अभिव्यंजनावादी अलंकार संप्रदाय।

(२) अनुभूतिवादी ध्वनि संप्रदाय।

अभिव्यंजनावादी संप्रदाय में "वामन" का रीतिसिद्धान्त विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना जाता है। वे ऐसी "पद रचना" (शब्दविन्यास, भाषागत इकाइयों का उपयुक्त चयन तथा व्यवस्थापन) को रीति कहते हैं, जो "विशिष्ट" हो अर्थात् "विशेष" (अभिव्यक्ति का गुण) से युक्त हो। ये गुण "काव्यशोभा" के मूल आधार हैं, जो दोषों के परिहार तथा अलंकारों के वैकल्पिक एवं गुणों के अनिवार्य नियोजन से सम्बद्ध होता है। वामन ने तीन रीतियाँ मानीं (१) वैदर्भी (इसमें सब गुणों का समावेश है) (२) पांचाली (इसमें माधुर्य तथा सौकुमार्य की प्रधानता है) (३) गौड़ी (इसमें ओज और कांति की प्रधानता है)। उन्होंने दस गुणों की कल्पना की, जिन्हें शब्दगुण और अर्थगुण के अन्तर्गत वर्गीकृत किया। वे ये हैं—ओज, प्रसाद, श्लेष, समता, समाधि, माधुर्य, सौकुमार्य, उदारता, अर्थव्यक्ति, कांति।

अलंकार सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक भामह ने वक्रोक्ति (असामान्य कथन) को अलंकार का मूल तत्त्व माना, तथा उसे काव्य का प्रमुख लक्षण बताया। वामन ने काव्यत्व का अनिवार्य लक्षण गुण को माना तो भामह ने अलंकार को। अलंकारों के दो वर्गों में से शब्दालंकार भाषा के रूपपक्ष से संबंधित है, तथा अर्थालंकार अर्थपक्ष से।

(१) शब्दालंकार

शब्दालंकार में विशेष शब्दों का चयन आधार है। अनुप्रास योजना, वर्णों की आवृत्ति के सहारे होती है। यमक का चमत्कार भी शब्दाश्रित है। शब्दालंकार अनेक वर्णों में से अभिप्रेत वर्णों, अनेक पर्यायों में से साभिप्राय सार्थक पर्यायों के चयन पर निर्भर है।

(२) अर्थालंकार

अर्थालंकार अर्थ पर आधारित होते हैं, जो भाषा की विशेष योजना द्वारा प्रकट होते हैं। भाषा की विभिन्न योजनाओं से विभिन्न अलंकारों का निर्माण होता है। उपमा, उत्प्रेक्षा, सन्देह आदि अलंकार भाषा की विशेष योजना ही हैं।

अलंकारों का संदेश पक्ष को अधिक प्रभावशाली बनाने में विशेष योगदान सभी ने स्वीकार किया है। इस दृष्टि से अलंकारों का चयन तथा उनकी संदर्भोपयोगिता की परीक्षा शैली वैज्ञानिक मीमांसा का महत्वपूर्ण भाग है।

कुन्तक द्वारा प्रवर्तित वक्रोक्ति सिद्धान्त संस्कृत शैलीविज्ञान के अभिव्यक्तिवादी सम्प्रदाय का संभवतः सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। कुन्तक कविस्वभाव, कविप्रतिभा या कवि व्यापार को काव्यनिष्पत्ति का मूल आधार मानते हैं। कविता की भाषा के व्यावर्तक गुण को वे "वक्रता", विच्छित्ति, या वैचित्र्य का नाम देते हैं, जो कवि प्रतिभा से मूलतः उद्भूत होते हुए भी कविता की भाषा-संरचना एवं साहित्यिक संरचना के विभिन्न घटकों में मूर्त होता है।

वक्रता के सिद्धान्त के अनुसार छह स्तरों पर काव्यत्व की स्थिति हो सकती है—

(१) वर्ण विन्यास वक्रता

(२) पद पूर्वार्ध वक्रता

(३) पदपरार्ध वक्रता

(४) वाक्य वक्रता

(५) प्रकरण वक्रता

(६) प्रबंध वक्रता।

कुन्तक का यह विभाजन भाषाविज्ञान के श्रेणी विभाजन के समान है। भाषा की लघुतम इकाई वर्ण (स्वनिमि) है, उसके बाद पद (मुक्ति रूपिम) प्रत्यय (बद्ध रूपिम) है। इनसे मिलकर वाक्य की रचना होती है। वाक्यों से प्रकरण बनता है। प्रबन्ध (पूरी रचना) जिसमें बाकी चार तत्व भी समाविष्ट हो जाते हैं। वास्तव में कुन्तक ने जिस विश्लेषण पद्धति पर बल दिया है, आधुनिक शैलीविज्ञान भी काव्य-संरचना विश्लेषण की इस प्रणाली पर निर्भर है। इसमें भाषा संरचना के घटकों के साथ साहित्यिक संरचना के पहलुओं का भी समावेश है। इस प्रकार यह सिद्धान्त अनुभूतिवाद के निकट आ पड़ता है।

क्षेमेन्द्र का औचित्य सिद्धान्त भी कुंतक के अनुसार भाषा संरचना के साथ

साहित्यिक संरचना के स्तर पर औचित्य की कल्पना प्रस्तुत करता है। औचित्य का आधार है—उपयुक्तता। प्रसंगोपयुक्त चयन तथा विन्यास से काव्यत्व निष्पन्न होता है। जहाँ अलंकार आता है वहाँ अलंकार हो, जो जिसके सदृश हो, जो जहाँ जच जावे, उसे उचित कहते है, तथा उसके सिद्धान्त को औचित्य। क्षेमेन्द्र औचित्य की सत्ता निम्नलिखित में मानते हैं : पद, वाक्य, प्रबंधार्थ (कवि कल्पना), गुण, अलंकार, रस, क्रिया, कारक, लिंग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात, काल आदि। इसमें भाषा संरचना के घटकों के साथ साहित्यिक संरचना के पहलुओं का भी समावेश है।

"आनन्दवर्धन का वैशिष्ट्य इस बात में है कि उन्होंने "ध्वनि की संकल्पना" के रूप में साहित्य समीक्षा के संश्लेषमूलक सौंदर्यशास्त्रीय सिद्धान्त की स्थापना की।"[1]

आनन्दवर्धन ने साहित्यिक अनुभव के विषय में बताया और उसका वर्गीकरण किया। उनका समस्त प्रतिपादन अर्थ पर आधारित है। अर्थ को वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य ये तीन श्रेणियाँ की। ये समस्त श्रेणियाँ साहित्य के संदर्भ में साहित्यिक अनुभव के निष्पादक उपकरण बनकर अभिधामूला व्यंजना, लक्षणामूला व्यंजना और व्यंग्य-संभवा व्यंजना के रूप में विकसित होती हैं। स्पष्टतः इनका ध्वनि सिद्धान्त "अर्थ" पर खड़ा है, और अर्थ भाषा की संरचना का मेरुदण्ड है। भाषा अर्थमूलक व्यापार है, और साहित्य वृहत्स्तरीय अर्थसंरचना। अतः अर्थ के अमूर्त होते हुए भी उसे ही साहित्य समीक्षा का प्रवर्तनबिन्दु बनाना उचित है। ध्वनिसिद्धान्त की तार्किकता के कारण ही लगभग सभी ने उसे वैकल्पिक रूप में प्रस्तुत किया।

संक्षेप में संस्कृत काव्यशास्त्र के मुख्य विषय ये हैं—

(क) विविध प्रकार के साहित्यिक अनुभवों को निष्पन्न करने वाले सर्वमान्य शैलीगत उपकरणों का वर्णन तथा वर्गीकरण।

(ख) इन वर्गों का पारस्परिक सम्बन्ध तथा साहित्य समीक्षा में उनकी स्थिति का प्रतिपादन।

(ग) एक सर्वसामान्य योजना का निर्माण जिसमें साहित्यिक अनुभवों की प्रकृति और प्रकार्य की विशिष्टता से अनुशासित भेदों को वर्गीकृत रूप में प्रस्तुत किया जा सके, और काव्यभाषा का काव्येतर भाषा के व्यवच्छेदक लक्षणों पर विचार।[2]

(ख) पाश्चात्य शैलीविज्ञान

पश्चिम में इस परम्परा का आरम्भ प्लेटो तथा अरस्तू से होता है। वहाँ शैली पर जो विचार आरम्भ हुआ वह "रेटोरिक्स" के संदर्भ में, भाषणकला के शीर्षक के अन्तर्गत हुआ, काव्यशास्त्र के संदर्भ में नहीं।

---

१. विस्तार के लिये देखें—शैलीविज्ञान, डा० सुरेश कुमार, पृ० १३३।
२. विस्तार के लिये देखें—शैलीविज्ञान, डा० सुरेश कुमार, पृ० १३५।

(ग) शैली के अध्ययन की आधुनिक परम्परा

शैली के अध्ययन की दृष्टि से आधुनिक युग में जो नवीनता आई, वह दो क्षेत्रों में दिखाई पड़ी : भाषाविज्ञान तथा साहित्य विवेचन। भाषाविज्ञान के क्षेत्र का सम्बन्ध मुख्य रूप से यूरोपीय परम्परा से रहा, और साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र का आंग्ल-अमरीकी परम्परा से। भाषा के अध्ययन का संबंध भाषा की जीवित संरचना के साथ हुआ और साहित्य के अध्ययन का सम्बन्ध साहित्यिक कृति की जीवित संरचना के साथ हुआ।

भाषा शैलीविज्ञान, भाषा विश्लेषण के स्तरों की इकाइयों तथा सम्पूर्ण भाषा-भेद के स्तर पर यह अध्ययन हो सकता है। इसके पक्ष में चार्ल्सबैली, याकोब्सन आदि विद्वान हैं, जिनका झुकाव भाषाविज्ञान की ओर है। चार्ल्सबैली के अनुसार—

"शैलीविज्ञान प्राकृत भाषा का अध्ययन है, जिसे हम सब बोलते हैं। यह न तो शुद्ध तर्क का अनुगत है, न कला का, इसके सामने न कोई तार्किक आदर्श रहता है, न साहित्यिक।"[1]

इसके विपरीत साहित्य-शैली को शैलीविज्ञान का विषय मानने वाले विद्वानों में मार्सल क्रेसो, एस० उलमान, रैनेवेलेक, आदि का नाम प्रमुख है। क्रेसो ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की—

"हम तो बल्कि यहाँ तक कहेंगे कि साहित्य शैली वैज्ञानिक अध्ययन की सबसे उत्तम क्षेत्र है, ठीक इसलिए कि यहाँ भाषिक चयन अधिक स्वैच्छिक एवं सुविचारित है।"[2]

आधुनिक शैलीविज्ञान की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

शैलीविज्ञान की प्राचीन परम्परा की तुलना में आधुनिक परम्परा की सामान्य विशेषताओं को इस प्रकार गिनाया जा सकता है—

(१) शैली के प्रति परंपरागत नियम निर्देशात्मक अभिवृत्ति के स्थान पर वर्णनात्मक अभिवृत्ति का विकास हुआ है। वस्तुत: शैलियों की विविधता के बढ़ जाने से उनमें परस्पर मिश्रण की संभावना और वास्तविकता बढ़ गई है।

(२) शैली की संकल्पना अब विशुद्ध रूप से अंतर्ज्ञानमूलक और अस्पष्ट सी न रहकर अधिक वस्तुगत और पर्याप्त स्पष्ट हो गई है।

(३) शैली को मूलतः भाषासंरचना का अंग-विशेष मानना एक ऐसी उपलब्धि है, जिसमें सैद्धान्तिक औचित्य के साथ व्यावहारिक सौकर्य भी है। अब यह स्पष्ट है कि शैली के उपकरण भाषागत होते हैं, तथा उन्हीं की वृहत्

---

१. शैलीविज्ञान, डा० नगेन्द्र, पृ० १७, १८।

२. लस्टील यंसे तकनीक—१९४७, क्रेसो।

संरचना एक साहित्यिक कृति है। इसलिए भाषा-संरचना के माध्यम से साहित्यिक कृति को समझने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

(4) साहित्यिक रचनाओं की एकमात्र सामग्री भाषा है, और सृजन-प्रक्रिया में मानवीय अनुभव से स्थापित भाषा ही उनका माध्यम भी है। अतः भाषा के प्रयोग-शैली-पक्ष को साहित्यिक अध्ययन में केन्द्रीय स्थान देना उचित है।

(5) शैली के अध्ययन में अब वैज्ञानिकता के लक्षणों का समावेश हो गया है। परिणामों को विश्वसनीय बनाने के लिये तुलनात्मक विधि और सांख्यिकीय विधि का भी सहायक उपकरणों के रूप में प्रयोग हो।

(6) साहित्य के प्रति खंडवादी दृष्टिकोण के स्थान पर अखंडवादी और संरचनात्मक दृष्टिकोण को अपनाया जाना एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है।

(7) शैलीविज्ञान परम्परा में तथा आविर्भाव में अब भी साहित्य के सन्दर्भ तक ही सीमित है। परन्तु अब साहित्येतर पाठों के शैलीवैज्ञानिक अध्ययन पर भी ध्यान दिया जाने लगा है।[1]

आधुनिक शैलीविज्ञान की विशेषताएँ

शैली की सत्ता यद्यपि स्वतन्त्र नहीं, तथापि अपने महत्त्व के कारण शैली का अध्ययन एक अर्द्धस्वतन्त्र शाखा के रूप में होने लगा है। डा० सुरेशकुमार ने इस संबंध में दो बातों पर विशेष जोर दिया है।

(क) शैलीविज्ञान अध्ययन का सैद्धान्तिक और प्रणालीगत मूल तत्त्व है, भाषा-पक्ष तथा वस्तुपक्ष का सहसम्बन्ध।

(ख) इसकी इकाई है एक पाठ, चाहे वह साहित्यिक-उपसाहित्यिक प्रकृति का हो, या साहित्येतर शास्त्रीय अथवा सामाजिक व्यावहारिक।[2]

इन दोनों बातों का सम्बन्ध इस मान्यता के साथ है कि भाषा और साहित्य के सम्बन्ध को हम "शैली" से नामांकित करते हैं। एक पाठ के दो पक्षों (एक भाषा का, दूसरा वस्तु का) के बीच अंतर्निहित सहसम्बन्ध का उद्घाटन ही शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण है। जैसा पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि हम भाषा की शैली का अध्ययन भी कर सकते हैं। इस प्रकार शैलीविज्ञान की मुख्य शाखाएँ दो हुई हैं—भाषा शैलीविज्ञान, साहित्य शैलीविज्ञान।

आधुनिक शैलीविज्ञान की अध्ययन पद्धतियाँ

इसके अन्तर्गत मुख्य पद्धतियाँ इस प्रकार हैं—

1. विस्तार के लिए देखें—शैलीविज्ञान, डा० सुरेश कुमार, पृ० 161-162।
2. विस्तार के लिए देखें—शैलीविज्ञान, डा० सुरेश कुमार, पृ० 163-164।

(१) प्रेक्षण पद्धति : सांख्यकीय पद्धति

प्रेक्षण पद्धति में हम अपने अंतर्ज्ञान से शैलीगत उपकरणों का अभिज्ञान तथा उनसे निष्पन्न प्रभावों से उसके सम्बन्ध तथा सम्बन्ध की प्रकृति की परीक्षा करते हैं। सांख्यिकीय पद्धति में विभिन्नस्तरीय भाषागत उपकरणों की आवृत्ति गणना की जाती है तथा अपेक्षया अधिक आवृत्ति वाले उपकरणों को शैलीगत उपकरण का दर्जा दिया जाता है।

(२) रूपपक्ष-वस्तुपक्ष : वस्तुपक्ष-रूपपक्ष

रूपपक्ष-वस्तुपक्ष की पद्धति में हम प्रतीक के संकेत पक्ष से संकेत्यपक्ष की ओर जाते हैं, तथा वस्तुपक्ष-रूपपक्ष में प्रक्रिया का क्रम इससे उल्टा होता है। भाषा शैली-विज्ञान में भाषागत उपकरण रूपपक्ष होंगे, तथा उनके प्रकार्य वस्तुपक्ष। साहित्य शैली-विज्ञान में भाषागत उपकरण तथा भाषाशैली के नाम रूपपक्ष होंगे, तथा साहित्यिक घटक तथा उनसे संश्लिष्ट प्रभाव गठन तथा बुनावट दोनों सोपानों के वस्तुपक्ष।

(३) खंडवादी : अखंडवादी

खंडवादी अध्ययन में पाठ के कतिपय चुने हुए शैलीगत उपकरणों का अध्ययन होता है, तथा अखंडवादी अध्ययन में पाठ की शैली का उसकी समग्रता में अध्ययन होता है।

(४) अंतर्लक्षी-बहिर्लक्षी

अंतर्लक्षी दृष्टि में हम भाषा तथा पाठ की शैली का अध्ययन स्वयं शैली के व्याख्या-मूल्यांकन के लिये ही करते हैं। शैली का अध्ययन ही हमारा लक्ष्य होता है। बहिर्लक्षी दृष्टि में शैली का अध्ययन साधन रूप में होता है। भाषा के शैली के अध्ययन में हम भाषिक समुदाय के सामाजिक सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के संकेत ढूंढ सकते हैं।

(५) वर्णनात्मक-तुलनात्मक

वर्णनात्मक पद्धति में हम व्यवस्थित रीति से भाषा या पाठ के शैलीगत उपकरणों का वर्णन प्रस्तुत कर देते हैं, यद्यपि उनमें आंतरिक तुलना करनी ही होती है। तुलनात्मक पद्धति में हम भाषा के दो भेदों की या पाठों की शैलीगत संरचना की तुलना करते हैं, यद्यपि उसके अंग रूप में वर्णन करना ही होता है। इस प्रकार दोनों में अंतर प्रधानता और गौणता का है।

(६) समकालीन : कालक्रमिक

समकालीन आयाम की अध्ययन प्रणाली में भाषा के किसी भेद को या किसी पाठ को काल की धारा से कुछ समय के लिये विच्छिन्न करके उसका शैलीगत अध्ययन

किया जाता है। कालक्रमिक आयाम में भाषा या पाठ की शैली का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य स्पष्ट किया जाता है।

(७) आगमनात्मक निगमनात्मक

आगमनात्मक पद्धति में हम विशेष से सामान्य की ओर जाते हैं, एक विशिष्ट तथा निश्चित सामग्री के आधार पर सामान्य सिद्धान्त निर्धारित करते हैं। निगमनात्मक पद्धति में सामान्य से विशेष की ओर जाते हैं, सामान्य सिद्धान्तों को एक विशिष्ट तथा निश्चित सामग्री पर लागू करते हैं।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि ये पद्धतियाँ सदा समन्वित रूप में ही व्यवहार में आती हैं। यह ठीक है कि एक समय में एक पद्धति युग्म के दोनों अंशों का समान स्तर का प्रयोग नहीं हो सकता, उसमें गौण, प्रधान का भेद करना होगा। पद्धतियों को निर्धारित करने में हम अपने अध्ययन के लक्ष्य के साथ-साथ अपनी क्षमता तथा अंशतः रुचि से भी अनुशासित होंगे।

(ख) काव्य की संरचना : स्वरूप निरूपण

प्रबन्ध के पठन-पाठन के पश्चात् जो एक प्रतिमा मानस पर अंकित हो जाती है, उसी के मूल में कृति की व्यवस्था संनिहित रहती है। कृति एक व्यवस्थित वस्तु है। एक कृति को पढ़कर पाठक को जो अनुभव होता है, उसकी अभिव्यक्ति कृतिरूपी व्यवस्था के विभिन्न उपादानों के सम्बन्ध पर ही केन्द्रित होती है। यही व्यवस्था संरचना को जन्म देती है।

किसी वस्तु का समग्र मूल्यांकन उसके संरचनात्मक तथ्यों के द्वारा ही जाना जा सकता है। संरचना में साहित्यिक कृति के घटक एक दूसरे पर आश्रित होते हुए आपसी सम्बन्धों की जिस संश्लिष्ट योजना में अपना प्रकार्य सम्पन्न करते हैं, उस योजना को कृति की संरचना कहते हैं। भाषा की संरचना को जानने के लिये उसकी मूल इकाई शब्दों की व्यवस्था को जानना होता है। इस प्रकार संरचना में समस्त रचना का एक अंश दूसरे अंश को अपेक्षा रखता है, अथवा दूसरे अंग के साथ सम्बद्ध रहता है। इस सम्बन्धगत व्यवस्था को ही संरचना के रूप में जाना जा सकता है। इस संरचना की अन्तःवृत्ति में सापेक्षता होती है। इस सापेक्षता का अभिप्राय यही है कि एक अंश स्वतन्त्र अस्तित्व की इकाई होते हुए भी उस व्यवस्था में इकाई न होकर एक दूसरे पर आधारित होता है। परस्पर अंगों की सापेक्षता संरचना की मूल संकल्पना होती है। यथा-समग्र शरीर एक संरचना होता है। इसमें अनेक संरचक संस्थान होते हैं। इस शारीरिक संस्थान में हाथ की उँगली का स्वयं में कोई महत्व तब तक नहीं होता है, जब तक उसका सम्बन्ध सम्पूर्ण जीवित शरीर से नहीं होता है।

भारतीय परम्परा में शैली का स्वरूप विभिन्न सम्प्रदायों के रूप में मिलता है, आधुनिक संरचनावादी विश्लेषण के समान नहीं। इसलिये भारतीय शैलीविज्ञान की

व्याख्या करते समय इसका वहीं उल्लेख कर दिया गया है। संरचना के बीज आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक में और कुन्तक के वक्रोक्ति जीवितम् में व्यापक रूप में मिलते हैं। ध्वन्यालोक में संरचना के तत्त्व-पद, प्रत्यय, उपसर्ग और वाक्य में उनके स्थापन के आधार पर विश्लेषण किया गया है।

साहित्य समीक्षा के क्षेत्र में साहित्य की संरचना की बात मूलतः रूसी रूपवादी आलोचना में आरम्भ हुआ, जो बाद में प्राग-स्कूल में साहित्य के प्रकार्यमूलक पक्ष की संकल्पना में प्रतिफलित हुई। अमरीकी नव्य समीक्षा में भी संरचनावाद की चर्चा हुई है, इनके फलस्वरूप आँग्ल अमरीकी समीक्षा धारा की लेखककेन्द्रित समीक्षा प्रणाली, जिसका हिन्दी में बहुत प्रचार हुआ और जो अब भी खूब चल रही है, को मोड़ देकर कृति-केन्द्रित समीक्षा का प्रवर्तन हुआ।

संरचनावाद स्वयं अपने आप विज्ञान द्वारा आधुनिक युग में आया। प्राचीन संस्कृत साहित्यशास्त्र में भी इसका उल्लेख मिलता है। परन्तु वर्तमान युग में संरचनावाद गणित में आया, जीव-विज्ञान में इस पर बल दिया गया है। गणित में संरचना के विषय में इतना आकर्षण है, जितना कि भाषा-विज्ञान में। मैनेजर पाण्डेय अपने लेख संरचनावाद में लिखते हैं :

"इस शताब्दी के आरम्भ में मुख्यतः भाषासम्बन्धी चिन्तन से संरचनावाद का उदय हुआ। भाषाविज्ञान के अतिरिक्त मानव-वंशशास्त्र, मानव जाति विज्ञान, मिथक के अध्ययन, सामूहिक चेतना (युग) की धारणा मनोविश्लेषण, रूसी रूपवादी साहित्य चिन्तन, तुलनात्मक धर्मशास्त्र, हूर्सल का फेनोमेनलाजिकल चिन्तन गणित और अनेक प्रकार के समाजशास्त्रीय चिन्तन के संयोग से आधुनिक संरचनावाद का विकास हुआ है।[1]

रूस में कविता और दूसरी कलाओं में व्याप्त प्रतीकवादी बिम्बवादी और भविष्यवादी प्रवृत्तियों के वातावरण में कला के रूपपक्ष को कलाचिन्तन का केन्द्र बनाया गया। इस रूपवादी चिन्तन के दौरान कलाकृति के रूपात्मक संगठन का विवेचन ही साहित्य-चिन्तन का लक्ष्य हो गया। विक्टर श्क्लोवस्की और बी० एम० आइकेनबाम ने १९२० के आसपास साहित्य चिन्तन में रूपवाद की स्थापना की, और इस रूपवाद के समानान्तर ही एम० एम० बारतिन तथा बी० या० प्रॉप० आदि ने साहित्य और लोक कथाओं के विवेचन में संरचनात्मक विश्लेषण पद्धति का विकास किया।[2]

रोलां बार्त और लेवी स्त्रोस के चिन्तन में संरचना की परिभाषाएँ अलग-अलग हैं। सभी प्रकार के संरचनावादियों के साहित्य-चिन्तन को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि संरचनावादी समग्रता को अंशों से अधिक महत्व देते हैं, लेकिन वे एक ओर अंशों के आपसी सम्बन्ध का विवेचन करते हैं। संरचनावाद का दूसरा आधारभूत

---

१. आलोचना—३८, संपादक—नामवर सिंह, संरचनावाद-लेखक—मैनेजर पाण्डेय।
२. आलोचना—३८, संपादक—नामवर सिंह, संरचनावाद-लेखक—मैनेजर पाण्डेय।

सिद्धान्त है, 'समकालिक' और 'ऐतिहासिक' में अन्तर स्थापित करना। उनकी तीसरी मान्यता यह है कि संरचनाएँ सतह के नीचे रहती हैं, इसलिए आलोचना में रचना का गहरा विश्लेषण होना चाहिये, ऊपरी विवेचन नहीं। प्रत्येक प्रकार के संरचनावादी, संरचना-पद्धति की सार्वभौमिकता में विश्वास करते है।

"संरचनावादी साहित्य के भाषिक स्वरूप पर अधिक बल देते हैं। संरचनावादियों ने अगर कुछ नया किया तो वह यह कि उन्होंने साहित्य के एक पक्ष, रूप के भाषिक स्वरूप को ही साहित्य का सब कुछ माना और उसके विश्लेषण को साहित्य विज्ञान का उद्देश्य घोषित किया। साहित्यिक कृति की साहित्यिकता शाब्दिक संरचना में नहीं, उस विशिष्ट संरचना की विशिष्टता से उत्पन्न अर्थशक्ति में निहित होती है। संरचनावादी साहित्य के स्वरूप-निर्धारण में संदेश से अधिक महत्त्व माध्यम को देते हैं, या उनके लिये माध्यम ही संदेश है।"[1]

संरचना एक मनोवैज्ञानिक यथार्थ है, आन्तरिक अनुभव की उपलब्धि है। इसका अपना अस्तित्व है तथा अपने अस्तित्व को हमारी चेतना पर आरोपित करना इसकी आंतरिक विशेषता है। संरचना पूर्ण होती है। साहित्यिक कृति भी पूर्ण होती है। संरचना जीवन्त होती है। वह गतिशील है, स्थिर या जड़ नहीं। उसमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, विकास होता रहता है। तभी वह एक पूर्ण वस्तु बनती है। संरचना का पूर्ण होना उसके जीवंत होने पर निर्भर है तथा जीवन्त होने की संगति उसकी पूर्णता में है। यदि वह जीवंत न हो तो संरचना की पूर्णता नहीं बन सकती। संरचना की तीन विशेषताएँ हैं—

१—पूर्णता
२—जीवंतता
३—स्वनिष्ठता

(१) पूर्णतर

पूर्णता का तात्पर्य संरचना के उस गुण की ओर संकेत करना है, जिसके कारण हम उस संरचकीय तत्वों के माध्यम से अभिव्यक्ति की मूल प्रयोजनवती भावना की ओर जाते हैं। इस मूल प्रयोजन को स्पष्ट करने की क्षमता परम्परागत रचना की प्रथम शर्त है। यदि रचना पूर्वापर संरचकों में तारतम्यता का निर्वाह होते हुए पाती है तभी उसमें पूर्णता का गुण आ जाता है।

(२) जीवंतता

प्रत्येक सत्ता की अपनी निजी शक्ति होती है, अभिव्यक्ति की यह सौष्ठवमयी शक्ति जो अन्यत्र से इसे पृथक कर अस्तित्ववान् बनाती है। संरचना की यह विशिष्टता उसकी जीवंतता का स्वरूप होती है।

---

१. आलोचना-३८, सम्पादक—नामवरसिंह, संरचनावाद—लेखक—मैनेजर पांडेय।

(३) स्वनिष्ठता

प्रत्येक रचना के अवयव अपनी रचना के प्रति स्वनिष्ठ होते हैं। अर्थात् उनका पारस्परिक सम्बन्ध एक निश्चित अर्थ की ओर होता है। यदि इन अवयवों का स्वनिष्ठापन नहीं है, तब वाक्य स्तर पर वे अवयव अर्थबोध कराने में बाधक प्रतीत होंगे। इसलिये यह अनिवार्य हो जाता है कि वाक्य में प्रयुक्त संरचक तत्त्व अर्थबोध कराने के लिए स्वनिष्ठता का स्वरूप या भाव स्पष्ट करते हैं, उनकी वाक्य के अनुरूप ढलने की प्रवृत्ति ही स्वनिष्ठता होती है।

शैलीविज्ञान संरचना के वस्तुवादी पक्ष का पक्षधर है। यह संरचना के मुख्य पाँच तथ्यों को मानता है—

(१) सकलता (होलनेस)

इसका सम्बन्ध आभ्यन्तर संगीत से है, जिसका क्षेत्र आंगिकता (आर्गेनिसिटी) है। किसी रचना के संघटक (उपांग) किसी न किसी आन्तरिक विधान में बँधे होने के कारण ही संगतिनिष्ठ पूर्णता को जन्म देते हैं। यह इस सम्पूर्णता का विधान ही है जो अर्थ के धरातल पर संघटकों के उस पूर्ण योग से कुछ अधिक और विशिष्ट अर्थ देने में समर्थ है, जो उस संरचना के बाहर रहने की स्थिति में मिलना संभव था। इसलिए संरचना, अंशों के समग्र योग से भिन्न चीज है। यही कारण है कि वाक्य-संरचना में वाक्य-विन्यास का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उदाहरण के लिए हम संरचनात्मक स्तर पर भिन्न दो वाक्यों के अर्थ पर ही ध्यान दें—"मोहन ने गिलास तोड़ दिया और मोहन से गिलास टूट गया। दोनों ही वाक्यों में मोहन और टूटे हुए गिलास की सत्ता है, पर संरचनात्मक विभेद के कारण इन दो वाक्यों में पर्याप्त अर्थ-भेद है।

(२) प्रयोजन

संरचना संघटकों की अपनी स्थिति का परिणाम न होकर उनकी अर्थवत्ता (प्रयोजन) से सम्बद्ध रहती है। संरचना के संघटक (अंग) का अपना एक प्रयोजन अथवा मूल्य होता है जो उसके अन्य संघटकों के सम्बन्धों पर आधारित होता है।

भाषा या रचना के सन्दर्भ में अगर हम दो वाक्यों को उदाहरण रूप में लें, यथा "इस फूल की कीमत पाँच रुपये है, और एक फूल की कोमल हुलाएं सिसकियों ने कुचलाई है" तो स्पष्ट हो जायेगा कि दोनों वाक्यों में फूल शब्द का प्रयोजन एक नहीं है। पर अगर परियों की कथा में एक स्थिति में नायक के कार्य में बाधा डालने वाला राक्षस है, और दूसरे में जादूगर तो दोनों अपने प्रयोजन और प्रकार्य (खलनायक) में एक ही संघटक माने जायेंगे।

(३) स्वायत्तता (आटोनोमी)

संरचना इस अर्थ में स्वायत्त होती है कि वह अपनी सत्ता के लिये स्वयं की

मुखापेक्षी है। वह अपने से बाहर किसी अन्य वस्तु पर आधारित नहीं होती। भाषा और साहित्य के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि उसके किसी घटक का अर्थ या मूल्य उस संरचना से बाहर जाकर सिद्ध नहीं होता, वरन् अन्य संबद्ध घटकों के घात-प्रतिघात के आधार पर निर्धारित होता है।

(४) गठन/बुनावट (टेक्सचर)

"भाषा और साहित्य के सन्दर्भ में बुनावट का सम्बन्ध कथ्य के ऐन्द्रिक पक्ष से रहता है। यह ध्यान देने की बात है कि भाषा के बाहर स्थित संसार—रूप, स्पर्श, रस गन्ध और नाद की ऐन्द्रिकता से युक्त होने के कारण ठोस होता है। पर भाषा की सामान्य प्रकृति संकेतों और आभासों की उस दुनिया की सृष्टि करती है, जो इन ऐन्द्रिक संवेदनाओं से मुक्त रहती है। भाषा अमूर्तीकरण की प्रक्रिया के सहारे अपने जिन प्रतीकों का निर्माण करती है, वे उस सीमा तक सामान्यीकृत होते हैं कि उनसे संकेतित वस्तुओं से रूप, स्पर्श, रस आदि संवेदनायें झर जाती हैं। जब हम किसी फूल यथा गुलाब या कमल से संकेतार्थ को शब्द प्रतीक द्वारा संकेतित करते हैं, तब उसमें उस फूल के रूप-स्पर्श-गन्ध आदि ऐन्द्रिक संवेदनाओं का योग नहीं होता। साहित्यकार वस्तुतः ऐसी ही व्यावहारिक और संवेदनाओं के आधार पर ठोस बनाता है। इस सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि यद्यपि भाषा, अपनी प्रकृति में प्रतीकों में सबसे अधिक अमूर्त होती है, पर उसके साथ उसी में सभी ऐन्द्रिक पक्षों को व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता होती है। बुनावट का सन्दर्भ भाषा की अमूर्त और जातीय प्रकृति को मूर्त और विशिष्ट रूप देने का होता है, जिससे भाषा वस्तु रूप में सिद्ध हो सके।"[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि संरचना अमूर्त होने के कारण बौद्धिक और संकल्पनात्मक होती है। वह अपनी प्रकृति में रूप-निरपेक्ष होती है। पर बुनावट का पूरा क्षेत्र ऐन्द्रिक होने के कारण रूपगत होता है। संरचना अगर प्रकार्य की अवधारणा पर आधारित है, यथानायक, खलनायक आदि, तो बुनावट उस खलनायकत्व के उस वैयक्तिक वैशिष्ट्य पर जो एक खलनायक जो दूसरे खलनायक से भिन्न कर देता है।

(५) विपथन या विचलन

रचयिता जब अपने कथ्य में किसी एक अंश को विशेष रूप से उभारना चाहता है, तो इसे विशिष्ट बल देना कहते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह जिन साधनों का आधार ग्रहण करता है, उसमें से एक साधन है—विचलन। काव्य भाषा का सर्व-प्रमुख तत्व है—सामान्य भाषा से विपथन अथवा विचलन। जैसा कि डा० सत्यदेव चौधरी ने लिखा है—"कवि सामान्य भाषा से हटकर "काव्य-भाषा" का प्रयोग करता है—इस मार्ग भेद अथवा विचलन अथवा विपथन में ही उसका काव्यत्व निहित है, उसकी यह "विचलित" अथवा "विपथित" भाषा साधारण जन की सामान्य भाषा की

---

१. संरचनात्मक शैलीविज्ञान, डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, पृष्ठ ४३।

लीक से परे हटकर उसे सामान्य मानव से ऊपर उठाते हुए कवि के महनीय पद पर आसीन कर देती है।[1]

काव्य की संरचना के मोटे तौर पर तीन भेद किए जा सकते हैं—

(१) आख्यान प्रधान संरचना

सतही तौर पर अन्य पुरुष की प्रधानता कथा की सूत्रबद्धता, वर्ण्य वस्तु की विविधता और छन्द-विधान की सादगी और नियत बद्धता आदि इसके अन्तर्गत आती हैं।

(२) नाटकीयता प्रधान संरचना

इसके अन्तर्गत कोई द्वन्द्व, एक से अधिक व्यक्तियों या एक से अधिक दृष्टियों के बीच तर्क-वितर्क रहता है।

(३) गीति प्रधान संरचना

इसमें यह आवश्यक है कि उत्तम पुरुष ही कविता के ऊपर हावी रहे, और लय अधिक सीधी और प्रवाहमान हो, जिससे उसमें अपने आप बहा ले जाने की क्षमता हो। गीतात्मक काव्य में, और विशेष रूप से आधुनिक गीतात्मक काव्य संरचना में प्रतीक विधान का विशेष उपयोग सार्थकता रखता है।[2]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि कोई भी साहित्यिक कृति कुछ संघटकों का संश्लिष्ट रूप होती है। कृति के विश्लेषण अथवा आलोचना हेतु वही निर्धारित घटक ही मानदण्ड होते हैं। ये घटक पृथक्-पृथक् सत्ता रखते हुए भी असंबंधित होते हैं। यह संघटकों में निहित परस्पर अन्वय सम्बन्ध ही समस्त घटकों को जोड़कर एक संपूर्ण वस्तु का निर्माण करता है, जिसे संरचना कहा जाता है। डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव की मान्यता है—

संरचना से तात्पर्य किसी भी सावयव वस्तु के (साहित्यिक प्रकृति) के संगीत-निष्ठ साकल्य (आर्गेनिक होल) रूप से होता है। वह अपना रूप आंगिक के विभिन्न संघटकों के बीच पाये जाने वाले अन्वय सम्बन्धों के आधार पर ग्रहण करती है।"[3]

(ग) काव्य की बनावट और बुनावट : विश्लेषण

किसी कृति के स्वरूप के उद्घाटन के दो पक्ष प्रमुख होते हैं। एक पक्ष होता है कृति का भाव तत्व और दूसरा तत्व अभिव्यक्ति पक्ष। भावतत्व को व्यक्त करने की रीति की विशिष्टता ही शैली के नाम से जानी जाती है। कृति की अभिव्यक्ति में शैली

---

१. भारतीय शैलीविज्ञान, डा० सत्यदेव चौधरी, पृ० १८।
२. विस्तार के लिये देखें—रीतिविज्ञान, डा० विद्यानिवास मिश्र, पृ० ८७।
३. संरचनात्मक शैलीविज्ञान, डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, पृ० ४३।

का महत्वपूर्ण स्थान इसलिए भी अधिक होता है, क्योंकि इससे संरचना के स्वरूप के उद्घाटन के साथ अभिव्यक्त करने वाले के कौशल के साथ-साथ उसकी क्षमता का भी बोध हो जाता है।

किसी कृति के संरचनात्मक स्वरूप का उद्घाटन उस रचना की "बनावट और बुनावट" द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। बनावट से तात्पर्य उस संरचनात्मक रूप से होता है, जिससे किसी कृति की संरचना विभिन्न सोपानों से निर्मित हुई है। विभिन्न संरचक तत्वों द्वारा उस समग्र अभिव्यक्ति के शिल्प को "बनावट" के नाम से जाना जा सकता है। किसी कृति में संरचक सोपानों को "बनावट" द्वारा व्यक्त किया जा सकता है—

"साहित्यिक कृति का प्रबन्ध के अध्ययन के सोपानक्रम में इसे बनावट और बुनावट के अध्ययन द्वारा उजागर किया जा सकता है।"[1]

इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि किसी कृति का जिन संरचकों से प्रभाव उत्पन्न होता है, उन तत्वों की संयोजना जो "बुनावट" के रूप में मुखरित होती है, उन संरचकों को बुनावट के नाम से जाना जाता है, जैसा कि डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने लिखा है—

"किसी कृति के सूक्ष्म प्रभाव निष्पन्न करने वाले तत्वों का समग्र अवलोकन बुनावट है।"[2]

किसी कृति की आन्तरिक अनुभूति को अनावृत करने में उन तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान होता है, जो एक विशिष्ट बिम्ब बनाते हैं। बिम्ब बनाने वाली विधायनी अनुभूति का कथ्य की ऐन्द्रिक अनुभूति से महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है। इन तत्वों की व्यवस्थित क्रम संयोजना कृति को एक ठोस तथा यथार्थपरक सूक्ष्म आधार प्रस्तुत करती है, जिसके आधार पर कृति को जाना जा सकता है। कथ्य की ऐन्द्रिक अनुभूति के संदर्भ में डा० श्रीवास्तव की मान्यता है—

"बुनावट का सम्बन्ध कथ्य के ऐन्द्रिक पक्ष से रहता है। यह ध्यान देने की बात है कि भाषा के बाहर स्थित संसार, रूप, स्पर्श, गंध और नाद की ऐन्द्रिकता से युक्त होने के कारण ठोस होता है।"[3]

किसी कृति की बनावट का अध्ययन करते समय यह तथ्य भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि काव्य में कथानक को किस प्रकार से संयोजित किया जाता है। कथा को प्रतीक रूप में अथवा संकेतों द्वारा व्यक्त किया गया है, या खण्डों में व्यक्त करते हुए कथा को किस प्रकार से गुथा गया है। इस कथा की संरचना व्यक्त करने में पात्रों की संयोजना और कोटि क्या है? पात्रों की अवधारणा सिम्बोलिक है अथवा सपाट। पात्र

---

१. संरचनात्मक शैली विज्ञान, डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, पृ० ४६।
२. संरचनात्मक शैलीविज्ञान, डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, पृ० ४७।
३. संरचनात्मक शैलीविज्ञान, डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, पृ० ४६।

संकेतों द्वारा भावाभिव्यक्ति में सहायक होते है, अथवा सहज रूप से अभिव्यक्त हुए हैं, उन सभी संरचनात्मक अभिव्यक्तियों का प्रस्तुतीकरण इस संरचनात्मक बुनावट द्वारा ही मुखरित होता है।

पात्रों द्वारा वातावरण की अभिव्यक्ति का अध्ययन भी बुनावट की परिधि में आता है। इस बुनावट को अभिव्यक्त करने मे भाषाई संकल्पना महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। इसी संदर्भ में डा० श्रीवास्तव की मान्यता है कि—

"बुनावट का विश्लेषण इस बात को स्पष्ट करता है कि कथानक, पात्र, वातावरण आदि भाषा के ताने-बाने पर ही खड़े है।"[1]

इस प्रकार से स्पष्ट हो जाता है कि सामान्य भाषा तथा काव्यभाषा में अन्तर मिलता है। काव्य-भाषा में सामान्य भाषा की अपेक्षा भावाभिव्यक्ति एवं अर्थवहन की क्षमता अधिक होती है। काव्य भाषा सामान्य भाषा की तरह सहज एवम् स्पष्ट बयानी नहीं होती है, अपितु शब्द, वाक्य, सहज होते हुए भी इस तरह बुने गुये जाते हैं, जिससे कथ्य का भावपक्ष एक विशिष्ट भाव-संप्रेषण में समर्थ हो जाता है। इन संरचक तत्वों की सुसंगठित व्यवस्था को शैली के नाम से जानते हैं। किसी कृति की शैली संरचना के विधायक तत्वों में निम्न तत्वों की अवधारणा महत्वपूर्ण होती है—

(१) केन्द्रीय भाव
(२) चयन
(३) समानान्तरता
(४) अभिप्राय
(५) विचलन
(६) सादृश्य
(७) बिम्ब
(८) प्रतीक
(९) मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ

(१) केन्द्रीय भाव

कोई भी काव्य कृति किसी विशिष्ट उद्देश्य अथवा प्रयोजन को लेकर लिखी जाती है। कृति का कथानक एक भाषाई संरचना है, जो विभिन्न प्रकार के पृथक-पृथक संघटकों को संघटित करता है क्योंकि प्रत्येक संघटक का लक्ष्य एक ही है—"मूल प्रतिपाद्य" को संप्रेष्य बनाना। इसीलिए सभी संघटकों में पारस्परिक आंतरिक अन्वय संबंध भी पाया जाता है। इसी अन्विति के आधार पर ही संघटक परस्पर योजित होकर एक पूर्ण संरचना के रूप में उपस्थित होते हैं।

अतः ऐसा भी कह सकते हैं कि केन्द्रीय भाव ही सभी वह महत्वपूर्ण बिन्दु है,

१. संरचनात्मक शैलीविज्ञान, डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, पृ० ४७।

विभिन्न संघटकों को संयोजित करके संपूर्णता प्रदान करता है। यही संरचना कहलाती है। ऐसी संरचना की संकल्पना माथुर जी की प्रत्येक कविता अभिव्यक्त करती हुई दिखाई देती है।[1]

(२) चयन

एकाधिक भाषिक इकाइयों में से सार्थक एवं साभिप्राय किसी एक भाषिक इकाई को चुन लेना ही चयन है। कोई भी दो शब्द पूर्णतः पर्यायवाची नहीं होते, उनकी भावच्छाया में भिन्नता होती है। भिन्न-भिन्न भावच्छाया वाले पर्यायों में से किसी एक सार्थक को चुनना ही चयन कहा जाता है।

मूलतः कवि का नैपुण्य, शब्द-प्रयोग पर ही आधृत रहता है। अन्य कलाकारों की तरह कवि को छूट नहीं है कि उपकरण चयन के पश्चात् प्रयोग प्रारम्भ करें। शब्द की स्वायत्त अर्थवत्ता उसे प्रयोग निरपेक्ष चयन की सुविधा नहीं देती। उसका शब्द-चयन तथा शब्द-प्रयोग परस्पर सापेक्ष होता है।

चयन भाषा के विभिन्न स्तरों पर होता है—ध्वनि, पद, पदबन्ध, वाक्य आदि। इसके अतिरिक्त व्याकरणिक स्तर पर भी चयन किया जाता है। कविता की सम्पूर्ण सार्थकता कवि की शब्द-साधना पर निर्भर है। शब्द-चयन तथा शब्द प्रयोग उसकी साधना के प्रक्रिया क्षेत्र हैं। कवि उपयुक्त शब्दों की खोज करता है, उसमें सामान्य अर्थ से बड़ा अर्थ भरता है।[2]

(३) समानान्तरता

इसका अर्थ है किसी भाषिक लक्षण या विधान को पुनरावृत्ति की नियमितता। "समानान्तरता जहाँ एक तरफ संरचना के धरातल पर पुनरावृत्ति की संकल्पना को आधार बनाती है, तो दूसरी ओर समतुल्यता की अवधारणा को। समतुल्यता समता-परक भी हो सकती है विशेष परक भी।[3]

समानांतरता की परिधि सीमित नहीं है""यह भाषा से हर स्तर ध्वनि, रूपिम, शब्द पदबंध, वाक्य, वाक्य बंध आदि पर पायी जाती है।

ध्वनीय समानान्तरता का रूप छन्द-योजना में स्पष्टतः परिलक्षित होता है। उच्चारण की लघुतम इकाई अक्षरों के उच्चारण के आधार पर इसका मापन किया जा सकता है। वर्ण और मात्रा के आधार पर छन्दों की उद्भावना है।

अलंकारों में अनुप्रास अलंकार में वर्णों की पुनरावृत्ति के आधार पर ध्वनीय समनान्तरता होती है। यमक अलंकार में पदों में समानान्तरता होती है।

---

१. विस्तार के लिए देखिये—तृतीय अध्याय।
२. विस्तार के लिये देखें—षष्ठ अध्याय।
३. शैलीविज्ञान, डा० भोलानाथ तिवारी।

समानान्तरता में समान शाब्दिक इकाइयों या विरोधी शाब्दिक इकाइयों की पुनरावृत्ति होती है। समानान्तरता केवल ध्वनि स्तर पर ही नहीं, अर्थ के स्तर पर भी होती है।

माथुर जी की कविताओं में भावस्तर की भी समानान्तरता मिलती है। यह समानान्तरता वाक्य स्तर पर है। वाक्यों में शब्दों का क्रम अवश्य भिन्न है, परन्तु विशेषण एक ही भावाभिव्यक्ति के परिचायक हैं। ऐसी समानान्तरता "दो पाटों की दुनिया" में परिलक्षित होती है—जैसे—

"चारों तरफ शोर है
चारों तरफ भरा पूरा है
चारों तरफ मुर्दनी है
भीड़ और कूड़ा है

हर सुविधा एक ठप्पेदार—
अजनबी उगाती है
हर व्यस्तता
और अधिक अकेला कर जाती है
हम क्या करें
भीड़ और अकेलेपन के क्रम से कैसे छूटें।

× × ×

राहें सभी अन्धी हैं
ज्यादातर लोग पागल हैं
अपने ही नशे में चूर
वहशी हैं या गाफ़िल हैं
खलनायक हीरो हैं,
विवेकशील कायर हैं
थोड़े-से ईमानदार हैं

लगते सिर्फ मुजरिम हैं,
हम क्या करें
अविश्वास और आश्वासन—
के क्रम से कैसे छूटें।"[1]

सर्वत्र सभी ओर तथा सभी राहों में पदबन्ध स्तर पर समानान्तरण है। भीड़ और कूड़ा है, ज्यादातर लोग पागल हैं। इनमें भावगत समानान्तरता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।" हरव्यस्तता और अधिक अकेला कर जाती है। और "थोड़े से ईमानदार हैं लगते सभी मुजरिम हैं, इसमें व्यक्तिशः अनुभूति में अकेलापन, अकेले

१. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ३

होने का एहसास समानान्तरता का केन्द्र बिन्दु है। दोनों ही उदाहरणों में हम क्या करें, मे अकिंचनता और असहाय का दृष्टि से वाक्यगत समानान्तरता है।

भीड़ और अकेलेपन का क्रम कैसे छूटे
अविश्वास और आश्वासन के क्रम से कैसे छूटे
तर्क और मूढ़ता के क्रम से कैसे छूटे
देवता और राक्षस का क्रम कैसे छूटे''[१]

इसमें द्वन्द्वात्मक समानान्तरता, अकेलापन और भीड़, आस्था और अनास्था विचारहीन और विवेकयुक्त गुणयुक्त और गुणहीन के बीच में जो द्वन्द्व है, उसकी हर स्तर पर समानान्तरता देखने को मिलती है। संघर्षरत व्यक्तित्व में कवि ने मन की दो समान स्थितियों अर्थात् परस्पर विरोध करने की प्रवृत्ति का वर्णन किया है, इसमें भी समानान्तरता का बीज निहित है। एक ही मन के दो भाव और दोनों में विरोध करने की सबल प्रवृत्ति भावगत स्तर पर समानान्तरता का ही बोध कराती है। क्रियाशीलता की दृष्टि से दोनो की सक्रियता में जो समानान्तरता है, उसका चित्र कवि की निम्न-लिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है :—

मेरे दो मन
साथ-साथ रहते है
दोनों एक-दूसरे के
घोर शत्रु हैं
बोलचाल बन्द है
एक दूसरे को देख
मुँह फेर लेते हैं
एक जाता ऊपर
तो दूसरा पाताल में
× × ×
एक कहता
हूँ उदास
दूसरा कहता है
अबे, खूब खिलखिला के हंस
एक कहता "जाओ"
दूसरा कहता है "रुको"
"बोलो"
"चुप रहो"
"भाग जाओ"

---

१. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ३-४

"डटे रहो"
"मौन बनो"
"बकबक करो"
"जिन्दगी को प्लान करो"
"बेखबर छोड़ दो।"[१]
× × ×

(४) अभिप्राय

अभिप्राय एक व्यापक शब्द है। अभिप्राय एक प्रकार से आशुलिपि की भाषा है। उदाहरण के लिए—अगर हम यह कहें, कि प्रकृति मनुष्य के सौन्दर्य से पूरित है। इसमें एक प्रकार की उत्तेजना पैदा होती है, भीतर का सौन्दर्य भी बाहर आ जाता है। इस अभिप्राय से यह द्योतित होता है कि भाषा समझी जा सकती है। अभिप्राय पूरे काव्य या कहानी, उपन्यास आदि में संयोजक सूत्र का कार्य करते हैं। "शकुन्तला" नाटक में अभिप्राय किसी भी आधार पर हो सकते हैं, कभी-कभी शुद्ध कल्पना के आधार पर भी होते हैं। हंस को पहले सरस्वती ब्रह्मा का वाहन माना जाता है, उसका सम्बन्ध शास्त्रीय गुणों से है। हंस के लिये यह कहना कि पानी छोड़ता है, दूध पीता है—कल्पना में एक सौन्दर्य है।

हमारी संस्कृति में देवता का अभिप्राय श्रेष्ठ गुणों के रूप में स्वीकार किया जाता है। देवताओं की संकल्पना श्रेष्ठ गुणों के पुंजवत् की जाती है, और वहीं दैत्यों को बुरे गुणों का प्रतीक माना जाता है। इस परम्परागत प्रचलित अभिप्राय को माथुर जी ने भी अपनी कविताओं में प्रयुक्त किया है, जैसे—

"हर आदमी में देवता है
और देवता बड़ा बोदा है
हर आदमी में जन्तु है
जो पिशाच से न थोड़ा है
हर देवतापन
× × ×
हम क्या करें
देवता और राक्षस के क्रम से कैसे छूटे।"[२]

आधुनिक कवियों ने अभिप्रायों का प्रयोग ठीक उसी प्रकार से नहीं किया है जिस प्रकार से भक्तिकालीन अथवा लोक जीवन के साथ जुड़े हुए सर्जकों ने किया है, तथापि अभिप्राय तो अभिप्राय ही है, सायास या अनायास। कविता में अभिप्राय का

---

१. जो बंध नहीं सका, माथुर, पृ० ८८-८९
२. जो बंध नहीं सका, माथुर, पृ० ४

जाना भारतीय जनमानस के कवि का स्वाभाविक गुण ही प्रतीत होता है। भारतीय परिवेश में पाताल की कल्पना अनेक रूपों में मिलती है। उसी एक विशिष्ट परिकल्पना को पाताल राज्य के रूप में कवि ने भी व्यक्त किया है।

"—और दूर किसी जले
इस्पाती भवन के बचे खम्भे पर
मेरा कटा हुआ सिर
पाताल राज-सा।"[1]

नायिका के लिये परम्परागत प्रतीकों/रूपों के अभिप्रायों का वर्णन भी माथुर जी की कविताओं में मिलता है। "चाँदनी सी आदत" "रूप विभ्रमा चाँदनी" कविता में मुखरित होती है। माथुर जी ने कविताओं में प्रचलित होने वाले परम्परागत अभिप्रायों को यथावत् रूप से "चिरन्तन सुख" कविता में खजुराहो स्तुति करते समय लाल कमल का और पद्मासन का जो प्रयोग किया है, वह मूलत: भारतीय परम्परा का द्योतक है—

"फँसे हुए दुहरे पद्मासन
ढली मूर्तियों के
विद्ध साँचे
लाल कमल
कटि, बाँह बाँधे
प्यासी खुली पँखुरियाँ
आधी रुकी हुई घड़ियाँ।"[2]

रोशनी और अँधेरा भी कविताओं में अभिप्रायवत् प्रयुक्त हुआ है। रोशनी ज्ञान का और अन्धकार अज्ञान का जहाँ प्रतीक है, वहीं पर इसका प्रयोग अभिप्राय के रूप में ही होता है।

"निपट खोखली है गुफा
यह घट अँधेरा है
बेपहचाना अन्धकार
भीतर छुट गया है
रोशनी पास नहीं आती है
हर बार
अपनी जगह से हट जाती है।"[3]

(५) विचलन

"सामान्य भाषा नियमों में बंधी होती है। शब्द और अर्थ में एक यान्त्रिक

१. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० २७।
२. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ४६।
३. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ८२।

सम्भव होता है। कविता की भाषा में यह यान्त्रिकता टूट जाती है, इसलिए काव्य भाषा विशिष्ट होती है। इस कारण उसे सामान्य भाषिक नियमों का अतिक्रमण करना पड़ता है। यह अतिक्रमण ही विचलन कहलाता है। अभिव्यक्ति के नये क्षेत्रों की खोज के प्रयास में कवि प्रतिमान से विचलन करता है।''[1]

काव्य में विचलन सर्जनात्मक उद्देश्य के कारण होता है। डा० मिश्र के अनुसार विचलन की अभिव्यक्ति मुख्य तीन स्तरों पर की जा सकती है—

(१) अर्थगत

(२) वाक्य-विन्यास

(३) शुद्ध रूप के धरातल पर विचलन।

''जो लोग यह समझते हैं कि विचलन चौंकाने के अभिप्राय से ही प्रयुक्त होता है, वे वस्तुतः साहित्य के मूल उद्देश्य को पकड़ नहीं पाते। चौंकाना अपने आप में मूल उद्देश्य नहीं हो सकता। चौंकाकर पाठक दूसरी जगह से खींचकर एक दूसरे बिन्दु पर टिकाना ही विचलन का मूलभूत उद्देश्य है।''[2]

वस्तुतः विचलन मुख्यतः सर्जनात्मक कृति के निजी वाक्यविन्यास का ही एक आवश्यक उपकरण है। फिलिप ह्वीलराइट ने अपनी पुस्तक में विचलन को इस प्रकार स्पष्ट किया है :—

''शब्दों में काव्यात्मक वाक्य-विन्यास काव्यार्थ की दृष्टि से चालू भाषा के वाक्य-विन्यास को मोड़ने की एक प्रक्रिया है, मोड़ते समय चालू भाषा के जो प्रचलित क्रम टूटते हैं, उन्हें हम रचनात्मक मेंढ़कदी का विचलन। (क्रिएटिव कोरग्राउडिंग या डेविएशन) कह सकते हैं।''[3]

मूलतः एक सच्ची कविता में विचलन सर्जनात्मक उद्देश्य को पूरा करने का एक सबसे अभिकरण है। कुछ उदाहरणों से इस कथन की पुष्टि हो जाती है।

माथुर जी की कविताओं में ऐसा ही देखने को मिलता है कि शब्दों के अर्थ प्रयोगों के आधार पर विचलित हो जाते हैं, और भिन्न अर्थ देने लगते हैं। जैसे —

''चाँदनी की रात है
तो क्या करूँ
ज़िन्दगी में चाँदनी
कैसे भरूँ।''[4]

इसमें चाँदनी भरने के अर्थ में विचलन है, यहाँ चाँदनी का अर्थ परम्परागत

---

१. भारतीय काव्यशास्त्र शैली वैज्ञानिक संदृष्टि, डा० कृष्ण कुमार शर्मा, पृ० ६७।
२. रीतिविज्ञान, डा० विद्यानिवास मिश्र, पृ० ७७।
३. मेटाफर एण्ड रियलिटी, फिलिप ह्वीलराइट, पृ० ४६।
४. जो बंध नहीं सका, माथुर, पृ० ५८।

व्यवहार से भिन्न हो गया है। इसी प्रकार से "एक चिरंतन सुख" नामक कविता में "लाल कमल" का भी सामान्य अर्थ से भिन्न अर्थ विचलन के कारण ही मिलता है। जैसे —

"लाल कमल
कटि, बाँह बाँधे
प्यासी खुली पँखुरियाँ
आधी रुकी हुई घड़ियाँ।"[1]

यहाँ लाल कमल का विचलित अर्थ कविता की प्रभावान्विति को बढ़ा देता है।

एक अन्य कविता में रोशनी का सामान्य से हटकर असामान्य अर्थ विचलन के कारण ही प्रतीत होता है।

"रोशनी पास नहीं आती है
हम ही पास आते हैं
और वह—
हर बार
अपनी जगह से हट जाती है"[2]

(६) सादृश्य विधान

काव्यभाषा में सादृश्य विधान साभिप्रायता की खोज के लिये एक महत्वपूर्ण साधन है। एक वस्तु जो जानी पहचानी है, उसके द्वारा नयी जानने वाली वस्तु का बोध कराना सादृश्य विधान का उद्देश्य है। सादृश्य विधान के इस सतही उद्देश्य के अलावा एक और भी उद्देश्य है। वह है—"एक साथ दो प्रकार की वास्तविकताओं का साक्षात्कार करते हुए दोनों का संयोजन।"[3]

सादृश्य विधान के सम्बन्ध में एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। सादृश्य का प्रमाण रूप में ज्ञान और सादृश्य की दोनों कोटियों का प्रमाण रूप में ज्ञान, दोनों सादृश्य-प्रतीति के लिए जरूरी हैं। उदाहरण के लिए, किसी बच्चे ने फोटो खींचते समय फ्लैश-गन की चमक देखी है, और इसके बाद वह आकाश में बिजली चमकते देखता है, और चिल्ला पड़ता है—"देखो, कोई फोटो खींच रहा है।"

"वस्तुतः सादृश्य विधान के द्वारा किसी भी वस्तु के अद्वितीय यथार्थ का अद्वितीय रूप मे प्रस्तुतीकरण ही मुख्य लक्ष्य होता है। सादृश्य-योजना का अपने आप में केवल इतना महत्व है कि वह ऊपरी सतह पर परस्पर-सम्बद्ध साधर्म्य के गुणों का सम्मुखीकरण कर देती है, किन्तु इसका मौलिभूत प्रयोजन वह समग्र वस्तु है, जो इस

---

१. जो बंध नही सका, माथुर, पृ० ५८।
२. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ८२।
३. रीतिविज्ञान, डा० विद्यानिवास मिश्र, पृ० ५३।

सम्बन्ध की प्रतीति के द्वारा एक सामंजस्य रूप में सामने आती है, अर्थात् दूसरे शब्दों में जिस वस्तु का वर्णन किया जा रहा है, उसे वर्णन करने वाला स्वयं किस रूप में उस वस्तु में है, इसको भी समेटने के लिये ही किसी दूसरी सदृश-वस्तु के साथ उसे जोड़ा जाता है, और इस जोड़ने के माध्यम से वस्तुओं का न केवल परस्पर सम्बन्ध द्योतित होता है, बल्कि सम्बन्ध स्थापित करने वाला रचनाकार और उसका मानस-तादात्म्य भी लक्षित होता है।[1]

सादृश्य चार प्रकार के युग्मों से संयोजित हो सकता है—

(१) अमूर्त का अमूर्त से संयोजन

(२) अमूर्त का मूर्त के साथ संयोजन

(३) मूर्त का मूर्त के साथ संयोजन

(४) मूर्त का अमूर्त के साथ संयोजन।

इन चारों संयोजनों का प्रयोग अलग-अलग उद्देश्यों से किया जाता है।[2]

(७) बिम्ब विधान

बिम्ब मानसिक आधार है। बिम्ब विशेष रूप से मन में पड़ने वाली छाप का बिम्ब है। प्रकाश जो देखा वह बिम्ब नहीं, अपितु उसकी जो छाप हमारे ऊपर पड़ रही है, वह बिम्ब है। बिम्ब साहचर्य से बनता है। आम के पेड़ के साथ साहचर्य है परार्थ का। आम के पेड़ में फल आना और इच्छा पूर्ति होना ये बिम्ब हैं। चिड़ियों का चह-चहाना उल्लास आदि का बिम्ब है। बिम्ब ध्वनि नहीं है, अपितु उससे जुड़ी हुई अनु-भूति बिम्ब है। बिम्ब शुद्ध रूप में नहीं मिलता, संश्लिष्ट रहता है। बिम्ब पूरे भी हो सकते है, अधूरे भी। खंड बिम्बों का प्रयोग जब होता है, तब एक ही अंश से तात्पर्य होता है। पेड़ फल-फूल पत्तियों से लद गया, समय का बिम्ब है।

"बिम्ब मनुष्य के विभिन्न इन्द्रिय संवेदन के अनुभवों पर आधारित है। किसी वस्तु अथवा घटना को देखने पर उसका जो चित्र मन पर अंकित हो जाये, उस मानस चित्र को रूपक आदि की सहायता से अभिव्यक्त करना बिम्ब कहलाता है। बिम्बों का विषय-वस्तु से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। इसी के कारण काव्य में स्पष्टता, संक्षिप्तता व चित्रात्मकता का समावेश होता है।[3]

(८) प्रतीक विधान

मनुष्य के बारे में यह कहा जाता है कि वह प्रतीक रचने वाला एकमात्र प्राणी है। दूसरा पक्ष यह भी है कि जो कुछ भी मनुष्य रचता है वह एक प्रकार से प्रतीक

---

१. रीतिविज्ञान, डा० विद्यानिवास मिश्र, पृ० ८३।

२. विस्तार के लिये देखें—पंचम अध्याय।

३. विस्तार के लिये देखें—पंचम अध्याय।

बन जाता है। प्रतीक ही वह जादुई कुंजी है, जो सभी द्वारों को खोल सकती है, सभी प्रश्नों का समाधान कर सकती है। प्रतीक अत्यंत स्पष्ट परिच्छिन्न और उपादेय होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। डा० मिश्र ने लिखा है—

"जब कभी वस्तुओं को विच्छिन्न और असम्बन्धित इकाइयों के रूप में देखने की आवश्यकता होती है, तब प्रतीक बहुत उपयोगी होता है।"[1]

प्रतीक संस्कृति की मूल विशेषता को लेकर चले आते हैं। संस्कृति के बाहर प्रतीक का कोई अर्थ नहीं होता। वस्तुतः प्रतीक किसी भी संस्कृति में मानव-मन के द्वारा स्थापित कुछ निश्चित सम्बन्धों का ज्ञापन कराता है।

प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य अथवा अगोचर वस्तु के लिये किया जाता है, जो किसी अदृश्य, अगोचर या अप्रस्तुत विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है। प्रतीकों का प्रयोग कविता के लिये एक आवश्यक अंग बन गया है। प्रतीक सामान्य जीवन से भी ग्रहण किये जाते हैं, जब कुछ विशेष प्रतीक भी होते हैं। इन दोनों प्रकार के प्रतीकों के माध्यम से कविता कुछ अधिक स्पष्ट हो जाती है।[2]

(ढ) मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ

काव्य-भाषा के स्वरूप-निर्माण में उस भाषा के मुहावरों और कहावतों का योग भी रहता है। मुहावरा भाषा का ऐसा प्रयोग है, जिसे प्रयोक्ता अपने कथ्य को अधिक प्रभावपूर्ण व सशक्त बनाने के लिये अपनाता है। इसमें कथन की संक्षिप्ति व भाषा की लक्षणाशक्ति का विनियोग होता है।

"संसार की प्रायः सभी भाषाओं में कम से कम शब्दों में अधिकाधिक सुन्दर और सशक्त अभिव्यक्ति के लिये मुहावरों का सहारा लिया जाता है। मुहावरों के रूप में शब्द शक्तियों का सहज उपयोग संभव बनाया जाता है।"[3]

इसके साथ ही साथ भाषाई इकाइयों के विशिष्ट संयोजन में कारक चिह्न, विराम, अल्प-विराम, पूर्ण विराम, और प्रश्न चिह्न आदि भाषाई संरचकों का महत्व-पूर्ण स्थान होता है। भावाभिव्यक्ति में और छन्द के निर्वाह में इनकी भूमिका जहाँ काव्य की अर्थबोध संकल्पना को स्पष्ट करती है, वहीं कृति के ढाँचे की संरचक बुनावट में व्यवहृत होने वाली इकाई के रूप में इनकी व्यवस्था कृति को एक विशिष्ट भावभूमि प्रदान करती है। इस शैलीविज्ञान के अध्ययन में इन तत्वों की महत्वपूर्ण आवश्यकता होती है।

शैली के अन्तर्गत इन भाषाई बिन्दुओं की संयोजना का जहाँ अध्ययन रहता है, वहीं कृति के प्रसंग में यह संरचक अनुतम सार्थक तत्व होते हैं। इन्हीं के विशिष्ट

---

१. डा० विद्यानिवास मिश्र—रीतिविज्ञान, पृ० ५७।
२. विस्तार के लिये देखें : पंचम अध्याय।
३. डा० भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान।

संयोजन के फलस्वरूप जो पाठ बनता है, वह सामान्य पाठ की अपेक्षा विशिष्ट होता है, यही शैली विज्ञान के संरचकों की मान्यता को व्यक्त करता है—

"शैली का आधार बिन्दु पाठ है। पाठ भाषा-प्रयोग के फलस्वरूप निष्पन्न होने वाली एक बड़ी अन्विति का नाम है। साहित्य शैली-विज्ञान में "साहित्यिक पाठों के अन्तर्गत उपलब्ध भाषा प्रयोग का विश्लेषण होता है।"[1]

इस प्रकार से यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि किसी कृति का बनावट और बुनावट पक्ष किसी कृति में निहित सूक्ष्म प्रभावों को मुखरित करने वाली उस संयोजना से होता है, जिससे किसी कृति संरचना में भावाई रूप तथा संयोजित होने वाली विशिष्ट संरचकों का प्रयोग कवि ने किस पद्धति से किया है। इस संरचक से कृति का महत्व तथा प्रभाव सामान्य कथन से असामान्य हो जाता है। इस सामान्य से असामान्य धरातल पर पहुँचाने वाले तथ्यों का विश्लेषण "बनावट और बुनावट" की संकल्पना की पृष्ठभूमि होता है।

•

१. संरचनात्मक शैलीविज्ञान—डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव।

तृतीय अध्याय

माथुर जी के काव्य की बनावट का केन्द्रीय भाव

बनावट का मुख्य बिन्दु है—केन्द्रीय भाव। कोई भी काव्य-कृति किसी विशिष्ट उद्देश्य अथवा प्रयोजन को लेकर लिखी जाती है। इसे मूल प्रयोजन, मूल प्रतिपाद्य अथवा केन्द्र बिन्दु कुछ भी कह सकते हैं। इसी को लक्ष्य करके कृति का सम्पूर्ण कथानक गठित किया जाता है। कृति का कथानक एक भावाई संरचना है, जो विभिन्न प्रकार के पृथक्-पृथक् संघटकों को संगठित करके बनता है। केन्द्रीय भाव वह धुरी है, जिसके चारों तरफ विभिन्न संघटकों का संयोजन किया जाता है। सम्पूर्ण संघटकों का लक्ष्य प्रत्यक्षत: या परोक्षत: केन्द्रीय भाव को ही परिपोषित करने अथवा संप्रेष्य बनाने का होता है।

प्रत्येक संघटक का एक ही लक्ष्य है, मूल प्रतिपाद्य को सम्प्रेष्य बनाना। इसीलिये सभी संघटकों में पारस्परिक आंतरिक अनन्य सम्बन्ध पाया जाता है। इसी अन्विति के आधार पर ही सभी संघटक परस्पर योजित होकर एक पूर्ण संरचना के रूप में उपस्थित होते हैं। अत: केन्द्रीय भाव ही वह महत्वपूर्ण बिन्दु है, जो विभिन्न संघटकों को संयोजित करके सम्पूर्णता प्रदान करता है। यही संरचना कहलाती है।

छायावादी कविता में वैयक्तिक चेतना एक ऐसा बिन्दु था, जिसने अनेक भंगिमाओं के साथ कवि माथुर को प्रभावित किया। व्यक्ति'धरातल का सम्बन्ध प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में समाज से जुड़ा होता है, उसी सामाजिक जीवन के लोकधरातल पर अवलम्बित सामाजिक चेतना ने उन्हें प्रभावित किया। समाज जीवन में पनपने वाली अनेक विसंगतियाँ आकर्षित करती रहीं। सामाजिक यथार्थ से 'जुड़ने वाला कवि प्राकृतिक परिवेश को अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देता, इसीलिए यथार्थवादी कवि प्रकृति को साक्षात्कार, संघर्ष और श्रृङ्गार के परिप्रेक्ष्य में जहाँ देखता है, वहीं कवि लोकधरातल के चित्रों से भी आंचलिक परिवेश में डूबकर प्रकृति को उकेरता है। कवि का विदेशों में होने वाला भ्रमण भी वहाँ के प्राकृतिक परिवेश से कवि को जोड़ता है, इसलिए वह चित्र भी उनके काव्य में मुखरित होते हैं। वर्तमान भौतिक युग यांत्रिकरण का युग है। वैज्ञानिक आविष्कार समाज जीवन को अनेक स्थलों पर प्रभावित करते हैं। वे सभी परिकल्पनाएँ कहीं न कहीं कवि के मानस में विद्यमान हैं, उन सभी की प्रतिच्छाया का अंकन उनकी कविताओं में निम्नलिखित शीर्षकों से प्रतिबिम्बित होता है—

(क) व्यक्ति धरातल
(ख) लोक धरातल
(ग) प्रकृति-चित्रण
(घ) वैज्ञानिक सन्दर्भ ।

(क) व्यक्ति धरातल

गिरिजा कुमार माथुर उन प्रगतिशील कवियों में से हैं, जिन्होंने किसी एक काव्यधारा में आबद्ध होकर काव्य-रचना नहीं की । उनकी काव्यचेतना सतत विकासोन्मुख रही है । यद्यपि इनके काव्य का प्रधान स्वर रंग, रस और रोमान है, किन्तु समसामयिक काव्यधाराओं के प्रभाव को उन्होंने यथास्थान आत्मसात् किया है । कैलाश वाजपेयी की मान्यता है :—

"वस्तुतः आगे बढ़ जाना, मुड़ जाना, उनके सृष्टा की विवशता है । अपने कृतित्व में हर बार वे रिल्के की भाँति एक मोड़ पर दृष्टिगत होते हैं, किन्तु इससे पूर्व कि पाठक की रागचेतना उनके कृतित्व का धरातल छू सके, वे आगे बढ़ गये होते हैं ।"[1]

छायावादी आवरणप्रियता, अमूर्तता, वायवीयता तथा संकोच की प्रतिक्रिया-स्वरूप काव्य में "वैयक्तिक कविता" का प्रादुर्भाव हुआ । इसमें व्यक्ति की सुखदुःखमयी अनुभूतियों को स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रदान की गई । "यद्यपि छायावादी काव्य भी व्यक्तिपरक अथवा वैयक्तिक था, पूर्व अथवा पश्चात् की कतिपय अन्य काव्यधाराएँ भी वैयक्तिकता की ही नींव पर टिकी हैं, परन्तु व्यक्ति के अपने सुख-दुःख, राग-द्वेष, अभाव और आकांक्षाओं आदि की इतनी स्थूल और प्रत्यक्ष तथा निस्संकोच अभिव्यक्ति न तो इससे पूर्व ही हुई थी और न इसके बाद ।"[2]

इस कविता के प्रादुर्भाव के अनेक कारण हैं, राजनीतिक, सामाजिक तथा दार्शनिक कारणों ने इसे प्रभावित किया है । तत्कालीन युग में व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा प्रमुख थी । दर्शन, राजनीति तथा समाज व्यवस्था सभी में व्यक्तिवाद का युग था । व्यक्ति के अपने सुख, दुःख, राग-द्वेष प्रधान होने लगे । फलतः काव्य में आत्मतत्त्व को अधिक महत्व मिलने लगा । इस आत्मतत्व का प्राधान्य बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल तथा माथुर जी के काव्य में सर्वाधिक है ।

वैयक्तिक कविता की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनसे माथुर जी प्रभावित हुए हैं, किन्तु कुछ तत्त्व जो उनकी प्रकृति के विरुद्ध पड़ते थे, उनकी उन्होंने पर्याप्त उपेक्षा की है । उनके काव्य में बच्चन आदि की भाँति निराशा, नियति व क्षणभंगुरता का प्राधान्य नहीं है । जीवन से पलायन की प्रवृत्ति उसमें नहीं है । वस्तुतः माथुर जी आस्था

---

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—गिरिजा कुमार माथुर, डा० कैलास वाजपेयी, पृ० ५ ।
२. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, डा० नगेन्द्र, पृ० ६३ ।

और विश्वास के कवि हैं। उन्होंने हाला के प्याले में अपने गम को भुलाने का प्रयास नहीं किया। वे वर्तमान क्षण पर नहीं, आगत भविष्य पर भी पूर्ण आस्था रखते हैं।

माथुर जी ने अपने हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति गीतों के माध्यम से की है। गीतिकाव्य मूलतः वैयक्तिक होता है, क्योंकि उसमें हृदयगत भावों का सहज उच्छलन होता है। वैयक्तिक कवियों की भाँति गिरिजा कुमार माथुर जी के काव्य की प्रमुख विशेषता है, प्रेम और शृङ्गार। रंग, रस और रोमान की प्रवृत्ति उनके काव्य में सर्वत्र देखी जा सकती है। माथुर जी ने स्वयं इसे अपने काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है, और उसकी स्थूल व केन्द्रीय अभिव्यक्ति भी की। डा० नगेन्द्र के अनुसार—

"मंजीर" "नाश और निर्माण" ये दोनों रचनाएँ रोमानी रूप और आभा से मण्डित हैं। "मंजीर" के गीतों में उन्होंने किशोर हृदय की रंगीन भावकल्पनाओं को स्वर प्रदान किया है। इन गीतों में छायावाद की रंगीनी तो है, किन्तु इनकी भाव-वस्तु वायवी नहीं है''''''इन गीतों में छायावाद की आभा को इस नये कवि ने रूप प्रदान किया है।"[1]

व्यक्ति धरातल में सबसे प्रमुख तत्त्व प्रेम है। प्रेम मानव-जीवन की नैसर्गिक आवश्यकता है। प्रत्येक काल में प्रेम को किसी न किसी रूप में महत्ता मिलती रही है। जीवन का सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही प्रेम के सहारे टिका है सम्भवतः प्रेम ही मनुष्य जीवन का वह केन्द्र बिन्दु है, जिसके इर्द-गिर्द जिन्दगी चक्कर काटती रहती है। प्रेम जीवन की वह शाश्वत अनुभूति है जिस पर वय और काल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रेम की खुशबू स्थायी खुशबू है, जिसकी भीनी-भीनी महक मन में समाई रहती है—

"क्यूटीक्यूरा पाउडर की सी
भीनी गन्ध
मन में
ये तुम भी हो
याद भी"[2]

प्रेम के सम्बन्ध में कवि का दृष्टिकोण किसी प्रकार की अपराध भावना से ग्रसित नहीं है। जीवन की कोमल अंतरंग अनुभूतियों की अभिव्यक्ति न तो वायवी संकेतों के माध्यम से की है, और न प्रणय को एक प्रक्रिया के स्तर पर मात्र देह-धर्म के रूप में क्षणिक तृप्ति का साधन माना है। कवि ने प्रेम को जीवन के उस प्रेरक तत्व के रूप में स्वीकारा है, जो मनुष्य मात्र में आदिम जिज्ञासा व आकर्षण को बनाये रखता है। यह प्रेम किसी काल्पनिक आलम्बन के प्रति निवेदित न होकर इसी लोक के जीते जागते मनुष्य के प्रति समर्पित किया गया है, अर्थात् प्रेम की स्वीकृति लौकिक धरातल पर की

---

१. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, डा० नगेन्द्र, पृ० १२९।
२. भूमिका, भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० २४।

गई है, जिसमें शरीर आवश्यक रूप से समाविष्ट है। इसीलिये यह प्रेम काम भावना व उद्दाम आकर्षण से युक्त है, जिसकी स्थूल और ऐन्द्रिय अभिव्यक्ति की गई है। इस व्यक्ति धरातल को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है--

(१) वैयक्तिक अनुभूतियाँ
(२) पारिवारिक अनुभूतियाँ

(१) वैयक्तिक अनुभूतियाँ

इस शीर्षक के अन्तर्गत प्रणय के संयोग और प्रणयजन्य पीड़ा दोनों पक्षों का वर्णन विश्लेषित है।

(क) प्रणय

"पहला महत्वपूर्ण पक्ष प्रणय का है, जो सैक्स सम्बन्धी नयी नैतिकता के संदर्भ में विकसित हुआ है। इसमें प्रणय की सूक्ष्म विकृतियों की मुक्त, अकुंठित व्यंजनाएँ हैं, और इसी परिप्रेक्ष्य में सौन्दर्य की अभिनव भूमिकाओं का उद्घाटन भी हुआ है।"[१]

माथुर जी की अधिकांश रचनाओं का आधार मूर्त और मांसल है। उनके प्रणय का आलम्बन कल्पनागम्य नहीं है, वह इसी धरती का है, मूर्त है। इनका प्रणय न तो छायावादी कवियों की भाँति अतीन्द्रिय ही है, और इसमें भूखे तन और भूखे मन का आहार है, और न किसी अदृश्य आलम्बन के साथ कल्पना विहार है। इसमें रूप और रस मांसल, स्पर्श-परिरक्षत कल्पना के संदर्भ से अत्यन्त मनोरम हो गये हैं।

प्रिय का आगमन जीवन में खुशी व उल्लास का संचार करता है। उसके आने से तन और मन प्रेममय हो जाते हैं। प्रिय-मिलन के मधुर क्षण को कोमल अनुभूति का एक चित्र "मामूली शब्दों की मुस्कराहट" इस कविता में चित्रित है।

"तुम्हारे आते ही
मेरे कमरे का रंग गोरा हो जाता है
हर आईने का चेहरा
प्यारा हो जाता है
× × ×
तुम्हारे बदन की रोशनी
मेरे रोओं से होकर
पूरी भीतर आ जाती है।"[२]
× × ×

जीवन का मूलाधार प्रेम है, इसका अहसास मनुष्य को उम्र के प्रत्येक पड़ाव

---

१. नयी कविता—सीमाएँ और संभावनाएँ, माथुर, पृ० ९१।
२. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ५-६।

के साथ महसूस होता है। जीवन में अन्य सभी प्रकार के सम्बन्ध झूठे पड़ सकते हैं, लेकिन प्रेम शाश्वत है—

"अब मैंने जाना
उम्र के हर चरण पर
कितने फरक नमूनों में
यह मन सतरंग हो जाता है
कैसे हर निकष झूठा पड़ता है
सिर्फ प्यार रह जाता है
कैसे छोटा-सा मोह
बड़ा सत्य बन जाता है।"[१]

अभिप्राय है कि सारी बातें कसौटी पर झूठी पड़ जाती हैं। किन्तु प्यार सत्य हो जाता है। जीवन के ऊबड़-खाबड़ चरणों में जो टिकाऊ चीज है, वह प्रेम है। वास्तव में यह प्यार आरम्भ में मोह रूप से होता है, किन्तु आगे चलकर वह सत्य हो जाता है।

प्रणय की दृष्टि से इनकी अनेक प्रसिद्ध कविताओं का उल्लेख करना आवश्यक है। "अभी तो झुम रही है रात", "धूली का टुकड़ा", "रेडियम की छाया", "बसंत की रात" आदि। मिलन के चित्र इनकी रचनाओं में मिलते अवश्य हैं, किन्तु सांकेतिक रूप में। इस दृष्टि से "मंजीर" की यह रचना द्रष्टव्य है—

"बड़ा काजल आंजा है आज
भरी आँखों में हल्की लाज
तुम्हारे ही महलों में प्रान
जला क्या दीपक सारी रात
निशा का सा पलकों पर चिह्न
जागती नींद नयन में प्रात
सखी, लगता ऐसा है आज
रोज से जल्दी हुआ प्रभात"[२]

इस प्रकार के रूप-चित्रों की सृष्टि माथुर जी की रचनाओं में सर्वत्र देखी जा सकती हैं। रूप और रस के मांसल स्पर्श से पूर्ण परिष्कृत चित्रों को ध्यान में रखते हुए डा० नगेन्द्र ने कहा है—

"यह शृङ्गार न तो भूखे तन और भूखे मन का आहार है, और न किसी अदृश्य आलम्बन के साथ कल्पना-विहार है। कवि ने जीवन की मधुर भावना को बड़े हल्के

१. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ८९।
२. मंजीर, माथुर, पृ० ६५।

हाथों से, किन्तु पूरी गहराई के साथ, बिम्बित करने का सफल प्रयास किया है।"[१]

कवि ने सर्वत्र मांसल अभिव्यक्ति का चित्रण किया है। उसमें अनुभूति की प्रामाणिकता है। कल्पना द्वारा अनुभूतियों की सृष्टि नहीं की गई है वरन् जीवन के मधुर क्षणों की कोमल अनुभूतियों को सुन्दर रूप मे चित्रित किया गया है। प्रिय-मिलन के क्षणों की स्मृति से कवि के मन पर एक क्षणिक मिलन का चित्र अंकित हो जाता है—

"कुज-कोर से उस टुकड़े पर, तिरने लगी तुम्हारी सब
सज्जित तस्वीरें,
सेज सुनहली,
कसे हुए बन्धन में चूड़ी का झर जाना
निकल गईं सपने जैसी वे मीठी रातें
याद दिलाने रहा
यही छोटा सा टुकड़ा।"[२]

अचानक मैले कपड़ों को देखते समय जब सिल्क के कुर्ते की सिलवट में लिपटा रेशमी चूड़ी का टुकड़ा गिर उठता है, तो कवि को प्रिया की याद आ जाती है, साथ ही रंग भरी मिलन की रात भी उसके मानस-पटल पर तिर जाती है। मिलन के क्षणों का कवि ने प्रतीक रूप में चित्रण नहीं किया है, चूड़ी के टुकड़े के माध्यम से कवि ने संयत भाषा में पूर्व स्मृति का ज्यों का त्यों चित्र अंकित किया है। यहाँ किसी परकीया नायिका के साथ प्रणय निवेदन नहीं है, कवि ने अपने जीवन की सुखात्मक अनुभूति को पूरी सच्चाई के साथ अभिव्यक्त किया है।

माथुर जी की शृङ्गारिक कविताओं में देह का आकर्षण वर्णित है। "देह की आवाज" शीर्षक कविता में उन्होंने मानव-देह के प्रति अपना आकर्षण अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों में व्यक्त किया है। प्रेम का आलोक उनकी कविता का विषय बना है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"इस रंगीन सांझ में तुमने
पहने रेशम वस्त्र सजीले
भरी गोल गोरी कलाइयों में पहिने थीं
नयन-डोर-सी वे महीन रेशमी चूड़ियाँ
चन्दन बाँह उठाने ही में
खिसक चलीं वे तरल गूंज से"[३]

मिलन का एक ऐसा चित्र जहाँ भोग की प्रवृत्ति का प्राधान्य है। यहाँ संयोग

---

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, डा० नगेन्द्र, पृ० २८।
२ नाश और निर्माण, माथुर, पृ०, ६५-६६।
३. नाश और निर्माण, पृ० ५७।

का अत्यन्त मांसल और क्लिष्ट चित्रण किया गया है। परस्पर आलिंगन और चुम्बन को सांकेतिक रूप में अभिव्यक्त किया गया है। माथुर जी की भावनाओं का चित्रण संयत रूप में हुआ है। रोमानी परिवेश की व्यंजना करने में कवि पूर्णतः सफल रहा है—

> "उन्हीं रेडियम के अंकों की लघु छाया पर,
> दो छाँहों का वह चुपचाप मिलन था,
> उसी रेडियम की हल्की छाया में
> चुपके का वह रुका हुआ चुम्बन अंकित था—
> कमरे की सारी छाँहों के हल्के स्वर सा
> पड़ती थी वो एक दूसरे से मिल-गुंथकर
> सूनी सी उस आधी रात—"[१]

"नाश और निर्माण" की अनेक कविताओं में कवि ने अपनी प्रेयसी के साथ बिताये रंगीन क्षणों का निस्संकोच चित्रण किया है। संयोग के वे नाजुक क्षण जिनमें प्रेयसी शरमाती हुई प्रिय के सम्मुख आई, उन क्षणों का सूक्ष्मता से चित्रण किया है—

> "पिछली इसी बसंत रात की याद उमड़ आती है।
> जब तुम पहुली बार मिली थीं
> पीले रंग की चूनर पहिने
> देख रही थी चोरी चोरी
> मेरे मीठे गीत प्यार के"[२]

कवि की सभी रोमानी कविताओं में शरीर आवश्यक रूप से निहित है, फिर वे कवितायें चाहे "मंजीर" की हों, "नाश और निर्माण" की या "धूप के धान" की छायावादी वायवीयता व काल्पनिकता का सर्वथा अभाव है। उन्होंने अपना प्रणय निवेदन किसी अलौकिक आलम्बन के प्रति नहीं किया है, वह वास्तव में इस स्थूल संसार का ही है। प्रणय बड़ा प्रेरक होता है। छोटे-छोटे अस्तित्व भी प्रेम के संस्पर्श से बड़े हो जाते हैं। जीवन निरन्तर गतिशील रहे और वह विकास के नये-नये छोर छूता रहे, यदि प्रेम का मधुर संकेत उसे मिलता रहे। कवि ने स्वयं प्रणय सम्बन्धी विचारों को लिखा है—

"प्रणय के सम्बन्ध में छायावादी प्रवृत्ति के कवियों की भाँति नया कवि झिझक या कैशोर्य ढंग का अनुभव नहीं करता, और न ग्लानि का भाव। पिछले कवि नर-नारी के कोमल अंतरंग प्रेमालापों को बहुत छिपकर दूरस्थित, वायवी संकेतों से व्यक्त किया करते थे, मानों कोई अपराध कर रहे हों। नये कवि में यह अपराध भावना बिल्कुल

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ५६।
२. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ६२।

नहीं है। उसने अधिक आश्वस्त, परिपक्व एवं मुक्त रूप से प्रणय के आस्वाद को व्यक्त किया है।''[१]

(ख) प्रणयजन्य पीड़ा

माथुर जी के काव्य में जहाँ जीवन के प्रति तीव्र आसक्ति तथा संयोगजन्य उल्लास का चित्रण हुआ है, वहीं प्रणयजन्य विषाद का भी मार्मिक चित्रण किया गया है। पीड़ा का यह स्वर उनकी प्रारम्भिक रचनाओं (मंजीर, नाश और निर्माण, धूप के धान) में विशेष रूप से देखा जा सकता है। विरह कवि को निष्क्रिय नहीं बनाता, पर वह कर्मक्षेत्र में अग्रसर होने की प्रेरणा देता है। इस दृष्टि से ''मैं कैसे आनन्द मनाऊँ'', ''तुमने प्यार नहीं पहचाना'', ''प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा'', ''कौन थकान हरे जीवन की'', ''यह मुझको सुधि सी क्या आती है'' तथा ''आँसू तक न बचे नयनों में'' आदि कविताएँ महत्वपूर्ण हैं।

वियोग का चित्रण माथुर जी के काव्य में बहुत मार्मिक हुआ है। मिलन का समय शीघ्र व्यतीत हो जाता है, और अब विदा के क्षण द्वार पर दस्तक दे रहे हैं—जिन आँखों ने काजल आँजा था, और लज्जा से भरी हुई थीं, उनमें विदा के अश्रुओं की बरसात हो रही है—

> ''विदा समय क्यों भरे नयन हैं
> अब न उदास करो मुख अपना
> बार-बार फिर कब है मिलना,
> चलते समय उमड़ आये इन पलकों में जलते सावन हैं
> मेरे गीत किन्हीं गालों पर रुके हुए दो आँसूकन हैं।''[२]

अपनी प्रेयसी का वह मुस्कराता हुआ चेहरा कवि के मन को आज भी व्यथित कर रहा है। उसकी भोली-भाली सूरत, लज्जित आँखें, रक्तिम अधर तथा ग्राम-बालिका का-सा अल्हड़पन कवि की विरही आँखों में आज भी इसी प्रकार विद्यमान है। शरीर से दूर होने पर भी मन से आज वह उतनी ही पास है—

> ''अब सूनी पलकों पर उतरा
> वही तुम्हारा सस्मित आनन
> वे काली सलज्ज-सी आँखें
> भटकी, भोली-सी नत चितवन
> आज भूल जाऊँ मैं कैसे—
> ग्राम-बालिका सा अल्हड़पन
> × × ×

---

१. गिरिजा कुमार माथुर, नयी कविता : सीमाएँ और समस्यायें, पृ० ८।
२. मंजीर, माथुर, पृ० ४५।

होने पर भी दूर आज
तुम कितने निकट हो गई मेरे।"[1]

कवि को इस बात का दुःख अत्यधिक है कि उसकी प्रेयसी ने उसके प्रेम का प्रत्युत्तर नहीं दिया। प्रेम के स्थान पर उसे सदैव निराशा ही हाथ लगी। उसका मन विरह की ज्वाला में सदैव दग्ध रहा। सावन की बदली के समान प्रिय मिलन के क्षण बहुत कम मिलते हैं। फलस्वरूप वही अतृप्ति, वही निराशा, अपना घेरा चारों ओर डाल लेती है—

"प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा
कोटि दीप जलते थे मन में
कितने रस लपटे यौवन में
रस बरसाने वाले आकर
विष ही छोड़ गये जीवन में
जल की जगह ज्वाल ही बरसी
सदा प्यार के मधु सावन में"[2]

कवि को अपनी प्रेयसी से यही शिकायत है कि जिस पर उसने अपना सम्पूर्ण ऐश्वर्य निछावर कर दिया, अपने जीवन की समस्त खुशियों को कुछ नहीं समझा, उसी निःस्वार्थ प्रेमी के प्रेम को वह निष्ठुर प्रेयसी नहीं पहचान सकी। "नाश और निर्माण" की पहली कविता के प्रारम्भ में जहाँ रोमानी आशा का मिश्रण है, वहीं अनुभूति की निकटता भी है, जिसमें प्रेयसी के मन की उदासी व व्यथा को व्यक्त किया गया है—

"बीत गया संगीत प्यार का,
रूठ गई कविता भी मन की।
वंश सपनों में शेष रह गई,
सुधियाँ उस चन्दन के वन की।
कौन थकान हरे जीवन की।"[3]

माथुर जी के प्रेम का प्रौढ़ रूप उनके प्रसिद्ध काव्य संग्रह "धूप के धान" में मिलता है। यहाँ कवि प्रणय की असफलता पर केवल आँसू नहीं बहाता। अपने जीवन की मधुर स्मृतियों में नहीं खोया रहता। प्रेम के दुःख को वह अपने हृदय में छिपाते हुये जीवन के कटु संघर्षों से जूझने का हर सम्भव प्रयास करता है। जीवन में जिसे वह नहीं पा सका वो उसके लिये अप्राप्य रहा है, उसे वह भूल जाना चाहता है। यहाँ तक आते-आते उसकी दृष्टि केवल वर्तमान पर न रहकर सुनहरे भविष्य की ओर भी लगी है—

---

१. मंजीर, माथुर, पृ० १५।
२. मंजीर, माथुर, पृ० ५९।
३. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ७।

"जो न मिला भूल उसे
कर तू भविष्य वरण
छाया, मत छूना मन
होगा, दुःख दूना, मन।"[१]

कवि की एक अन्य प्रसिद्ध कविता है "भीड़ रोमांस"। विरह मनुष्य को अन्तर्मुखी बना देता है, किन्तु सच्चा विरही वही है, जो संयोग और वियोग की स्मृतियों को मन में रखता हुआ कर्मशील रहे। केवल अपनी समस्याओं से घिरा न रहकर समाज और देश के विषय में भी सोचे। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की ओर ध्यान दे। इस दृष्टि से यह कविता महत्वपूर्ण है—

"हमको भी है आज विरह का
और मिलन का
यह मत समझो वरक बन गया हृदय हमारा
× × ×
पर हम तुमसे बहुत भिन्न हैं
हम मन में सुधि रखकर भी
हैं कर्मशील
हैं संघर्षों में हम भूले
हम डटकर जीवन से युद्ध कर रहे प्रतिपल
आज हमारे सम्मुख और समस्यायें हैं
प्रश्न दूसरे
घर के, बाहर के, समाज के
मुल्क और दीगर मुल्कों के
अब हमको सुधि की पीड़ा है नहीं सताती।"[२]

स्पष्ट है कि आज कवि को "सुधि को पीड़ा भी नहीं सताती, उसे विश्वास है कि प्रिय के वियोग की पीड़ा को सहते-सहते उसके मन के सारे खोटे सिक्के गल जायेंगे।

वैयक्तिक सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों का कवि ने सूक्ष्मता से चित्रण किया है। जितने प्रभावशाली ढंग से कवि ने मिलन के चित्रों को उतारा उतने ही कौशल से विछोह के मार्मिक चित्रों को प्रस्तुत किया है।

"भीतरी नदी की यात्रा" काव्य संग्रह में "भावों का ठहरा प्यार" वियोग की दृष्टि से प्रसिद्ध कविता है, जिसमें वियोग मिश्रित संयोग का चित्रांकन किया गया है। वर्षाकालीन मेघों से उद्दीप्त प्यार का चित्रण—

१. धूप के धान, माथुर, पृ० १०२।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० २४।

"फिर घुमड़े वही मेघ, फिर आया याद प्यार
फिर खिलने लगे, पहिले-पहिले के हरसिंगार
    देह खोखली थी
    वर्ष छूछे, आखिरी उदास
    आँखों में जाले स्वप्न
    था असाध्य हर प्रयास
देखा तुम्हें
    मेरी मिट्टी में उठे हुए ज्वार
छुआ तुम्हें
    छू गये सब बिजली के तार
फिर घुमड़े वही मेघ, फिर आया याद प्यार।"[1]

वर्षाकालीन उमड़ते हुए मेघों से उद्दीप्त प्यार का चित्रण। हरसिंगार-पूर्वकालीन स्मृतियों का प्रतीक। प्रथम चार पंक्तियों में विरह का अंकन। अन्त की पंक्तियों में संयोग कालीन भोग की स्मृति। स्पष्ट है कि कवि अपनी प्रियतमा को ही सम्बोधित करता है कि तुमने मेरे जीवन की रिक्तता को भरा है, उसे शक्ति दी है।

डा० शिवकुमार मिश्र ने "माथुर जी की रचनाओं में निराशा, विषाद, विफलता और रुग्णता का भी दर्शन किया है। वास्तव में श्री माथुर के काव्य में ऐन्द्रिकता और विलास वृत्ति अधिक है। उनमें एक ओर छायावाद युगीन संस्कार (रंगमयता, कोमल, मानसिक प्रतिक्रियाएं, प्रगीतात्मकता आदि हैं, तो दूसरी ओर आधुनिक (आज के) मनुष्य की विडम्बना, त्रास और उसके दुःख को व्यक्त करने की चेष्टा है।"[2]

जो लोग कवि को रोमानी कवि कहते हैं। सन्दर्भ में स्वयं कवि का कथन उल्लेखनीय है: "रोमानी कवि के रूप में यह लेबल लगाए गए हैं, जैसे ये प्रगतिवादी हैं, विचार प्रधान हैं। और ये इस तरह कहा जाता है जैसे ये बड़ा भारी पाप है। रोमान बड़ा व्यक्तिगत होता है। इस अर्थ में व्यक्ति रोमानी कहने लगे। रोमानी व्यक्तिवादी होता है, विचार प्रधान नहीं, राजनीति से सरोकार नहीं ऐसे समस्त तर्क गलत हैं। असल में भारतीय कविता के लिए रोमानी शब्द ही गलत है। सौन्दर्य-ऐन्द्रियता इन सबको मिलाकर लोग इसे रोमानी कहते हैं, अगर इस रूप में है तो मैं रोमानी कवि हूँ किन्तु सामाजिकता से जुड़ा हुआ है। गीतात्मक कविता में रोमानी प्रवृत्ति है।

(२) पारिवारिक अनुभूतियाँ

माथुर जी के हृदय में भारतीय जीवन की प्रमुख इकाई अर्थात् परिवार के विषय

---

१. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० १।
२. आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ एवं वर्णन-कौशल, डा० प्रेम प्रकाश गौतम, पृ० ८७।

में मर्मस्पर्शी भाव था, परिवार को ही वे समाज-जीवन की प्रमुख धुरी मानते हैं। उनकी मान्यता है यदि परिवार ही विघटित हो गया तब जीवन-मूल्यों में ह्रास की सम्भावना बन जाती है उस ह्रास को रोकने के लिये परिवार की इकाई सक्षम, सशक्त, और सुदृढ होनी चाहिये। गृहस्थ जीवन में अनुभूति की प्रधानता के बहुआयामी चित्र उनकी कविताओं में मिलते हैं। परिवार की कल्पना किसी परिकल्पना के रूप में रूपांकित नहीं की, अपितु उसके यथार्थ और स्वाभाविक रूप को ही उन्होंने उकेरा है। ऐसे यथार्थपरक बहुआयामी भावनानुभूति से मंडित चित्रों की प्रतिच्छाया उनकी कविता में दर्शनीय है।

"धूप के धान" में प्रेम का उज्ज्वल व सुरुचिपूर्ण रूप है, जहाँ प्रेयसी परकीया नहीं है वरन् पत्नी है। कवि का अपनी पत्नी के प्रति वियोग इस प्रकार व्यक्त होता है—

"यह एकान्त मकान
और उजली खाँहों सी यह दीवारें
नहीं समेट पा रही मुझको
और न दिन भर की थकान को मिटा रही है"[1]

पत्नी के वियोग के साथ ही साथ बच्चों का नटखटपन "प्रौढ़ रोमांस" नामक कविता में भी चित्रित होता है—

"अब हमको सुधि की पीड़ा है नहीं सताती
केवल ध्यान यही आता है
आज न बच्चे घर में हैं कूड़ा करने को
खूब सफाई है, आँगन, छत पर, कमरों में
पर कुछ खाली-खाली सी है
आज नहीं अच्छी लगती यह
पहले इस कूड़े करकट से
मन में झुंझलाहट होती थी
आज वही बच्चों का कूड़ा याद आ रहा"[2]

स्पष्ट है कि पारिवारिक विरह वेदना माथुर जी की कविताओं में अपने चरम रूप में परिलक्षित होती है।

माथुर जी ने नारी को शक्ति का आधार माना है, वह प्रणयिनी को न केवल देह के रस यौवन भाव की संगिनी समझते हैं, वर उसे संघर्ष के लिये प्रेरित करने वाली महाशक्ति सम्बोधित करते हैं।

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० २३
२. धूप के धान, माथुर, पृ० २४

"शक्ति दो मुझको सलोनी प्यार से,
लड़ सकूँ मैं मौत की तलवार से"[1]

माथुर जी की काव्यगत प्रणयिनी मात्र मांसल उष्णता की प्रतीक नहीं है, वर साहस, शक्ति और संकल्प की भी साधिका-दात्री है।

माथुर जी के काव्य में परिवार के प्रति पूर्ण आस्था व्यक्त होती है। इस दृष्टि से "जो बँध नहीं सका" काव्य संग्रह की "ममताओं की सीढ़ि पर" प्रसिद्ध कविता है। इस कविता के अन्तर्गत कवि अपनी पत्नी के प्रति पूर्ण आस्था व्यक्त करता है। समस्त कविता के केन्द्रीय रूप में पत्नी है। जब कवि आफिस चला जाता है, तब वहाँ उसे ऐसा महसूस होता है कि एक छाया सी मेरे पीछे लगी हुई है, और वह छाया मेरी पत्नी है—

"जब काम पर जाने की भाग-दौड़ होती है
और तैयारी का एक तम्हा बवण्डर घूमता है
जब भभड़े की तरह
हर चीज अधूरी छूट जाती है
पर पीछे-पीछे छाया-सी
एक निहोर लगी रहती है
तब मुझे लगता है
मैं भी जीवित हूँ"[2]

"धूप के धान" काव्य संग्रह की "धूप का क्रम" कविता भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस कविता में कवि ने नवीन उपमानों की योजना की है। अन्त में कवि पत्नी के प्रति पूर्ण आस्था व्यक्त करता है।

"धुले सुख सी धूप यह गृहिणी सरीखी
मंद पग धर आ गई है
चाय की लघु टेबिलों पर
कभी बनती केतली की
प्यालियों की भाप सौंधी
कभी बनती स्वयं ही रसधार
ताजे दूध की
यह ढालकर निज प्यार
वह हर वस्तु की बनती समस्त मिठास
ओठों पर पिया के"[3]

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ८३।
२. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ६१।
३. धूप के धान, माथुर, पृ० ५१।

"प्यार की तीन व्यंजनाएँ" कविता में पत्नी के प्रति तीन पत्र लिखे गये हैं, इन तीनों पत्रों में प्रणय-भावनाओं को प्रेयसी के प्रति निवेदित किया गया है। यहाँ पत्नी ही प्रेयसी है। इस दूसरे पत्र के अन्तर्गत कवि ने प्रेयसी का पत्र न मिलने के कारण उसे उलाहना देते हुए पत्र लिखा है।

"दो खत भेज चुका हूँ
पर उत्तर नहीं आया
तुम्हारा
हमेशा यही करती हो
सोचती हो नहीं
कि इधर भी डाकखाना है
और डाकिया रोज यहाँ भी आता है
×   ×   ×
और प्यार का यह हाल है
कि पूरा का पूरा
कलश सब उड़ेल दिया
केवल तुम्हारे लिये
फिर भी तुम
बूँद से भी कम उसे मानती"[१]

यहाँ कवि ने व्यंग्य शैली का प्रयोग किया है। दूसरे छन्द में पत्नी के प्रति प्रेम की भावना व्यक्त होती है। मनुष्य जितना प्रेम करता है, उतना अपनी पत्नी के लिये फिर भी पत्नी यह समझती है कि वह पूरा प्रेम उसे नहीं दे रहा। यहाँ कलश शब्द सार्थक है। किन्तु पत्नी उसे बूँद से भी कम मानती है, क्योंकि पत्नी पुरुष का पूर्णाधिकार चाहती है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि माथुर जी के काव्य में पारिवारिक प्रेम से ओतप्रोत कविताएँ भरी हुई हैं। वास्तव में कवि के गृहस्थिक विरह के चित्र तो अपनी मार्मिकता में पगे हुए हैं, उनको हृदय स्पर्शिता से इन्कार नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि माथुर जी का पारिवारिक प्रणय और प्रेम मानवैयक्तिक प्रणयानुभूति के धरातल पर अभिव्यक्त नहीं हुआ है, अपितु उसको एक सामाजिकता भी है। पारिवारिक ऊष्मा की विवृत्तियाँ मानवीय आस्था, सामाजिक उर्जा के रूप में प्रकट होती हैं, यही कविता का एक नया मूल्य है।

(ख) लोक धरातल—सामाजिक चेतना

छायावाद के बाद हिन्दी काव्य में जिस नवीन सामाजिक चेतना का उदय हुआ,

१. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ६८-६९

उसका भी प्रभाव गिरिजा कुमार माथुर की कविता पर स्पष्ट है। कवि की सजग सामाजिक चेतना जिसकी हल्की रेखाएँ उसके मस्तिष्क में "मंजीर" काल से ही थी, अब पुनः आगे के काव्यों में मुखरित हुई हैं।

माथुर जी साहित्यकार के सामाजिक दायित्व को स्वीकार करते हैं। सामाजिक वैषम्य की पीड़ा का उन्होंने अनुभव किया है, और उसे स्वच्छ तथा संयत रूप में वाणी प्रदान की है। मध्यवर्ग की अनुभूतियों को आधार बनाने के कारण ऐसी कविताओं में स्वानुभूति की सच्चाई आ गई है। परन्तु मध्यवर्ग की कुंठाओं का कवि कटुता भरा चित्रण नहीं करता, अपितु उसे यथासाध्य मिठास भरे स्वरों में ही उद्घाटित करता है। प्रगतिवादी कवि के रूप में माथुर जी की यह स्वस्थ प्रगति चेतना निःसंदेह स्पृहणीय है, क्योंकि उसमें लकीर का फकीर बनकर वर्ग-संघर्ष की भावना का विवेचन मात्र नहीं है। इस कथन की सत्यता का अनुभव हमें "मशीन का पुर्जा" नामक कविता से होता है। इस कविता में एक ओर उच्च-वैभव का चित्रण है, तो दूसरी ओर अल्प आमदनी वाले क्लर्क की दिनचर्या का चित्रण है, जिन्दगी की मिठास उस क्लर्क के लिये समाप्त हो गई है। जीवन भावहीन मशीन बन गया है—

कुहरा भरा भोर जाड़ों का
शीत हवा में ठंडे सात बजे हैं,
ठिठुरन से सूरज की गर्मी जमी हुई है,
सारा नगर लिहाफों में सिकुड़ा सोता है,
पर वह मजबूरी से कंपता उठ आया है।
× × ×
रफू किया उसका वह स्वेटर
तीन सर्दियाँ देख चुका है
उसका जीवन भावहीन मशीन बन गया।
जाड़ों के दिन की मिठास
अब जहर हुई है"[1]

एक औसत मध्यवर्गीय आदमी की जिन्दगी इस पंक्तियों में मुखर हो उठी है। शीताधिक्य के कारण जब सारा नगर लिहाफों में सिकुड़ा सो रहा है, विवशता के कारण वह उठ खड़ा हुआ है। आँखों के नीचे छाई कालिमा, पीले गालों पर बढ़ी हुई दाढ़ी मसली हुई कमीज और कमीज के कफ में बटनों के बदले बँधे हुए दो डोरे उनके आर्थिक दैन्य को उजागर कर रहे हैं। रफू किया हुआ स्वेटर ही जब तीन सर्दियाँ देख चुका है, तो पूरे स्वेटर ने न जाने कितनी सर्दियाँ देखी होंगी। निःसंदेह चित्र अत्यन्त करुण और कलात्मक बन पड़ा है।

"शाम की धूप" नामक कविता में कवि मध्यवर्गीय बाबू की साइकिल की

---

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ९२-९३।

टोकरी पर नजर डालता हुआ आधिक विसंगतियों को इस प्रकार उभारता है—

"है जरा कम ही टोकरी ऐसी
जिसमें आते हैं मौसमी फल-फूल
× × ×
वर्ना अक्सर ये हैं खाली आती
बहुत हुआ तो इश्तिहार नई विचार का
यह सुबह का मुड़ा हुआ अखबार
या कोई सस्ती-सी कहानी की किताब
जो किसी वीरान में बरौनी थी
ये ही किस्मत में हैं इस टोकरी के"[1]

उक्त कविता में कवि ने मध्यवर्गीय व्यक्ति की सुख-सुविधा रहित जिन्दगी का मार्मिक अंकन किया है।

देश के जन-जीवन की वास्तविकता का आकलन माथुर जी के काव्य में व्यंग्यात्मक शैली में भी हुआ। व्यंग्य किसी सामाजिक बुराई पर प्रहार करने के लिए प्रयुक्त किया जाये, तो वह बड़ा प्रभावपूर्ण हो जाता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश के जीवन में जो अनेक प्रकार की विकृतियाँ आई और पनपीं, उनका चित्रण सीधी सपाट शैली में भी हुआ है, और व्यंग्यात्मक शैली में भी। यह युग सामाजिक जीवन में बुराइयों का युग है, इसलिए इस युग की अभिव्यक्ति व्यंग्य प्रधान हो गई है। माथुर जी की कविता "एक अधनंगा आदमी" इस दृष्टि से उल्लेखनीय रचना है। इस कविता में देश के जीवन का वास्तविक चित्र है, ऊँचे-ऊँचे आदर्शों का बखान करने वाले लोग भ्रष्ट हो गये हैं। छोटा बड़ी और बेईमानी का धंधा चल गया है, दवा के नाम पर खड़िया मिट्टी की गोलियाँ बिकती हैं, सरकारी कार्यालयों में कामचोर कर्मचारी हैं, योग्यता के स्थान पर सिफारिश नौकरी का आधार बन गई है। प्रतिभा उपेक्षित है।

मेरे भीतर
हरवक्त एक अधनंगा आदमी
घिसटता हुआ सड़कों की कोढ़ पर
कहता है
—वक्त अब नहीं है—
× × ×
दफ्तर में कामचोर अफसर में—
घिसैल क्लर्क—में
कमेटियों की बेहिसाब चक्की में—
पिसती रही देश में

१. धूप के धान, माथुर, पृ० २८।

किस्मत की रद्दी
× × ×
नौकरी में बयू में भगदड़ में
इंटरव्यू में
पेयर में—फेयर में
सिफारिश माने योग्यता
अक्ल और काबलियत, मौलिकता और साहस
दनीबेशिय याने प्यौर चूते खाने का नुस्खा''[1]

प्रस्तुत कविता में समाज और राजनीति के प्रत्येक सदस्य के मुखेटों को उतार-कर उनकी असलियत प्रकट कर दी है। इससे स्पष्ट है कि माथुर जी की कविताओं में वर्तमान स्थिति के प्रति कवि का आक्रोश तीखे व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त हुआ है। हल्की-फुल्की शैली में स्थिति को हास्यास्पद बनाने का प्रयास कहीं नहीं है।

"अर्ध आधुनिकों की बातचीत में कवि तथाकथित आधुनिकों पर व्यंग्य करता है, जो पहले तो युगीन समस्याओं के संदर्भ में अपनी जागरूकता प्रकट करते हैं, पर फिर कॉफी की प्याली और मौसम की रंगीनी में खो जाते हैं। युगीन समस्याओं की चर्चा भी जैसे उनके लिए एक फैशन की चीज है, इसे वे तनिक भी गम्भीर रूप से नहीं लेते। उनकी इस प्रवृत्ति को कवि उनके वार्तालाप द्वारा चित्रित कर उन पर व्यंग्य करता है—

"जिन्दगी है भार हुई
दुनिया है बहुत बोर
इंयी पाखंडी अहङ्कपिये
हैं बड़े लोग
—बात में है
सारा जमाना ही है बेईमान
× × ×
हटाओ यार
मारो गोली
पियो कॉफी
डग-डम ढींगा-ढींगा
मौसम भीगा-भीगा।''[2]

आधुनिक युग की यांत्रिक सभ्यता ने मध्यवर्गीय व्यक्ति को संवेदनहीन बना दिया है। उसका जीवन घड़ी की सुइयों से बँधा हुआ है, जिसमें आत्मसंवेगों का पूर्णतः

---
१. साक्षी रहे वर्तमान, माथुर, पृ० ९-१५।
२. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ३०।

समाज है। मध्यवर्गीय व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व, घुटन, पीड़ा तथा अवसाद को चित्रित करने के पश्चात् कवि यह स्पष्ट करता है कि निम्न तथा मध्यवर्ग के जीवन को अभावग्रस्त बनाने का उत्तरदायित्व पूँजीवादी समाज पर है। अनेक स्थलों पर कवि ने पूँजीपतियों की शान-शौकत तथा मध्यवर्ग की दुःख पीड़ा व अभावों से भरी जिन्दगी की तुलना की है। वर्गवैषम्य की ओर अगर हमारा ध्यान जाये, तो हम देखेंगे कि आज के मानव का जीवन त्रिशंकु के समान हो गया है। उसका जीवन निरुद्देश्य तथा निस्सार है, और उसका कारण है, हमारी विषम अर्थव्यवस्था—

"दो दुनिया के विषम शून्य में
अपना त्रिशंकु आज का जीवन
× × ×
इनकी मंजिल है दिन भर का संघर्ष,
और चाँदी के टुकड़े,
या शरीर आत्मा की बिक्री"[1]

कवि ने आर्थिक समता लाने के लिये, समाज को सुखी, सम्पन्न व वैभवशाली बनाने के लिए क्रान्ति व विध्वंस का आह्वान नहीं किया। उन्होंने निर्माण पक्ष को अधिक महत्वपूर्ण समझा है। किसानों व मजदूरों की लगन तथा मेहनत से नये समाज का उदय होगा। धरती सोना उगलेगी। तब प्रत्येक भारतवासी का जीवन सुखी होगा, देश से दरिद्रता का नाश होगा। वास्तव में मनुष्य का वास्तविक सुख उसकी मेहनत में है। अपने खून-पसीने से ही वह अपना रास्ता बना सकता है। नयी पीढ़ी, आज के दुःख, दर्द व संघर्ष की मजबूत छाती पर ही संवर सकेगी—

"असल सुख के लिये मेहनत
पसीने से बनेगा पथ
× × ×
इसी से जिन्दगी की सिक
कड़वी, कटीली, अनुभूति
मन में और पकने दो
हमारे दर्द, मूक संघर्ष की
मजबूत छाती पर
नई पीढ़ी सँवरने दो"[2]

अतीत काल के ऐतिहासिक युगबोध के आधार पर लिखी गई "बुद्ध" कविता उल्लेखनीय है, जिसमें महात्मा बुद्ध के जीवन के महान् आदर्शों का चित्र अंकित है। वे आदर्श जिनमें त्याग, तप, अहिंसा और शान्ति का महान संदेश निहित है—जिसमें

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० १२७।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ११६-१२०।

देश और काल की सीमाओं को लाँघ कर सम्पूर्ण मानवता को एक सूत्रता में आबद्ध करने की शक्ति है। ये औदात्य मूल्य भारतीय संस्कृति की आधारशिला है। भारतीय संस्कृति का प्रसार प्राचीन युग से लेकर आज तक आक्रमण, युद्ध शस्त्रों के बल पर नहीं, बल्कि शान्ति, सहानुभूति, सद्भाव और आत्मदान के आधार पर हुआ है। अधर्म, अकृतज्ञता को समाप्त करने के लिये अनेक साहसी व्यक्ति आये, किन्तु सब पराजित हो गये, वहाँ गांधी जी ने समस्त विश्व को अपने प्यार की एक घूंट से जीत लिया, यही इस कविता का कथ्य है—

> "क्रुफ तोड़ने की, क्रूसेडों की तलवारें
> वहाँ विश्व-जय हुई, प्यार के एक घूंट से"[1]

ऐतिहासिक बोध की दृष्टि से सफल कविता है "पहिये"। इसमें विराट तत्व की स्थापना की गई है। इस कविता में मानवीय सभ्यता के ऐतिहासिक विकास का चित्र "पहिये" प्रतीक के माध्यम से प्रस्तुत हुआ है। सूरज, चाँद, सितारे पहिये के रूप में परिकल्पित हैं। सृष्टि में प्रत्येक वस्तु गतिशील है। कालचक्र की गति परिवर्तनशील है। प्रस्तर युग से लेकर ऐटम युग तक सभ्यता और संस्कृति के विकास की अनेक मंजिलें पार करता हुआ यह रथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रगति के पथ पर बढ़ता जा रहा है। इन पहियों में युग की विराट तस्वीरों का विनाश-विकास दिखाई पड़ता है। कवि को विश्वास है कि यह काल-चक्र की गति दुःख की सत्ता का नाश करके ही रहेगी। कवि आस्था के स्वरों में कहता है कि एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा, जब संसार में दुःख की सत्ता समाप्त हो जावेगी, और एक ऐसे नये समाज की रचना हो सकेगी, जहाँ शोषण, दोहन, अन्याय, दोहन, असमानता समाप्त होकर के एक स्वस्थ्य-सुन्दर मानवीय समाज की रचना बन सकेगी। यह कविता इस प्रकार कवि के सामाजिक परिवर्तन में आस्था और प्रगतिशील चेतना की संवाहक है।

> ये घूम रहे हैं जीवन के पहिये महान
> नभ में ये सूरज, चाँद सितारों के पहिये
> × × ×
> ये शक्तिवान मेहनत की बाँहों के प्रतीक
> उन रूखे भारी हाथों के गतिमान चित्र
> गढ़ते जाते हैं जो सामाजिक मूरत को
> जीवन की मिट्टी को संवार
> सच्चे कर देते हैं सपने
> लेते हैं स्वर्ग उतार विचारों के नभ से
> × × ×
> पर परिवर्तन का तेज चक्र बढ़ता आगे

---

1. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ४३।

है घार काटती नागपाश
बस इसीलिये होगा विनाश
मानव का मानव पर
दुःख दोहन, अनाचार
इसीलिए कि रुकता नहीं कभी गति का पहिया
अविरल चलता विकास का क्रम
वह पाव लिए आता है मनुज समाज नया
जब दुःख की सत्ता मर जायेगी
पीले वाली फूलों सी।[1]

कवि ने नाना प्रकार की कल्पनाओं द्वारा खत जैसे साधारण विषय को कविता का प्रिय विषय बनाया है। खत आदेश, झिड़की, उलाहना, मनुहार, विरह, मिलन-हृदय को सारी अनकही बातों का प्रतीक होता है। यह वह मेहमान है, जो चाहे जब स्वतन्त्रतापूर्वक घर पर आ जाता है। वह खुले आजाद मन की यथार्थ तस्वीर होता है। यह वह संवाददाता है, जो घरेलू जीवन की सुख-दुःख की कहानी सुनाता है, किन्तु कवि आशा करता है कि यह जब आये, तब हँसी-खुशी के समाचार लाये, नई आशा और नई आकांक्षा का आईना बनकर आये।

"खत निजी अखबार है घर का
अकेले का सहारा है
मुहब्बत दोस्ती की मुख निशानी है
प्रिय की याद ताजा है।
× × ×
खत वह संवाददाता है
हर घर में निजी सुख-दुख कहानी
लिये आता है
मगर मन चाहता है
वह जभी आये
हँसी लाये
खुशी लाये
चुटकी भर किरन लाये
× × ×
खत नये आलोक का पत्रा बने
हर घर में हँसी की धूप का झरना बने

१. धूप के धान, पृ० १७-२१।

स्वस्थ्य, साबित जिन्दगी का
आइना नन्हा बने।"[1]

मनुष्य का जीवन निर्जीव रेजगारी के समान है, जिसे स्वयं अपनी दिशा का ज्ञान नहीं है। कवि ने स्थान-स्थान पर मध्यवर्ग की बेचैनी, घबराहट व घुटन के स्वर को अभिव्यक्ति प्रदान की है। आधुनिक जीवन को एक क्रानिक मरीज के रूप में चित्रित किया है—

जीवन अपाहिज है
रोगी असाध्य बहुत साल से
पलंग पर है
चल फिर न सकता है।
× × ×
अपने में लीन
किन्तु आत्मविश्वासहीन
× × ×
अपने से अच्छों को
देखकर तरसता है।[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि माथुर जी की विचारधारा प्रगतिशील, मानवतावादी तथा विश्वबंधुत्व की भावना से सम्पन्न है, किन्तु उन्हें प्रगतिवाद के घेरे में बाँधकर नहीं देखा जा सकता, क्योंकि उनके काव्य में नाश का नहीं निर्माण का प्राधान्य है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में—

"हिन्दी कविता में नवीन सामाजिक चेतना का समावेश करने में माथुर जी का योगदान कम नही है, किन्तु उन्होंने इसे व्यापक नैतिक धरातल पर ही ग्रहण किया, रूढ़ सिद्धान्तवाद के रूप में नहीं।"[3]

वास्तव में माथुर जी की कविताओं में युगीन परिवेश व सामाजिक यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। कवि ने एक ओर मध्यवर्ग व निम्नवर्ग की दुरवस्था का चित्रण किया है, तो दूसरी ओर उच्च वर्ग की ऐयाशी का। वस्तुतः तुलना द्वारा कवि मध्यवर्ग की विवशताओं के प्रति युग की संवेदना जगाना चाहता है, केवल बौद्धिक सहानुभूति देना नहीं चाहता। यही कारण है कि माथुर जी के यथार्थ चित्र अश्लील व घृणास्पद न बनकर युगीन चेतना को पाठक-वर्ग के समक्ष साकार करने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

---

१. शिलापंख चमकीले, पृ० २३-२६।
२. जो बंध नहीं सका, माथुर, पृ० ३०।
३. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, भूमिका, डा० नगेन्द्र, पृ० ३०।

(ग) प्रकृति-चित्रण

प्रकृति मानव-जीवन की सहचरी है। उसकी नैसर्गिक छटा के दृश्यावलोकन में मानव जन्म से ही संलग्न रहता है। क्रमशः ज्ञान और चेतना के अभ्युदय से उसका हृदय प्रकृति के प्रति संवेदनशील हो जाता है। साथ ही उसके अनन्त एवं असीम सौंदर्य के निरीक्षण से वह उसके सहवास की कोमल और आनन्ददायी अनुभूति में निमग्न होकर अपनी प्रवृत्तियों के परितोष के लिए यथायोग्य साधन प्राप्त करता है। नवीन कल्पनाओं, सुकुमार मनोभावों एवं संवेदनात्मकता का अभ्युदय मानव-हृदय में प्रकृति के साहचर्य से ही होता है। फलतः प्रकृति-साक्षात्कार मनुष्य के हृदय में रागात्मिका को जन्म देता है। वह अपने सुख में प्रकृति को सुखी और दुःख में दुःखी देखता है।

माथुर जी के काव्य में प्रकृति सम्बन्धी कविता पूँजीवादी विकृति के खिलाफ एक जबरदस्त आवाज है। इनके काव्य में प्रकृति-चित्रण के दृश्य विविध रूप में परिलक्षित होते हैं। प्रकृति के माध्यम से जहाँ कवि ने रोमानी भावों की अभिव्यक्ति की है, वहीं नगरीय तथा ग्रामीण जीवन के चित्र प्रस्तुत किये हैं। ऐसी दृश्य-छवियों में कवि ने छायावादी शब्दजाल का आश्रय नहीं लिया है। "धुपसांझ" कविता में ढलते हुए सूर्य का अंकन इस रूप में किया गया है—सांध्यकालीन ढलता हुआ सूर्य गोल रक्तिम पत्थर के टुकड़े के समान निष्प्राण है, जिसका धुँधला प्रकाश, भवनों, मिलों व पेड़ों पर पड़ रहा है। चारों दिशाओं में पवन की गति स्तब्ध हो गई है—

सांध्य बेला
अब छिन्न पुष्प सी छपी हुई लघु धूप हुई,
है ठिठक रहा धरती की रेखा के ऊपर—
वह गोल रक्त पत्थर के टुकड़े सा सूरज
निष्प्राण अंचल[1]

× × ×

प्रकृति के क्षेत्र में कवि के प्रिय कवि कालिदास, कीट्स, शेली, इलियट आदि हैं, किन्तु कवि की रचनाओं पर कहीं भी इनका प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रकृति के संदर्भ में माथुर सा० का वक्तव्य—

"प्रकृति हमारे यहाँ अलग नहीं है, अपितु आदमी के परिवेश का अंग बन कर आई है। आलम्बन, उद्दीपन आदि नहीं हैं। भारतीय कविता की विशेष पहचान है कि हम लोग प्रकृति के अधिक निकट रहे हैं। प्रकृति के विराट रूप तथा माधुर्य रूप ने मुझे अधिक आकर्षित किया है।"[2]

माथुर जी के काव्य में प्रकृति विविध रूपों में परिलक्षित होती है। कवि ने पहली बार व्यापक पृष्ठभूमि में विस्तृत भूखण्ड का चित्रण किया है, जिसमें उनकी

---

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ३२८।
२. साक्षात्कार।

भूमावादी प्रवृत्ति स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। कथ्य के अभाव में विशुद्ध लैण्डस्केप उतारना भी कवि की अपनी विशेषता है।

प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से माथुर जी की कविताओं को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है —

(क) प्रत्यक्ष साक्षात्कार
(ख) आत्म संघर्ष
(ग) प्रकृति-शृङ्गार प्रणयानुभूति
(घ) प्रकृति लोकांचल
(ङ) विदेशी वातावरण व प्रकृति का प्रभाव

(क) प्रत्यक्ष साक्षात्कार

प्रत्यक्ष साक्षात्कार के अन्तर्गत माथुर जी की उन कविताओं को रखा गया है, जिनमें प्रकृति के साथ उनका प्रत्यक्ष रूप से साक्षात्कार हुआ है। प्रकृति से प्रत्यक्ष साक्षात्कार यहाँ स्पष्ट है —

"मंजीर" कवि की प्रथम काव्य रचना है। इसके अन्तर्गत आलम्बन रूप में प्रकृति का चित्रण किया गया है। ऐसे स्थलों पर कवि ने प्रकृति को निकट से देखा है, अतः यह वर्णन यथार्थ प्रतीत होता है। अपनी एक कविता में कवि ने प्रातःकाल का चित्रण इतना सरल और सजीव रूप में किया है कि पूरा चित्र आँखों के समक्ष उपस्थित हो जाता है। प्रभात का समय है, पूर्व दिशा में लाली छाई है, ऐसा प्रतीत होता है कि ऊषा सोना लुटा रही है। पुष्प मुस्करा रहे हैं। उन पर ओस बिन्दु पड़े हैं, ऐसा लगता है कि पुष्प ओसकणों की अंजली भरकर अर्घ्य चढ़ा रहे है। सारे बन में सुख और शान्ति का मधुमास छा गया है —

> "यह सुनहला दिवस आया
> गगन ने मोती लुटाये, ऊषा ने सोना लुटाया
> झुरमुटों से झांककर
> वे फूल भी हैं मुस्काते
> अर्घ्य देने को तुहिन-कन
> अंजली में भरे लाते
> हँस उठी बनराजि फिर सुख-शान्ति का मधुमास आया"[१]

प्रकृति का एक अन्य मूर्त चित्र जिसमें कोयल का श्यामल स्वर भीगी अमराई, साँवली बदलियों का कड़ना हुआ घूँघट-पट, वर्षा से भीगी अलकें तथा उनसे गिरता हुआ पानी, आँखों के समक्ष वर्षा के पूर्व और पश्चात् का चित्र आ जाता है—

१. मंजीर, माथुर पृ० ३६।

"कोमल सा श्यामल स्वर
भीगी अमराई से आता है पल-पल भर—
सुरमीली आँखों को ढाँक रहो श्याम-अलक
साँवली बदलियों का उड़ता सा-धूँघट-पट
× × ×
आई बरसात आज
गीली अलकों से जाने बूँदें चुआती हुई"[१]

"नाश और निर्माण" की प्रसिद्ध कविता "आज शरद की पूरनमासी" जिसमें शरद पूर्णिमा का कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। नीले आकाश में चाँद खिल रहा है, श्वेत चाँदनी चारों ओर फैली हुई है, ओसकन मोतियों की भाँति दृष्टिगत हो रहे हैं, और इन सबके साथ गुलाबी ठंडक वातावरण को मादक बना रही है—

"आज शरद की पूरनमासी।
लिये गुलाबी ठंडक फैली
श्वेत चाँदनी छुली डगर में
ओसकनों की हँसी खिली है
मोती के इस राजनगर में"[२]

किसी भाव या वस्तु विशेष की अभिव्यक्ति करने से पूर्व उसके परिवेश को सम्पूर्णता से चित्रित करना माथुर जी की विशेषता है।

"दियाधरी" कविता में कवि का विश्वास है कि दियाधरी नामक एक पहाड़ी है। इतिहास जो बदल हो गया था, इतिहास के अँधेरे ने आदमी को जो विपन्न कर दिया था, वह पुनः प्रतिष्ठित हो। "दियाधरी" कविता में कवि ने मालव प्लेटो की उत्तरी सीमा पर स्थित गाँव में प्रचलित प्राचीन लोककथा को नये अर्थ में प्रस्तुत किया है। माथुर जी के अनुसार—

"हर रात पहाड़ी की चोटी पर एक दीप जल जाता है। गाँव वालों का विश्वास है कि उसे चिन्न जलाते हैं। इतिहास का सत्य किस प्रकार टूटकर कल्पना और भ्रम बनता है, और किस प्रकार उसे भविष्य-रचना की ओर उन्मुख किया जा सकता है, यही प्रस्तुत कविता का कथ्य है।"[३]

जंगल, खेत, मिट्टी और रात का वातावरण, धूप और फूलों के उल्लेखन से गाँव का दृश्य सप्राण हो उठा है। पठार की लाल मिट्टी को छूकर दिन का सूरजमुखी होना कितना सच्चा बिम्ब है, और दिनान्त की लाल वर्ण की किरणों के तार वाली फरिया (चूनरी) को पहनकर सन्ध्या को नवोढा नायिका के रूप में चित्रित किया गया

१. मंजीर, माथुर, पृ० ३२।
२. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ४८।
३. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ३।

हैं। इन बिम्बों की योजना से गाँव का दृश्य जीवन्त हो उठता है। इस कविता में प्रकृति की आंचलिकता उभर उठी है—साँवरी, कामरी, फरिया, चूनर, लुगड़ा, लँहगा, हँसली, बीजरी आदि शब्दों ने उसे और अधिक मार्मिक बना दिया है।

"काले जंगल काले खेत
काली मिट्टी साँवरी
धूप फूल-दौना ले आती
रातें ओढ़े कामरी
सूरजमुखी हुआ दिन छूकर
मिट्टी लाल पठार की
साँझ पहनती दिन डूबे
फरिया सल्मों के तार की
× × ×
ऊपर धरती की छाती पर, फूल चूनर की लालिमा
बीज कोख में रहनेवाली, नीचे रसमय कालिमा
लुगड़ा छोपदार लाल, हँसली की चमके बीजुरी
लँहगा स्याह कमर में पहने, श्याम बरन की गूजरी"[१]

अन्त में कवि यह विश्वास प्रकट करता है कि दियाधरी का दीप जहाँ ग्रामीणों के अन्धविश्वास व पिछड़ेपन का प्रतीक है, वहीं एक मानव को उज्ज्वल भविष्य-रचना की ओर उन्मुख भी कर सकता है। समाज-रूपी सीप में नवयुग-रूपी मोती को लाने में सहायक सिद्ध हो सकता है—

"जलती उस विभूति की आत्मा
दियाधरी के दीप में
मोती जैसा युग लाने को
फिर समाज की सीप में"[२]

"मेरे लघु एकान्त ग्राम में" विन्ध्या के ऊँचे टीलों तथा झाड़ झंखाड़ से घिरे अपने छोटे से ग्राम का संकेत करता हुआ कवि वहाँ के छोटे से साप्ताहिक हाट और उसमें दूर-दूर से बैलगाड़ियों में आने वाले नर-नारियों का चित्रांकन इस प्रकार करता है—

"विन्ध्या के ऊँचे नीचे टीलों से घिरे देश में आकर,
बन हो गया और भी श्यामल।
उसी झाड़-झंखाड़ बीच
मेरा छोटा गाँव बसा है।
× × ×

१. गिलापंख चमकोले, माथुर, पृ० ३-७।
२. गिलापंख चमकोले, माथुर, पृ० ८।

वही हरेक सनीचर के दिन
झाट लगा करती है
दूर-दूर के गाँवों के नर नारी आते
अपनी बैलगाड़ियाँ लेकर"[1]

"आदमी का अनुपात" इस कविता में कवि सहज मानवीय संवेदना से प्रेरित होकर व्यक्ति की मूल प्रकृति को प्रतिपादित करना चाहता है। "समष्टि" के समूह में व्यक्ति की सत्ता बहुत छोटी है, लेकिन मानव ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि के द्वारा परस्पर वैमनस्य व द्वेष की दीवारें खड़ी करना चाहता है। स्वयं को स्वामी और दूसरों को अपना क्रीतदास बनाना चाहता है। मानव की इस प्रकृति का प्रतिपादन कवि ने इस प्रकार किया है:—

"यह है अनुपात
आदमी का विराट से
इस पर भी आदमी
ईर्ष्या, अहं, स्वार्थ, घृणा विश्वासहीन
संख्यातीत शंख सी दीवारें उठाता है
अपने को दूजे का स्वामी बताता है
देशों की कौन कहे
एक कमरे में
दो दुनियाँ रचाता है"[2]

"धूप के धान" काव्यसंग्रह की एक प्रसिद्ध कविता है "नये साल की साँझ"। इस कविता के अन्तर्गत कवि ने नये साल की साँझ का वर्णन लोकांचल का प्रश्रय लेकर प्रस्तुत किया है। शाम के समय किस तरह किसान बहु परिश्रम करके वापस आता है। चन्द्रमा का नया चित्र है। रीतिकालीन शृङ्गारिकता से पूर्ण मुक्त है। प्राकृतिक बिम्ब अन्तिम पाँच पंक्तियों में चित्रित हो उठा है।

"ये नये साल की है साँझ नई
एक और वर्ष की किरन उजल के डूब गई
उठ रहा है, वह नया दूज का चाँद
दूधिया चाँद श्वेत हँसली सा
लालिमा साँझ की सिमट सारी
आ रही संवलते मैदानों से
जैसे घर लौटती किसान बहू

---

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ६७-७० ।
२. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ६५-६६ ।

काम दिन भर का करके खेतों से
लाल मुँह हो रहा मेहनत से ।

समग्र रूप में कहा जा सकता है कि माथुर जी अपनी काव्य-कृतियों में यत्र-तत्र लोकजीवन के चित्रों को उतारने का प्रयास किया है । "कुतुब के खण्डहर" नामक कविता में कवि ने खण्डहरों से अधिक वातावरण को महत्त्व दिया है । प्राकृतिक परिवेश के चित्रांकन के पश्चात् ही कवि ने काई से काले, ध्वंस राजमहलों, पत्थर के ढेर बने मन्दिर और मजारों का चित्रण किया है—

"सेमल की गर्मीली हल्की रुई समान
जाड़ों की धूप खिली नीले आसमान में—
झाड़ी-झुरमुटों से उठे लम्बे मैदान में
रूखे पतझर भर जंगल के टीलों पर
कोंपकर चलती समीर हेमन्त की"[१]

"धूप के धान" की "चंदरिमा" कविता में कवि के मन पर प्रेयसी के गोल पूनम से चेहरे से अधिक प्रभाव चंदरिमा का है । इसका कारण यह है कि चन्द्रमा और उसकी उजली आज भी वैसी ही दिखाई दे रही है, किन्तु प्रेयसी का गोल पूनम सा मुख बरसों पुरानी याद बनकर रह गया है । चन्द्रमा और चाँदनी का कवि ने पार्श्व-रूप में इस प्रकार चित्रण किया है कि प्रेयसी का सुन्दर मांसल चेहरा भी प्रभावहीन दृष्टिगत होता है—

"यह झकाझक रात
चाँदनी उजली कि सुई में पिरो लो ताग
चाँदनी को दिन समझकर बोलते हैं काग
× × ×
चाँद पूरा साफ
आर्ट पेपर ज्यों कटा हो गोल
यह नहीं चेहरा तुम्हारा ।
× × ×
क्योंकि यह तो सामने ही दिख रहा है
यह नहीं अब तक हुआ
बरसों पुरानी बात"[२]

चाँदनी उनके काव्य में व्यापक रूप से आई है, और उसके विभिन्न पक्षों पर कवि ने रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । "चाँदनी गरबा" कविता में कवि ने गुजरात के "गरबा" लोक नृत्य को चुनकर प्रकृति-चित्रण किया है । यहाँ चाँदनी को चंचल नेत्रों वाली

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ५३ ।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ६७ ।

गोरी के रूप में देखा गया है, जो उभरें रोएँ छुआ गई है। इस गीत में संगीत का माधुर्य है। "चाँदनी" हिरनी की भूमिका में प्रस्तुत है।

"उभरे रोएँ छुआ गई है चाँदनी
झीन मुकीले चूमा गई है चाँदनी
चंचल नयनी गोरी हिरनी चाँदनी"[१]

"शिलापंख चमकीले" की "ये दुनिया" नामक कविता में प्राकृतिक परिवेश के चित्रण के अनन्तर नगर की व्यस्त दुनिया का चित्र अंकित किया गया है। "शाम की सलोनी धूप क्रमशः मद्धिम होती जा रही है। वह अब केवल इमारतों के शिखरों पर ही दिखाई दे रही है। प्रकृति के इस वातावरण को निरूपित करने के पश्चात् कवि ने नगर की सड़कों के शोरगुल, व्यावसायिक कार्यों की तेजी तथा कारखानों की चिमनियों से उठते धुएँ का उल्लेख किया है। सूर्य के अस्त होने के साथ-साथ बाहरी दुनिया की व्यस्तता इन शब्दों में व्यक्त की गई है—

"शाम की तिरछी, सलोनी
सुनैली धूप
दीखती है अब भी
इमारत के चेहरे पर
× × ×
सड़कें, शोरगुल, धूल
कारोबार का जलुस
पहिये, पैर, चिमनियाँ
बाहर की व्यस्त दुनियाँ"[२]

"जो बँध नहीं सका" काव्य संग्रह की "एक टुकड़ा चाँद" कविता में वर्षा के थमने पर बादलों के बीच में से सावन की पूनो का चाँद किस प्रकार निकल रहा है, इसका मूर्त विधान इस रूप में किया गया है कि पूरा चित्र आँखों के समक्ष साकार हो जाता है—

"काले चिलकवरे, धूप और बादलों में से
निकल रहा गीला चाँद
सावन की पूनों का"[३]

"भीतरी नदी की यात्रा" इस काव्य-संग्रह में कवि ने प्रकृति को विशेष महत्त्व दिया है। प्रकृति के सुन्दर व प्रेरक रूप का चित्रण भी इस काव्य संग्रह की विशेषता है। "अनमिले बँवर", "नयी पहचान", "बीहड़ जंगलों के बीच", "निसर्ग में

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ७३।
२. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ७४।
३. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ७५।

वापसी", "पतझर की एक दुपहर", आदि कविताओं में कहीं प्रकृति का आलम्बन रूप में यथा तथ्य चित्रांकन किया गया है, तो कहीं प्रकृति रोमानी भावों की, उद्दीप्ति में सहायक बनकर आई है। "निसर्ग में वापसी" कविता में कवि ने बताया है कि पौधा धूप और हवा का सेवन करके अपने विभिन्न अंगों को परिपुष्ट इसलिए बनाता है जिससे दूसरे व्यक्ति उसके फलों को ग्रहण कर सकें। बेल भी सहज सुख के लिये अपना प्रसार व विकास करती है। जल मनमाने ढंग से जहाँ चाहता है, बहता है, और मनुष्य अपने में निश्चिन्त, दुनिया से बेखबर निद्रा में लीन रहता है, आलस से जकड़ा रहता है। जो कुछ मिल गया उसी में सन्तोष कर लेता है, लेकिन कुछ अधिक उपलब्ध करने के लिये संघर्ष नहीं करता। प्रस्तुत कविता में प्रकृति के ये विभिन्न उपादान मानव को कर्म की प्रेरणा देते हैं—

"यह मिट्टी अपनी जगह निश्चल पड़ी हुई
कितनी आनन्दित है
यह पौधा —
अपने ही पत्रों में लिपटा
धूप हवा लेता अपने में मगन है
यह बेल पसरती है—सहज है सुख के धरातल पर
यह जल—
उधर बहता है जो बेरोक है, सुगम है
और मैं : मुझे नींद कितनी प्यारी है
आत्मदान कितना प्यारा है, परितोष कितना प्यारा है"[1]

"बीहड़ जंगलों के बीच" इस कविता में वन्य प्रदेश की गहनता, बीहड़ता और भयवहता का सूक्ष्म चित्रण किया है। घाटियों, पर्वतों से घिरे ढाक के वे जंगल भी कि इतने घने हैं कि आसपास के वातावरण में दिन में भी घुप्प अंधकार छाया रहता है, हाथ को हाथ नहीं सूझता। ऐसे निस्तब्ध गहन अन्धकार से आच्छादित वन्य प्रदेश का चित्रांकन इन चार पंक्तियों में इस प्रकार है—

"घाटियाँ
पर्वत
अँधेरा घुप्प
धुमैले घने जंगल ढाक के"[2]

"सम्मोहन के अकेले आभास" साक्षी रहे वर्तमान काव्य-संग्रह की प्रसिद्ध कविता है। इसमें प्रकृति के भीतर जो विराट छिपा हुआ है, उसका वर्णन। कवि प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में साक्षात् ईश्वर का आभास करता है, और यह ईश्वर के प्रति

---

१. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० २६।
२. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० २७।

सम्मोहन अकेले में अधिक मार्मिक होता है। कवि को यह प्रतीत होता है कि वह जो कुछ लिखता है, उसके अन्दर सब प्रकृति के भीतर जो विराट छिपा है, वहीं से आते हैं। कविता के अन्त में कवि अप्रत्यक्ष श्रद्धा के प्रति सहज ही समर्पित हो जाता है। उसे ईश्वर से प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो जाता है।

"जहाँ से यह नेल सुख आसमान नीला है
जहाँ से यह फिरकनी हवाएँ बेफिक्र चलती हैं
× × ×
जहाँ से पौधे अलग पहिचान गंध लेते हैं,
मेरे शब्द वहीं से आते हैं।
× × ×
उन सारी अज्ञात, अद्वितीय, अनछुए जगहों पर
दवलाब के बिखरते क्षणों पर
मैं परसन के रेशों सा
साधारण डोरी में मिल बँधकर पहुँचा दूँ
अब भी, जहाँ भी वह होते हैं, होंगे
मैं वहाँ-वहाँ आगत हूँ
रोशनी लाने वाले इस समवेत में
सहज ही समर्पित हूँ।"[१]

(ख) आत्म-संघर्ष

प्रकृति के माध्यम से जहाँ कवि ने विराट से प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया है, वहीं दूसरी ओर कतिपय ऐसी भी कविताएँ हैं, जहाँ कवि ने प्रकृति के माध्यम से आत्म-संघर्ष की स्थिति का भी परिचय दिया है। ग्रीष्म ऋतु की सुनसान दोपहरी का चित्रण करता हुआ कवि जीवन के एकाकीपन की तुलना गरमी के सुनसान दिनों से करता है। जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु की दोपहरी काफी लम्बी होती है, उसी प्रकार जीवन का एकाकीपन भी अन्तहीन है। मन की तुलना शुष्क वनों से की गई है। धूप की तेजी के कारण आकाश में चीलों का उड़ना बन्द हो गया है। खेतों पर भी कामकाज नहीं हो रहा है। चित्रण की सजीवता के कारण ग्रामीण वातावरण स्वयं साकार हो गया है—

"थकी दुपहरी में पीपल पर
काग बोलता शून्य स्वरों में।
यह जीवन का एकाकीपन—
गर्मी के सुनसान दिनों सा,
अन्तहीन दोपहरी हुआ

१. साक्षी रहे वर्तमान, माथुर, पृ० ६६-१००

मन निश्चल है शुष्क बनों सा
ठहर गई हैं चीलें नभ में
ठहर गई है धूप छाँह भी।"[1]

"चन्द्रखण्डों की आत्मा" नामक कविता में चन्द्रमा की मद्धिम रोशनी और फटे बादलों की चर्चा करने के पश्चात् कवि अपने कुंठित व्यक्तित्व-बोध की तुलना चंद्रमा की छिपती, विपती, धुँधली कटी फाँक से करता है। उसका व्यक्तित्वबोध चन्द्रमा की भाँति मद्धिम पड़ता जा रहा है। मद्धिम चन्द्रमा और फटे बादल उसके कुंठित व्यक्तित्व बोध की ओर संकेत करते हैं। प्राकृतिक परिवेश का निरूपण अभिव्यक्ति को सजीवता प्रदान कर रहा है—

"मद्धिम चन्द्रमा
फटे बादल
× × ×
छिपती, विपती मद्धिम पड़ती
धुँधली, पूरी, फिर कटी फाँक
यह मैं
मेरा व्यक्तित्व बोध।"[2]

"अंध शिलाओं की दुनिया" इस कविता में कवि का संघर्षरत व्यक्तित्व प्रखर रूप से समक्ष आया है। जब विश्वास, स्वप्न सब भ्रष्ट मंत्र के समान विफल हुए, कवि की दृष्टि में स्वप्न प्यार में सब कुछ एक दिन समाप्त हो जाते हैं। "परियाँ शिलाएँ स्याह" से स्पष्टतः उस व्यक्तित्व के विगत-जीवन की रूमानी निराशा का परिचय मिलता है। जिस वर्तमान और जिस भविष्य के आहत एवं अन्धकारमय होने की बात इसमें जोड़ी गई है, वह समस्त युग का वर्तमान और मानवमात्र का भविष्य नहीं है—

"हप भ्रष्ट मंत्र सा विफल हुआ
जिस दिन विश्वास, स्वप्न, प्यार यह
चाँद बना आबनूस
परियाँ शिलाएँ स्याह
वर्तमान आहत
भविष्य, अन्धकार यह"[3]

"क्वाँर की सूनी दोपहरी" का चित्रण करता हुआ कवि जीवन के एकाकीपन की तुलना क्वाँर की सूनी दोपहरी से करता है। जिस प्रकार क्वाँर की दोपहरी एकदम सुनसान होती है, उसी प्रकार कवि जीवन एकाकी और मायूसी से युक्त है। उसे प्रति-

---

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ३२।
२. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ४१।
३. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ४४।

उत्तर की आशा नहीं, विरक्ति और वैविध्य का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। कवि के समस्त सपने समाप्ति की ओर अग्रसर हैं। कवि इस समस्त संसार से दूर होता जा रहा है—जिसकी प्रतिक्रिया निम्नलिखित पंक्तियों में चरितार्थ हो जाती है—

"वह अकेली सी घड़ी
वह दीप ठंडा,
दूर होता जा रहा है दूर कितना
लग सका है कुछ न अपना,
जिन्दगी भर दूर ही रहना पड़ा है
प्यार के हारे जगत से।
स्वप्न फिर से बन गये सपने हमारे
डूबती मन की नई रंगीन दुनियाँ
दूर हूँ मैं दूर होता जा रहा हूँ।"[१]

"पतझर की एक दुपहर" कविता में मानव मात्र के लिए मंगल कामना करता है कि जिस प्रकार हर वर्ष पतझर के मौसम में पुराने पीले पत्ते एक-एक करके वृक्ष से झड़ जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य के जीवन में भी वर्ष में कम से कम एक बार समस्त चिन्ताएँ, तकलीफें, समस्याएँ, अवहेलनाएँ क्यों नहीं समाप्त हो जाती हैं—

"ढेर-ढेर पीले पत्तों की तरह
ये मेरे रोग
चिन्ताएँ
तकलीफें
अवहेलनाएँ
क्यों नहीं पूरी-पूरी गिर जाती
साल में एक बार।"[२]

"आग और फूल" कवि के आत्मसंघर्ष से परिपूर्ण कविता है। उस काल की रचना है जब भारत ब्रिटिश शासन से मुक्ति प्राप्त कर चुका था, किन्तु देश की स्थिति असामान्य थी। दीन, अबोध बालकों के अविकसित रूप व बुद्धि को देखकर कवि का मन चीत्कार कर उठा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों साधन के अभाव में इन निरीहों के जीवन की उज्ज्वल घड़ियाँ यूँ ही व्यतीत हो जायेंगी, उनका यौवन, उनके जीवन की मधुर लालसाएँ दरिद्रता ने कुचल डाली हैं। नियति उन बालकों के जीवन के सुख को समाप्त करने को तत्पर है।

"निकलती ही जा रहीं घड़ियाँ सुनहली
आयु के सबसे अधिक उज्ज्वल चरण की

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ७०।
२. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ३३।

ग्रीष्म के उस फूल सी
जिसकी नयी केसर हवा ने सोख ली
वह आग की पीली शिखा
नीले धुएँ की धारियाँ घेरे रही
जिसके प्रथम आलोक को
सीमान्त में जिसके रहे
पर्वत अँधेरे के खड़े
सुनसान की आवाज
आती ही रही नेपथ्य से
जो निगल जाना चाहती थी
जिन्दगी के गीत को।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि माथुर जी के काव्य में प्रकृति के आत्मसंघर्ष से संबंधित अनेकों कविताएँ उपलब्ध होती हैं, जिनके चित्रांकन में वह पूर्णतः सफल है।

(ग) प्रकृति-श्रृङ्गार प्रणयानुभूति

रोमानी भावनाओं की अभिव्यक्ति में भी कवि को अभूतपूर्व सफलता मिली है। प्रेम भाव की मधुर अभिव्यंजना के साथ प्रकृति के सफल चित्रण गुथे पड़े हैं। माथुर जी के काव्य में प्रकृति के प्रति रोमानी वृत्ति प्रारम्भ से ही उजागर रही है। प्रकृति उनके काव्य में कामना-विह्वल रूपों में अवतरित होती है। रात हेमन्त की कविता में माथुर जी ने रात को ऐसी कामिनी बताया है, जो अपने पति की सेज गरम करने के लिये लिपटकर सो गई है—

"नयन लालिम स्नेह दीपित,
भुज मिलन तन गन्ध सुरभित
इस मुकोले वक्ष की
वह छुभन, उकसन, चुमन अलसित"[2]

"गिरिजा कुमार माथुर की कविता में ऋतुमती वनस्पति, नितम्बिनी धारा, कटीली हवा, रंगीन चुम्बन, रेशमी छाँह आदि के बिना प्रकृति का कोई चित्र पूरा नहीं होता। उनकी कविताओं में प्रकृति उनकी श्रृंगारिक अनुभूति और देहासक्ति के अतिरेक को उद्घाटित करती है। जहाँ माथुर इन प्रवृत्तियों को अनुशासित कर सके हैं, वहाँ उनके प्रकृति चित्र अत्यंत प्रसन्न और स्वच्छ जान पड़ते हैं।"[3]

रोमानी भावों की अभिव्यक्ति में "रेडियम की छाया" नामक कविता महत्व-

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ६५।
२. मंजीर, माथुर, पृ० ५४।
३. नयी कविता, डा० कान्ति कुमार, पृ० २०७।

पूर्ण है। इसमें सूनी रात का चित्रण किया गया है, जिसमें सिमटा कोहरा चाँद-कटोरे की सिकुड़ी कोरों के माध्यम से मंद चाँदनी पी रहा है। चित्रांकन के इस परिप्रेक्ष्य में कवि प्रथम मिलन का चित्र अंकित करना चाहता है। वातावरण का निर्माण इस रूप में किया गया है कि मिलन की उत्कंठा स्पष्टतः इंगित होती है—

"सूनी आधी रात।
चाँद कटोरे की सिकुड़ी कोरों से
मंद चाँदनी पीता लम्बा कुहरा,
सिमट लिपट कर"[१]

इसी प्रकार के रोमानी भावों को अभिव्यक्त करने वाली एक अन्य कविता है "आज है केसर रंग रंगे वन।" इसमें परस्पर आलिंगन, प्रेम व मिलन समय की लज्जा को कपोलों की ललाई व अन्य प्राकृतिक संकेतों के माध्यम से व्यक्त किया है। प्राकृतिक सौन्दर्य व दैहिक सौन्दर्य को मिलाकर लिखी गई सर्वोत्कृष्ट कविता है। पूरी कविता में बसन्त है, दूसरी तरफ देह के यौवन का बसन्त है। प्रथम खण्ड में प्राकृतिक वातावरण का निर्माण रोमानी भावों के सर्वथा अनुरूप है।

"आज है केसर रंग रंगे वन
रंजित शाम भी फागुन की खिली पीली कली सी,
केसर के वसनों में छिपा तन
सोने की छाँह सा
× × ×
गोरे कपोलों पे हौले से आ जाती
पहिले ही पहिले के
रंगीन चूंबन की सी ललाई"[२]

प्रकृति को कहीं-कहीं चेतन सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। उस पर नाना चेतन भावों का आरोप किया गया है। चित्रण की यह पद्धति मानवीकरण कहलाती है। छायावादी काव्य की एक प्रमुख विशेषता है, जो कहीं-कहीं माथुर जी की रचनाओं में भी मिलती है। "रूप विभ्रमा चाँदनी" नामक कविता में चाँदनी को आधुनिक सुन्दर नारी के रूप में देखा गया है। आधुनिक नारी की भाँति वह छरहरे बदन की है, स्लीवलेस ब्लाउज पहने है। मुँह में इलायची चबाती हुई हल्के कदम रखती हुई बेफिक्र मस्ती से जा रही है। यहाँ की चाँदनी निर्जीव न रहकर सचेतन पात्र के रूप में सामने आई है। कवि चाँदनी में अपनी प्रेयसी का रूप देखता है—

"स्लीवलेस ब्लाउज पहने
छरहरी चाँदनी

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ५५।
२. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ११०।

पेड़ों की चमकदार जालियों तले
बेफ़िक्र मस्ती से
हल्के कदम रख चलती
मुँह में मन्द-मन्द इलायची चबाती।''[1]

एक अन्य कविता में लता का मानवीकरण किया गया है, उसे नारी के रूप में चित्रित किया गया है। उसकी कटि लहरदार, नितम्ब उभरे हुए तथा हथेली नरम है। उसने बुंदकियोंदार मेंहदी लगा रखी है, और पाँवों में साँझ का आलता लगाया है—

"हरी धूप की किरन-सी लता
लहरदार कटि
घुली कांपती-सी
हथेली नरम
बुंदकियोंदार मेंहदी लगा
पाँव में
साँझ का आलता"[2]

"नया वसन्त" कविता में कवि को वसन्त का मौसम मोरपंख की भाँति हल्का लग रहा है, क्योंकि इस ऋतु में दिशाएँ कवि की भाँति स्वतः रोमानी रंगों में डूबी हैं, रातें सुन्दर नंगी बाँहों के समान और मन कोमल गुलाबी हुई समान बन गया है। कुल मिलाकर बसन्त की रात का वातावरण मादक और रंगीन है—

"अब बसन्त के प्रथम दिनों की
मंद चाँदनी रात खिल गई।
चोरी-चोरी खिले चमेली के फूलों सी
× × ×
खुली दिशाएँ रोमानी रंगों में डूबी
नंगी सुन्दर बाँहों सी खुलती है रातें
हल्का चीर हवाओं के सीने पर सिमटा
मोर-पंख, जैसा यह हल्का मौसम आया"[3]

प्रिया के प्रति माथुर जी की विशेष अनुरक्ति है, इसीलिये उसके रूप व सौन्दर्य की मादकता ने कवि के तन व मन पर काफी प्रभाव डाल रखा है। उसके आगमन से जहाँ एकरस व सूनी जिन्दगी में सरसता का समावेश हो गया है, वहाँ मन में कोमल रोमानी भावनाएँ शत्-शत् वेग से तरंगायित होकर आदिम जिज्ञासा को उद्दीप्त करने में सहायक सिद्ध हो रही है—

१. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ५५।
२. जो बंध नहीं सका, माथुर, पृ० ७३।
३. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० १३१।

"तुम मेरे शरीर पर काले जादू की तरह छा गयी हो
तुम्हारी देह मेरे भीतर ढल देती है
किसी जंगली गीत की बढ़ती हुई
अजनबी लय की तरह लगातार
× × ×
तुम मेरे रंगहीन जन्म के अकेलेपन में
एक बाहरी फूल की तरह लग गई हो
मेरे शब्दों की खुशबू
तुम्हारी बाँहों की लिपटती गन्ध है
× × ×
तुम मेरे अंधे वक्त के पहले खालीपन में
गहरे खुले स्वाद की तरह समा गयी हो
तुम मेरे शरीर पर काले जादू की तरह छा गयी हो"[1]

(ख) प्रकृति-लोकांचल

गिरिजा कुमार माथुर मूलतः नगरीय जीवन के चितेरे हैं। उनके काव्य की मूल संवेदना नागरिक जीवन से सम्बन्धित है, क्योंकि इस जीवन को उन्होंने स्वयं भोगा है। इसी में वे पले, बड़े हुए और इसी नगरीय वातावरण में इनकी काव्य-प्रतिभा विकसित हुई है। लेकिन माथुर जी ने प्रगतिशील कवियों से प्रभावित होकर शहरी जीवन के साथ-साथ लोक जीवन के भी अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं। लोक में प्रचलित प्राचीन कथाओं को नया रूप दिया गया है। इस दृष्टि से ढाकबनी और दियाधरी कविताएँ प्रमुख हैं।

"ढाकबनी" कविता के प्रथम परिच्छेद में प्रकृति का व्यापक रूप से चित्रण किया गया है, इसके पश्चात् कवि गाँव के एक घाँव के रहन-सहन, प्रतिदिन उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं का इस रूप में वर्णन करता है कि गाँव में रहने वाले लोगों के निम्न-स्तरीय जीवन का सहज ही आभास हो जाता है। किन्तु ऐसे स्थलों पर वस्तु-परिगणन शैली का ही बाहुल्य है—

"बीच पेड़ों की कटन में
हैं पड़े दो चार छप्पर
हाँडियाँ, माचिया, कठौते
लट्ठ, गूदड़, बैल, बक्खर
राख, गोबर, चर, आँगन

1. भीतरी नदी की यात्रा, भूमिका, पृ० ७-८।

लेज, रस्सी, हल, कुल्हाड़ी
सूत की मोटी फतोई
चका, हँसिया और गाड़ी''[1]

भारतीय ग्राम यद्यपि प्राकृतिक वैभव से सम्पन्न हैं, किन्तु यहाँ के निवासी गरीब हैं। कवि को खेद है कि सब कुछ होते भी ये लोग पिछड़े हुए हैं। ये जिन्दगी का बोझ ढोते हुए भिखारियों जैसे दिखाई पड़ते हैं। इनके घर सूनसान हैं, और आदमी प्रेत के समान हैं। यदि इनको नये युग का प्रकाश मिल सके, तो इनके जीवन में सुख, समृद्धि का विकास सम्भव है। दिन भर कठोर परिश्रम करने पर भी ग्रामवासियों को दोनों समय भरपेट भोजन भी प्राप्त नहीं होता, भूख की मनहूस छाया सदैव उनके जीवन पर छाई रहती है—

''घन वनस्पति भरे जंगल
और यह जीवन भिखारी
शाप नल का घूमता है
भोथरे हैं हल कुल्हाड़ी''[2]

इस कविता में कवि ने प्रकृति-प्रेम का परिचय दिया है। वन की भूमि, पेड़ पौधे, वनस्पति, ढूह, टीले, सूखी घास, आदि के विवरण से ढाकवनी का परिदृश्य सजीव हो उठा है। इस कविता में नये बिम्ब, नये उपमान और पौराणिक सन्दर्भों का नया प्रयोग सर्वथा नूतन है जिसकी पुष्टि डा० विजय कुमारी के निम्न कथन से होती है—

''मुक्तिबोध आदि की भाँति उनमें व्यापकता, तल्लीनता, रम्यता तथा सूक्ष्मता का अभाव है। ''ढाकवनी'' व ''दियाधरी'' आदि कुछ कविताएँ ही ऐसी हैं, जिनमें भारतीय ग्रामों में रहने वाले निवासियों के रहन-सहन, अंधविश्वास व पिछड़ेपन की झलक दिखाई देती है। इसका कारण यह है कि लोक-जीवन का चित्रांकन उनके काव्य का प्रमुख अंग नहीं है। शहरी परिवेश ही उनकी काव्य कृतियों में अधिक मार्मिकता से उभरकर आया है।''[3]

(ङ) विदेशी वातावरण व प्रकृति का प्रभाव

माथुर जी विदेशी वातावरण से भी पर्याप्त रूप में प्रभावित हुए हैं। यूरोपीय प्रकृति के अनेक सुन्दर चित्र उन्होंने अपनी कविताओं में खींचे हैं। इस दृष्टि से ''न्यूयार्क की एक शाम'', ''न्यूयार्क में फाल'', ''सिन्धु तट की रात'' आदि रचनाएँ महत्वपूर्ण

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ८८।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ८८।
३. गिरिजाकुमार माथुर : नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में, डा० विजयकुमारी, पृ० १११।

है। विदेशी वातावरण में पहुँचकर कवि आश्चर्यचकित रह जाता है। वहाँ की रोमानी ऋतु, धन, नृत्य, विलास आदि से उनका शरीर रोमांचित हो जाता है—

"स्याह सिंधु की इस रेखा पर
है झिलमिली तिलिस्मी रेखा
× × ×
धन विलास, मद, नृत्य, केलि, रस
ऋतु रोमानी तन रोमांचित"[1]

"न्यूयार्क में फाल" कविता में कवि ने विदेशी वातावरण का मनोरम चित्र खींचा है। प्राकृतिक उपादानों का वस्तुवादी रूप में चित्रण करके वहाँ के वातावरण को सजीव बनाने का प्रयास किया है—

"थम गई बरसात नम
आ गया है नायलन सा पारदर्शी
यह खुला मौसम
मनोरम फाल का मौसम
हिमानी रात
ठण्डी धूप का मौसम"[2]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि माथुर जी ने प्रकृति के विविध रूपों को चित्रित किया है। प्रकृति का सर्वाधिक प्रयोग कर कवि ने वातावरण निर्माण के परिप्रेक्ष्य में रोमानी अनुभूतियों को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। माथुर जी की प्रारंभिक रचनाओं में प्रकृति के प्रति रोमानी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। प्रकृति से आत्म संघर्ष के रूप में भी इनकी कविताएं अपना प्रमुख स्थान रखती हैं। कहीं कवि ने प्रकृति के माध्यम से लोक-जीवन के सरल व सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं, कहीं ग्राम्य प्रकृति के चित्र खींचने में कवि को अधिक सफलता मिली है। प्रकृति-चित्रण की उपर्युक्त विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में परम्परा से ग्रहण करने के साथ-साथ मौलिक योगदान भी दिया है। इसके साथ ही भारतीय जीवन के ही नहीं विदेशी वातावरण व प्रकृति के सुन्दर चित्र अंकित किये हैं। हिन्दी में पहली बार इस प्रकार की कविताएं रची गई। इनकी प्रकृति सम्बन्धी विशेषताओं के संदर्भ में डा० कान्ति कुमार ने लिखा है—

"प्रयोगवाद के क्षेत्र में गिरिजा कुमार माथुर ने प्रकृति की रंगमयता, उसकी उदासी, एकाकीपन, प्रेम, स्मृतियों के दंश आदि को सूक्ष्म बिम्बों और कुशल भाषा-प्रयोगों के माध्यम से व्यक्त किया है। जिस प्रकार छायावादी कवियों में सुमित्रानन्दन पन्त अपनी बौद्धिक संवेदना और अभिनव के बल पर अपनी भूमिकाएं बदलते रहे हैं,

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर पृ० ३।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ६८।

और हर नये काव्यान्दोलन का साथ देते रहे हैं, लगभग वैसी ही स्थिति छायावादोत्तर कवियों में गिरिजाकुमार माथुर की है।''[1]

(घ) वैज्ञानिक संदर्भ

''आज की दुनिया में जो विज्ञान और टैक्नोलोजी का प्रभाव है, वह ''न्यूयार्क में फाल'' (१९५३) कविता से आरम्भ होता है। हमारे यहाँ आज तक प्रकृति, पौराणिक संदर्भ, दर्शन रहे हैं, उसके बाद प्रेम, शृंगार, परम्परा, इतिहास यह छः प्रेरक मूल हैं। विज्ञान और टैक्नोलोजी की भूमि प्रेरक नहीं होती। इन कविताओं में सबसे अधिक टैक्नोलोजी युगीन सभ्यता को काव्य की प्रेरणा माना जाता है। बिम्ब, शब्द-भावना, ये वैज्ञानिकता का सूत्रपात हिन्दी कविता में ''न्यूयार्क में फाल'' आदि से होता है।''[2]

''थम गई बरसात नम
आ गया है नायलन सा पारझीना
यह खुला मौसम
मनोरम फाल का मौसम
हिमानी रात
ठण्डी धूप का मौसम
समुद्री हवा पर उड़ता हुआ
पत्तों भरा ऑटम''[3]

युगीन भावबोध का यथातथ्य चित्रांकन करने के साथ-साथ कवि ने नयी वैज्ञानिक चेतना के उन तथ्यों का संधान भी किया है, जिन्होंने समसामयिक जीवन में समूल परिवर्तन ला दिया है। नवीन वैज्ञानिक उपकरणों के परिणामस्वरूप आज के मानव-जीवन में और विशेषकर नगरीय जीवन मे काफी परिवर्तन आ गया है। एक आधुनिक ड्राइंग-रूम का चित्र देखिये जो वैज्ञानिक उपकरणों से पूरी तरह सज्जित है—

''ड्राइंग रूम आधुनिक
बेत-सोफे, कालीन-दीवान
चटाई रोल्स, फिशबोल
एक्योसियस की पत्तीदार रोशनी
मैगजीन-पुस्तकें
नैकटाई, एबस्ट्रेक्ट आर्ट
धातु के अनहोने पक्षी''[4]

---

१. नयी कविता, डा० कान्ति कुमार, पृ० ५५।
२. वक्तव्य, गिरिजाकुमार, साक्षात्कार।
३. धूप के धान, माथुर, पृ० ६८।
४. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० २९।

माथुर जी ने "हूब्श देश" शीर्षक कविता में पराधीन अफ्रीका को एक सबल व्यक्तित्व देने की चेष्टा की, ठीक उसी तरह जिस तरह दिनकर ने हिमालय को व्यक्तित्व दिया था। आधुनिक औद्योगिक और रासायनिक युग की संवेदनशीलता माथुर जी की "हूब्श देश" शीर्षक कविता में उपलब्ध होती है।

उगल रही हैं खानें सोना
अभ्रक, तांबा, जस्ता, क्रोमियम
टीन, कोयला, लौह, प्लेटिनम
युरेनियम, अनमोल रसायन
कोबेल्ट, सिल्क, कपास, अन्न, धन
द्रव्य फोसफेटों से पूरित[1]

विज्ञान के नये उपकरणों को काव्य-सामग्री के रूप में प्रस्तुत करके कवि ने नयी परम्परा का सूत्रपात किया है। वैज्ञानिक उपकरणों की भाँति आधुनिक मानव के दिल और दिमाग भी लोहे और इस्पात के भाँति बन गये हैं। मानव का जीवन घड़ी की सुइयों में बँधा हुआ है, जिसमें आत्मसंवेगों का पूर्णतः अभाव है। जीवन के हर क्षेत्र में बनावट और दिखावा ही अधिक दृष्टिगत होता है, और इस दिखावटी व कृत्रिम सभ्यता का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है—मध्यवर्ग पर—

"लोहे के दिल-दिमाग, हाथ इस्पात के
निरजीव समय को जो अंकों में बाँधते
चलते हैं तार खिंचे मध्यवर्ग के पुतले
रोल्ड गोल्ड का कल्चर चमकते मुलम्मे-से"[2]

स्पष्ट है, विज्ञान के नये उपकरणों को भी माथुर जी ने काव्य-सामग्री के रूप में प्रयुक्त किया है, क्योंकि वे वैज्ञानिक सभ्यता के विकास को मानव की शक्ति एवं साहस का प्रतीक मानते हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों को वे प्रकृति पर मानव की विजय का प्रतीक मानते हैं। पृथ्वीकल्प, कल्पान्तर आदि रचनाओं में उन्होंने वैज्ञानिक उपलब्धियों को आशा एवं उल्लास की दृष्टि से देखा है, भय की दृष्टि से नहीं।

"विज्ञान के नये आविष्कार और उनकी संभावनाएँ इस कवि को काव्य-चेतना में ढलने लगीं—अणुयुग के वैज्ञानिक चमत्कारों को अन्तरिक्ष-विजय की नई संभावनाओं और उनके प्रकाश में मानवता के भविष्य की कल्पनाओं को साकार करने के लिए कवि ने "पृथ्वीकल्प" के रूप में अत्यन्त साहसिक प्रयास किया है। मेरी धारणा है कि विज्ञान के नये उपकरणों को काव्य सामग्री के रूप में प्रयुक्त करने का यह अपने ढंग का पहला प्रयास है।"[3]

१. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ५८।
२. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ७२।
३. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—माथुर, डा० नगेन्द्र, पृ० ३०-३१।

पृथ्वीकल्प—कवि के मन में पृथ्वी पर जीवन के जन्म और उसकी सार्थकता से सम्बन्धित परिकल्पना का उद्‌भव ! 'पृथ्वीकल्प' अन्तरिक्ष युगीन काव्य है, जिसमें पृथ्वी पर मानवीय जीवन के अर्थ को सृष्टि की विराट निरन्तरता के संदर्भ में देखने की कोशिश कवि ने की है।

"पृथ्वीकल्प" नवीन शिल्प प्रयोगों से मंडित, नवीन प्रबन्धात्मकता का सुन्दर उदाहरण है। इसमें काव्य-नाटक और फैंटेसी-शिल्प का सुन्दर प्रयोग हुआ है। वर्तमान की यह कटु वास्तविकता को चित्रित करने का यह सफल प्रयत्न है। इस प्रतीक नाटक के अन्तर्गत जहाँ वर्तमान के समस्त रूपों और पक्षों का सम्यक् निदर्शन हुआ है वहाँ भविष्य खंड में संसार के साधारणजनों, परिवर्तित मूल्यों और आगामी मानव-समाज का संकेत चित्र भी प्रस्तुत किया गया है।

"धरती की सुन्दरतम
सृष्टि इंसान है
संशय, भय, घृणा
युद्ध, जिनका शैतान है।
× × ×
जड़ताली पंजों में अपनी संस्कृतियों पर
और इन्सान की
पृथ्वी की गाथा
इतिहास की कहानी"[1]

कल्पान्तर

कवि ने अपने अमेरिका प्रवास से लौटने के बाद सन् १९५३ के प्रारम्भ में इस विज्ञान काव्य का पहला प्रारूप लिखा था। इसका एक अंश पद्य नाटक के रूप में आकाशवाणी दिल्ली पर आयोजित एक सप्ताह के पहले नाट्य समारोह में २६ मार्च १९५३ को एक घंटे के लिए प्रसारित हुआ था। उस समय इस रेडियो रूपक को "शान्ति विग्रह" के नाम से जाना जाता था। कवि ने इसका अंतिम रूप परिवर्तित और संशोधित करके १९६० में पूरा कर दिया था, जिसका एक लम्बा अंश इसी रूप में अप्रैल १९६० 'कल्पना' मासिक पत्रिका हैदराबाद में प्रकाशित हुआ था। आज जो चारों तरफ बढ़ती हिंसा है, आदमी के लिए खतरा तथा प्रकृति का शोषण है। ये समस्याएँ 'कल्पान्तर' में उठाई गई हैं।

स्वयं कवि ने 'कल्पान्तर' की भूमिका में लिखा है:—

"आधुनिक युग की ऐतिहासिक चुनौतियों को अभिव्यक्ति देने वाला पहला विज्ञान काव्य है। इसकी प्रेरणा कोई पुरा-कथा या प्राचीन चरित प्रतीक न होकर

---

१. तारसप्तक, सं० अज्ञेय, पृ० १७४।

विज्ञान की प्रचुर एवं परीक्षित ज्ञान-भूमि पर अवस्थित है। अब तक अधिकांश काव्य कोई न कोई पौराणिक आख्यान या ऐतिहासिक घटना का आधार लेकर लिखे जाते रहे हैं, और प्रकारान्तर से उन्हें वर्तमान संदर्भों के साथ अक्सर जोड़ा जाता रहा है। इसके विपरीत "कल्पान्तर" की विषय-वस्तु समकालीन दुनिया के बीच से सीधे उठाई गई है, और उसमें काव्य, बिम्ब, प्रतीक योजना तथा शैली की एक नूतन काव्य-भूमि उद्‌घाटित हुई है। निस्सीम अंतरिक्ष में फैले अनन्त ग्रह नक्षत्रों के बीच पृथ्वी के विराट अस्तित्व और जीवन्त अद्वितीयता से काव्य प्रारम्भ होता है। मानवीय जीवन के जन्म और विकास की गाथा, आदमी की आधुनिकतम सभ्यता, समाज-व्यवस्था, इतिहास, राजनीति पदवादियों के विचारधारात्मक संघर्ष, सत्ता और प्रभुता की अन्तर्राष्ट्रीय क्रूर प्रतिस्पर्धा, सर्वग्रासी युद्ध पर्यावरण का प्रदूषण और आणविक संहार की आसन्न भयावहता के संदर्भ में शान्ति की परम अनिवार्यता को काव्य के एक क्षिप्र-सूत्र में पिरोकर "कल्पान्तर" में प्रस्तुत किया गया है।"[1]

"कल्पान्तर" काव्य में भविष्य के लिए संदेश है कि आज जो अलग-अलग परम विरोधी शत्रु हैं, अन्तरिक्ष युग के समाज में इनका उत्कृष्ट रूप से समन्वय होगा। अन्तिम संदेश है--"आर्थिक साम्य के मूल आधार पर लोकतांत्रिक सांस्कृतिक मुक्तियाँ।"

विज्ञान की दिनोदिन उन्नति को जहाँ माथुर जी श्रेयस्कर मानते हैं, वहीं उनका यह विश्वास भी है कि जीवन की कोमल व रंगीन भावनाएँ मशीनों की घटाओं से विलुप्त-सी होती आ रही हैं। जीवन की सरसता, कोमल भावनाएँ समाप्त होती जा रही हैं :

"मिट रही रंगीन जीवन की घटा
छा रही हिंसक मशीनी घन घटा
आज जीवन को चुनौती मौत की
नीति कैदी है कुटिल कल धौत की"[2]

विज्ञान ने मानव को सुख दिया है, किन्तु यह भी सत्य है कि उसने मानव को निष्क्रिय और अकर्मण्य बनाया है। विज्ञान की चकाचौंध में मानव अपने को ही भूल बैठा है। वह विज्ञान का दास हो गया है। अतः माथुर जी इस बात को ध्यान में रख कर यांत्रिक सभ्यता का विरोध करते हैं, यांत्रिक सभ्यता पर्वत और सिन्धु पर विजय के लिए प्रयत्नशील हैं, किन्तु उसने मानवता का गला ही घोंट दिया है—

"आविष्कारों के सुख साधन
सब अस्त्र बन गये शोषण के"[3]

वैज्ञानिक आविष्कारों की बढ़ती होड़ के कारण जिन्दगी कुछ इतनी तेज रफ्तार से आगे बढ़ रही है कि जनसामान्य के मन से धीरे-धीरे मानवीय सद्‌भावनाएँ समाप्त

१. भूमिका, कल्पान्तर, माथुर।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ८३।
३. धूप के धान, माथुर, पृ० ३७।

होकर जड़ता व यान्त्रिकता-सी आती जा रही है। "बीसवां अन्धकार" इसमें कवि ने पाश्चात्य देशों में मशीनीकरण के दुष्परिणामों का आकलन किया है। वहां विज्ञान के बढ़ते चरणों के कारण मनुष्य का जीवन अंगी मशीन के बटन और इतिहास के कूड़े-दान में रद्दी के पैकेट से ज्यादा महत्व नहीं रखता। नफरत, आक्रोश, हिंसा, मारधाड़ युद्ध का वातावरण दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। प्रकृति के रम्य स्थल मशीनी सभ्यता के राक्षसी पंजों की जकड़न में धीरे-धीरे जकड़ते जा रहे हैं। लगता है उनका सुन्दर रूप-रंग छीनकर मनुष्य उन्हें भी मशीनी बनाने में पीछे नहीं रहना चाहता।

"तुमने बेहिसाब,
चर डाले सारे सुगन्ध जंगल
डीफोलियन्त छींक नंगधड़ंग किये पेड़
ढोक लिया नदियों का पानी
बना लिया
समुद्रों को तेल का कुप्पा
झीलों के गटर और पोखर
कारखानों के फुजले से
भरे ताजी हवाओं में गन्धक के बादल
धूप पर इलेक्ट्रो प्लेटिंग
चाँदनी पर डियोडोरेण्ट वार्निश"[1]

आज की इलेक्ट्रोन सभ्यता ने मनुष्य को सेण्ट्रल-हीटिंग, कम्प्यूटर, टीवी, कार आदि जीवन की सुख-सुविधाएँ तो दी हैं, लेकिन इनके साथ-साथ समाज को माफिया मुनाफाखोरी, मर्डर, भोग, कैबरे आदि पापमयी प्रवृत्तियों से परिपूर्ण दुनिया भी दी है। ऐसी दुनिया जो मानवीय सम्बन्धों व स्नेहिल वातावरण से कोसों दूर है। जहां बच्चों के दिल में माँ बाप के लिए इज्जत नहीं है, क्योंकि बार-बार उनके बाप बदलते हैं, माँ बदलती हैं, कारण है -माँ बाप के बीच कई बार तलाक होते हैं। बच्चे जन्म लेते ही अपने आपको मारपीट झगड़े के वातावरण में देखते हैं। ऐसे बच्चे आगे चलकर स्वयं तो दुःख उठाते ही हैं, समाज को भी कलंकित करते हैं।

"भागती हुई सामने
अण्ट-शण्ट बर्राती
ऐश-इशरत से भौंचक
चकाचौंध अन्धलोक की पोल में भहराई
कन्नाती इलेक्ट्रोन सभ्यता...
बर्षों से
माफिया, मुनाफा, शराब, द्युत स्लेट

---

१. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ६६।

स्विग, कैबरे, कैसीनों, भोग, मर्डर के बीच
पोशीदा पापों से भयभीत
खूबसूरत सम्बन्धों से कटी हुई दुनिया
मैंने देखा है
भागते हुए तुम्हें
अपने ही बनाये हुए घर से
अपराधी इन्सान हमलावर से।"[1]

यान्त्रिक सभ्यता ने मनुष्य को इतना शुष्क और संवेदनहीन बना दिया है कि "प्रेम" जैसी पवित्र अनुभूति भी उसके लिए बोरियत का रेचन मात्र है। उसकी पसंद इतनी कुरुचिपूर्ण है कि कला उसके लिये कामुक विज्ञापन है। भगवान की मूर्ति से कोई धार्मिक भावना नहीं जुड़ी है, वह तो तस्कर-व्यापार का एक साधन मात्र है। साहित्य उसके लिए सेक्स के प्रदर्शन से ज्यादा महत्व नहीं रखता। ऐसा वासनात्मक दृष्टिकोण है आज के मानव का।

"प्यार बोरियत का रेचन
सादा पानी तत्काल
तुम्हारी पसन्द प्रेत, थ्रिलर, चमत्कार, मारधाड़
आर्ट कामुक विज्ञापन
ड्राइंग रूम की आसाइश
मूर्ति तस्कर-व्यापार
साहित्य सेक्स का बाजार
संगीत भो कानफाड़—"[2]

"वणिक संस्कृति का मृत्यु गीत" शीर्षक से स्पष्ट है कि आज जो वणिक, संस्कृति, उत्थान की ओर अग्रसर हो रही है, और मनुष्यों को विभिन्न कष्ट दे रही है, उस वणिक संस्कृति का विनाश, उसकी मृत्यु अत्यधिक समीप है। अंतिम परिच्छेद में कवि उस विशाल और अजेय यंत्र सत्ताधारी के विषय में कहता है, यहाँ सम्पूर्ण संसार की मशीनरी का मानवीकरण। मशीनरी संस्कृति विराट का प्रतीक। हमारे यहाँ जो नित्य नवीन आविष्कार हो रहे हैं, वह इस यंत्रधारी विराट के ही रूप हैं। ये सत्ता ही ईर्ष्या, द्वेषत, घृणा आदि बाहर फुंकार रहा है, मशीनरी युग का मानव आज अनुदात्त वृत्तियों निम्न, कलुष वृत्तियों से ही परिचालित है। इस युग में मानव की स्थिति एक मशीन के छोटे से स्क्रू की तरह हो गई है। मशीन फिट करते समय जैसे स्थान-स्थान पर स्क्रू लगाये जाते हैं, उसी तरह आज हम इस मानव को भी जहाँ-तहाँ उप-

१. भीतर नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ६३-६५।
२. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ६६।

योग के लिये लाते हैं, उसका मूल्य मांस स्क्रू से अधिक नहीं है। मनुष्य यहाँ स्वयं परिचालित है।

> "ये पहिया जो चलता है
> यन्त्रधारी विराट का
> वह भीतर का जहर
> बहुत बाहर फुंकारता
> आदमी हुआ बौना
> मांस स्क्रू इस परमता का
> ×　　×　　×
> अब अक्ल और पागलपन
> दोनों ही एक हैं।"[1]

नयी कविता के क्षेत्र में माथुर जी की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, नवीन वैज्ञानिक चेतना का सूत्रपात। "वैज्ञानिक उपकरणों को काव्य-सामग्री के रूप में प्रस्तुत करके कवि ने अछूते क्षेत्र का उद्घाटन किया है। इसके साथ ही विज्ञान की बौद्धिकता व काव्य की भावनात्मकता में ऐक्य स्थापित किया है। वैज्ञानिक प्रगति के परिप्रेक्ष्य में मानव-विकास की संभावनाओं के प्रति आशा व्यक्त की गई है। इस दृष्टि से 'पृथ्वी कल्प' सुन्दर प्रतीक नाट्य है।"[2]

यहाँ इस बात की चर्चा करना भी अप्रासंगिक न होगा कि 'पृथ्वीकल्प' और 'कल्पान्तर' के प्रकाशन के संदर्भ में कुछ भ्रान्तियाँ हैं। जैसी कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि 'पृथ्वीकल्प' के रूप में कवि के मन में पृथ्वी पर जीवन के जन्म और उसकी सार्थकता से संबंधित एक परिकल्पना बहुत पहले आ गई थी। यह एक अलग काव्य है जो अब प्रकाशित होने जा रहा है। युद्ध और शान्ति की समस्या पर आधारित उस मूल काव्य को 'कल्पान्तर' का नाम दिया गया जो अब प्रकाशित हुआ है।

•

---

१. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ५७।

२. गिरिजाकुमार माथुर नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में, डा० विजयकुमारी, पृ० २०२।

चतुर्थ अध्याय

कवि माथुर के काव्य में तनाव की अवधारणा और उसका समाधान

(क) तनाव

कविता में "तनाव" की अवधारणा की व्याख्या करते हुए टेट एक बिन्दु से दूसरे एवं अन्त तक कविता की तार्किक गति को "बाहरी तनाव" (एक्सटेंशन) कहते हैं, और कवि द्वारा संवेगिक निक्षेपण तथा कविता के आलंकारिक विकास को उसका "आन्तरिक तनाव" (इनटेंशन)। काव्यांतर्गत बाहरी तनावों और आन्तरिक तनावों का सम्पूर्ण संयोजित संघात ही तनाव है। अन्ततः वह काव्यार्थ की पूर्ण संकुलता है, जो विचार की निर्वचनीय गति एवं किसी भी बिन्दु पर रूपात्मक विकास—दोनों के ही ऊपर है। टेट के अनुसार काव्य विचारों और संवेदना का संप्रेषण-मात्र नहीं, बल्कि वह अर्थ का संकुल विन्यास है, और इसी रूप में वह आलोच्य भी होना चाहिये।

टेट के विचार से कविता की श्रेष्ठता वस्तुतः "ऐतिहासिक तनाव" पर निर्भर होती है। अर्थात् जब कोई परम्परावादी समाज टूटने की प्रक्रिया में होता है, तो उसमें प्रायः इस प्रकार का तनाव पैदा होता है, इसलिये ऐसे दौर के ऐतिहासिक तनाव को व्यक्त करने वाली कविता स्पृहणीय कही जा सकती है।

निष्कर्षतः टेट के अनुसार—"कविता प्रतीकीकरण का परिणाम होती है, वह इस प्रक्रिया से उद्भूत एक ऐसी व्यवस्थित और सजीव संघटनात्मक भाषिक कला प्रतीक है, जिसमें अभिधार्थ और लक्ष्यार्थ के बीच पाई जाने वाली द्वन्द्वात्मक स्थिति में आन्तरिक सन्तुलन (तनाव) बना रहता है।"[1]

जीवन में तनाव एक ऐसी शक्ति फूंकता है, जिससे जीवन को सार्थकता मिलती है। जो संघर्ष-विमुख होते हैं, उनका जीवन व्यर्थ जाता है। संसार में उसी को कुछ मिलता है, जो जूझता है। माथुर जी के काव्य में तनाव अनेक रूपों में मुखरित हुआ है—

(१) व्यक्तिगत जीवन का तनाव
(२) मानसिक और दैहिक तनाव
(३) यथार्थ तनाव

---

१. नयी समीक्षा के प्रतिमान, डा० निर्मला जैन, पृ० ८८।

(१) व्यक्तिगत जीवन का तनाव

इस शीर्षक के अन्तर्गत उन कविताओं को लिया गया है, जो अपने जन्मस्थान, माता-पिता और परिवार से सम्बद्ध हैं। "बच्चे को स्वाभाविक रूप से माँ का जो प्यार मिलना चाहिये, वह उन्हें नहीं मिला। माँ की बीमारी के कारण वह उससे वंचित रहे, और इस प्रकार दुःख, सहनशीलता, असंपृक्तता और अकेलापन इन सभी के संस्कार बचपन से ही कवि की उपचेतना का अंग बन गये। पिता तीन भाई थे, जिनके बीच गिरिजाकुमार जी अकेले लड़के थे, अतः सभी के स्नेह के पात्र थे। किन्तु उनके मन में बराबर यह द्वन्द्व चलता रहता था कि यह स्नेह सचमुच क्या उनका अधिकार है। और इस द्वन्द्व का परिणाम यह हुआ कि जो कुछ उन्हें उपलब्ध था, उसे वे अस्वीकार करने लगे, और अप्राप्य के लिये छटपटाने लगे। इस मनःस्थिति की छाया उनकी इन पंक्तियों में सरलता से देखी जा सकती है—

"तुम कैसे अद्वितीय हो, ओ मेरे साधक
जो तुम्हें प्राप्त हो सकता, उसे त्यागते हो"[1]

"अंधेरी दुनिया" समस्त कविता तीन खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड में कवि सपने के पूर्व उदास विशेषण का प्रयोग करता है, जो बहुत सार्थक है, तथा कवि के तनावपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति के लिये प्रयुक्त किया गया है। इस प्रथम खंड में सायंकाल एक ट्रेन आ रही है, लेकिन वह कवि के वहाँ पहुँचने से पहले ही छूट जाती है। कवि पुनः उस तक पहुँचना चाहता है, लेकिन वह ट्रेन पूर्ववत् छूट जाती है। "मैली-मैली" यह शब्द विन्यास निराशा, उदासीनता का प्रतीक है, कवि को उस ट्रेन की रोशनी अरुचिकर प्रतीत होती है, इसीलिये वह "मैली-मैली" विशेषण का प्रयोग करता है।

द्वितीय खंड में माँ का इलाज कराने के लिये उन्हें दिल्ली ले जाया जा रहा था ट्रेन में माँ बैठकर चली गई, और स्वयं कवि अकेला रह गया। माँ का इस प्रकार जाना कवि के मन पर फिर नया आघात था। उसे लगा, जैसे जिन्दगी ने धोखा देकर उसे अकेला छोड़ दिया है, जैसे वह केवल असहाय दर्शक है।

तृतीय खंड में माँ के जाने के बाद कष्टों की रात्रि आती है। माँ से वियोग का चित्र, दुःख, गुस्सा, बेबसी इन तीनों शब्दों से कवि की तनावपूर्ण स्थिति पूर्णतः चित्रित होती है। कवि को दुःख है कि माँ निकल गई, गुस्सा है कि मैं पहले आ जाता, बेबसी है, अब क्या होगा?

"मुझे
एक उदास सपना बार-बार आता है
एक पुरानी गैस-बत्ती वाली ट्रेन होती है,
शाम के धुंधवाते अँधेरे में

---

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—माथुर, कैलाश वाजपेयी, डा० नगेन्द्र, पृ० ६-७।

मैली-मैली रोशनी वाली
मैं घबराकर दौड़ता हूँ
वह हर बार छूट जाती है
× × ×
हरबार मेरी एक बीमार माँ
मुझे अकेला छोड़
अँधेरे में डूब जाती है
दूर घूरती हुई एक लाल रिक्त बूँद
रह जाती है
एक बढ़ती रात होती है
तेल की धुँआरी कुप्पियों में जलती हुई
और दुःख, गुस्सा बेबसी में—''[१]

''तूफान एक्सप्रेस की रात'' प्रस्तुत कविता दो खंडों में विभक्त है, प्रथम खंड में माँ के ट्रेन में बैठकर जाने के बाद कवि के एकाकीपूर्ण जीवन का चित्रण किया गया है। कवि की स्थिति ऐसे सूने प्लेटफार्म सी हो गई है, जैसे ट्रेन चले आने के पश्चात् सर्वत्र सन्नाटा छा जाता है। ट्रेन माँ रूप में कवि के समस्त सुख समेट कर ले गई है। कवि स्वयं तनावपूर्ण स्थिति में है, इसलिये उसे सर्वत्र अव्यस्तता दिखाई दे रही है।

द्वितीय खंड में पुनः उसी पूर्ववत् स्थिति का चित्रण किया गया है। कवि की देह खोखले लिफाफे के समान निष्क्रिय और निश्चेष्ट हो गई है। वह अत्यंत दयनीय अवस्था में कहता है कि जिन्दगी की वह तूफानी रात समाप्त नहीं होती, जब उसकी माँ उसे छोड़ कर गई थी। और आशा की किरणें कहीं नहीं दिखाई दे रही हैं, दुख का चक्र समाप्त नहीं हो रहा है, जिन्दगी के सारे रूप झूठ लगते हैं, दुःखद अनुभूतियाँ ही मनुष्य को हैं, यह सत्य है, गति की अखंडता ही सत्य है।

''दर्द और उदासी वह
सूने प्लेट फार्म सी
सब कुछ समेट
ट्रेन जिस पर से चली गई
× × ×
धूल-धूल धूसर सब
टूटी हुई देह सी टूटी फूटी बेंचें
लस्टम-पस्टम हारी थकी शाम
बेबस कच्ची सड़कें
लुटी पिटी भूखे भिखमंगों जैसी दुकान

१. साक्षी रहे वर्तमान, माथुर, पृ० २३-२५।

× × ×

अकथ उदासियाँ
देह पड़ी रह जाती, खोखले लिफाफे सी
गोफन से फेंके हुए पत्थर सी
जिन्दगी की तूफानी रात खत्म होती नहीं

× × ×

दिखता नहीं है कुछ
आँखें कहीं और हैं
टूटती नहीं है दर्द दुःख की घुमेर यह
झूठ सभी लगता है
सच है सिर्फ अन्धकार
गति की अखंडता"[1]

"रेल का पहिया" कविता पूर्ण रूप से कवि की निराशावादी प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। इस कविता में मुख्य बात है, आदमी की नौका जिन्दगी के अनिश्चित समुद्र में डाल दी गई हो, यह स्थिति उसी प्रकार से है, माता-पिता, परिवार का सुख, और स्थायित्व से टूटकर जीवन के एक अनिश्चित मार्ग पर कोई व्यक्ति चल पड़ा हो। जैसे किसी अथाह सागर की अज्ञात दिशा में लहरों पर किसी ने अपनी जीवन तरंगिणी छोड़ दी हो और चला जा रहा हो।

"मुझसे क्या पूछो हो रानी, मैं हूँ हाय सदा से हारा
पल-पल की सूनी बिछुड़न से खाली है इतिहास हमारा

× × ×

जाने कितनी अभी और है इस जीवन की दौड़ सखी री
क्या न कभी आ पायेगी बिसराम देश की मोड़ सखी री

× × ×

कितने छोड़ गये मुझको चढ़कर मेरी पलकों के रथ पर
मैं चलता ही चला हाय, अपने जीवन के सूने पथ पर।"[2]

प्रेयसी से प्रेम न पाने पर कवि अत्यधिक निराश हो जाता है। नये प्यार के बलिदान हो जाने पर कवि इतना अधिक हताश हो गया है कि उसे उल्लासवर्धक वस्तुएँ भी निस्सार प्रतीत होती हैं। प्यार के जिन स्वप्नों को वह भूल चुका है, उन्हें फिर से साकार करना उसके वश की बात नहीं है। वह जीवन जो प्रेम से वंचित होकर चिता बन गया था, उसे फिर से सुख-चाँदनी से हरा-भरा नहीं किया जा सकता। प्रणय के क्षेत्र में मिलने वाली असफलता ने कवि के जीवन की खुशियों को कुचल दिया है।

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ३६-३९।

जीवन में फिर से उल्लास और रंगीनी आना नितान्त असम्भव प्रतीत होता है—

"गरम भस्म माथे पर लिपटी
कैसे उसको चन्दन कर लूँ
प्याला जो भर गया ज़हर से
सुधा कहाँ से उसमें भर लूँ
कैसे उसको महल बना दूँ
धूल बन चुका है जो खण्डहर
चिता बने जीवन को आज
सुहाग-चाँदनी कैसे कर दूँ
कैसे हँसकर आशाओं के मरघट पर बिखराऊँ रोली
होली के छन्दों में कैसे दीपावली के बन्द बनाऊँ"[१]

(२) मानसिक और दैहिक तनाव

"नाश और निर्माण" की "टाइफाइड" नामक कविता में चित्रित क्लेश और मानसिक तनाव मध्यवर्ग का ही है। बाह्य और आन्तरिक तनाव के कारण इस वर्ग के लोगों का जीवन "कालिक मरीज" की तरह हो गया है, जो लाख कोशिश करने पर भी जहाँ है, वहाँ से आगे नहीं बढ़ पाता। अपने सीमित संसार में बार-बार हाथ पैर मारने पर भी उसके हाथ सफलता के स्थान पर ऊब, बेचैनी, आशंका तथा अनास्था ही हाथ लगती है। फलस्वरूप यह विश्वासहीन बन गया है—

"ऊब, घबराहट
बेचैनी, बोरियत
× × ×
अपने में लीन
किन्तु आत्मविश्वासहीन
तबियत है कहीं पर
दोष सभी रखता है
किस्मत के माथे पर"[२]

आर्थिक व सामाजिक वैषम्य के कारण मानव-जीवन में केवल दुख, दर्द, छटपटाहट व पीड़ा रह गई है। मानव की उच्च आकांक्षाएं, चिर संचित आशाएं, धूमिल होती जा रही हैं। उसका जीवन अधिकाधिक अभावमय हो रहा है—

"यह लाहें, यह तड़पन, कराह
यह पीड़ा, सिसकन, जलन, प्यास

१. मंजीर, माथुर, पृ० २८।
२. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० २२।

दुःख, दर्द, छटपटाहट, पुकार

× × ×

यह घूम रही है चिर आकुल
उफ, गरम उसासें जीवन की"[१]

"तैंतीसवीं वर्षगांठ" इस कविता में दुःख, दैन्य, तथा अभावों से भरे हुए जीवन की झाँकी कवि ने प्रस्तुत की है। भूख, बीमारी, गरीबी व गन्दगी के कारण जहाँ जिन्दगी कौड़ियों के मोल बिकती हो, वहाँ जन्मदिन की खुशी महत्वहीन है। विषमताओं को सहते-सहते आज मानव-जीवन मृत्यु से भारी हो गया है, जिसका चित्रण निम्नलिखित पंक्तियों में है—

"जन्मदिन की क्या खुशी होगी उन्हें
जिन्दगी है मृत्यु से भारी जिन्हें
भूख, बीमारी, गरीबी, गन्दगी
कौड़ियों के मोल बिकती जिन्दगी"[२]

"नाश और निर्माण" कविता संग्रह की "कौन थकान हरे जीवन की", माथुर जी की प्रसिद्ध कविता है। यह कविता दो खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड में अनजाने नवीन मार्ग पर चलने वाले कवि को मंजिल का मार्ग दर्शाने वाला कोई नहीं है, बिना पथ-प्रदर्शक के चलते-चलते उसकी शक्ति क्षीण हो गई है। उसके चारों ओर नैराश्यांधकार परिव्याप्त है। समस्त गौरव, वैभव नष्ट हो चुका है, जीने की मधुर आकांक्षा समाप्त हो गई है। कवि की मधु कल्पनायें समाप्त हो गई हैं। कवि का मधुर स्वर तेज और ओज, साथ ही जीवन की मधुर लालसाएँ नैराश्य में बदल गई हैं। चेतनता ह्रासोन्मुखी हो गई है। जिस प्रकार संगीत का स्वर कुछ समय तक ध्वनित होता रहता है, उसी प्रकार जीवन के निराश हो जाने से उसकी चेतना भी थोड़े ही समय की है, वह भी अपनी आखिरी साँसें ले रही है, उसमें कुछ भी करने की सामर्थ्य नहीं है। जिस प्रकार पतझड़ में वृक्ष का समग्र सौन्दर्य नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार शक्ति के अभाव में कवि की समस्त चेतना लुप्त होती जा रही है, मेरे जीवन में कोई आकर्षण नहीं रहा है।

अन्त में कवि कहता है कि मैंने लक्ष्य तक पहुँचने के लिये जो कल्पनाएँ की थीं, उनमें से कुछ में सफलता भी मिली, लेकिन आज वे सफलताएँ भी स्वप्नवत् प्रतीत होती हैं। उनमें कोई सार नहीं दिखाई देता, वे हमें शाश्वत आनंद न प्रदान कर सकीं। हमारे मिलन समय की मधुर स्मृतियाँ भी अब सपनों के समान ही प्रतीत होती हैं।

"कौन थकान हरे जीवन की।
बीत गया संगीत प्यार का,

१. मंजीर, माथुर, पृ० ८४।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ६२।

रूठ गई कविता भी मन की।
बंसी में अब नींद भरी है।
स्वर पर पीत सांझ उतरी है।
बुझती जाती गूंज आखिरी—
इस उदास वन-पथ के ऊपर
पतझर की छाया गहरी है,
अब सपनों में शेष रह गई,
सुधियाँ उस चन्दन के वन की।''[१]

"व्यक्तित्व का मध्यान्तर" इस कविता के अन्तर्गत कवि ने आयु का आधा भाग बीत जाने पर जीवन के मध्यान्तर के पश्चात् अपने भाव प्रस्तुत किये हैं। उसे अनुभव होता है जैसे जीवन के समस्त लक्ष्य खंडित हो गये हैं, सारी साधना उपलब्धि हीन हो गई है।

"सूरज के नक्र" दिन के लिये प्रयोग है। यहाँ अभिप्राय है, शेष जीवन के दिन उतार के ही रह गये हैं। प्रगति की तीव्रता थकती सी जान पड़ती है, जीवनी-शक्ति में शिथिलता आ गई है। "समय" शब्द जीवन की आस्था के लिये प्रयुक्त है, अर्थात् जीवन में अब थोड़े दिन ही शेष हैं।

दूसरे मुख्तक में जिन लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न आरम्भ हो चुका था, वे लक्ष्य अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं। उम्र अब समाप्ति को ओर है, हर एक मनुष्य किसी उद्देश्य को लेकर चलता है, वही जीवन की साधना है। किन्तु जीवन का अन्तिम समय समीप आने पर भी साधना पूर्ति की संभावना नहीं दिखाई पड़ती है। लेकिन फिर भी मन में अभी थोड़ा सा उत्साह, प्रयत्न करने की इच्छा शेष है।

"लो आ पहुँचा सूरज के नक्रों का उतार
रह गई अधूरी धूप उम्र के आंगन में
हो गया चढ़ावा मन्द, वर्ष-अंगार थके
कुछ फूल शेष रह गये समय के दामन में,
खंडित लक्ष्यों के बेकल साये ठहर गये
थक गये पराजित यत्नों के अनरुके चरण
मध्याह्न बिना आये पियराने लगी धूप
कुम्हलाने लगा उमर का सूरजमुखी बदन"[२]

"अधूरागीत" कविता में तीन खंड हैं। प्रथम खंड में विभिन्न प्रकार की विषम अवस्थाओं का चित्रण किया है। जीवन समाप्त होने वाला था, संत्रास, विपत्तियाँ आदि व्यापक थीं, मैं (कवि) मृत्यु के करीब पहुँच गया।

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ४५।
२. गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ७५।

द्वितीय खंड में विराटतत्व का चित्रण किया गया है, कवि स्वयं विराटतत्व के मार्ग का कच्चा निशान बताता है, जिसकी नियति समाप्त होना है। यद्यपि कवि अपूर्ण है, लेकिन विराटतत्व का एक अंग होने के कारण वह पूर्ण है। कवि अमर नहीं है, चिरजीवी नहीं है, अचिरजीवी है।

तृतीय खंड में कवि अत्यधिक तनावपूर्ण मुद्रा में आ जाता है, जब कोई महान् व्यक्ति समाप्त होता है, तब दुनिया उसे पहचानती है। उसी की अभिव्यक्ति यहाँ कवि ने की है। आदर्श मानव की कल्पना में कवि लगा हुआ है। "मैं" के माध्यम से मनुष्य की व्यंजना की गई है। कवि कहना चाहता है कि मैं हमेशा इतिहासों के पृष्ठों पर चलता रहूँगा, यद्यपि आज सहृदयता आदि अनुभूतियाँ समाप्त हो रही हैं। वास्तव में मानव की नियति है कि वह निरंतर गतिवान हो, परिस्थिति से अपेक्षित उसमें निष्ठुरता आदि संभव है।

> "मैं शुरू हुआ मिटने की सीमा-रेखा पर
> रोने में था आरंभ, किन्तु गीतों में मेरा अन्त हुआ---
> मैं एक पूर्णता के पथ का कच्चा निशान,
> अपनी अपूर्णता में पूरन,
> मैं एक अधूरी कथा
> ×   ×   ×
> जग ने मुझको मिटने पर ही है पहिचाना,
> वह चित्र न मुझ पर से उतरा,
> उसको ही पूरा करने में,
> मुझको भी पूर्ण न होने का बरदान मिला,
> मैं चलता आऊँगा इतिहासों के ऊपर
> यद्यपि पाषाण हुआ जाता"

"पतझर की एक दुपहर" मानसिक और दैहिक तनाव की दृष्टि से महत्वपूर्ण कविता है। कवि को उस समय अत्यधिक तनाव की अवस्था में से गुजरना पड़ता है, जब वह यह अनुभव करता है कि योग्यता का प्रतिहारकर अयोग्य व्यक्तियों को सम्मान मिलता है। संघर्ष करने वाला, परिश्रम करने वाला, जिन्दगी भर ठोकरें खाता रहता है। उसको इस तथाकथित बड़े लोगों की जबरदस्ती पूर्ण व्यवस्था का शिकार होकर भटकना पड़ता है। कर्मशील लोगों की यह भटकन देखकर अपने जीवंत होने पर भी कवि को विचार करना पड़ता है, और एक लम्बी प्रतीक्षा की तैयारी उसी तनाव के भाव को व्यक्त करने वाली है।

> "क्यों मुझे बनाया है
> कुल्हाड़ी हाथ लिये ओछे लोगों ने
> काट-काटकर

धरती से निकले मोटे पंजे-सा
बुच्ची कटी उँगलियों वाला
सपाट ठूँठ
　　क्या यह पूरी उम्र
　　बार-बार बदले हुए किराये के घरों सी
　　अपना हर्गिज कह न सकने वाले कामों में
　　कागजी तसले माँजने में
　　अयोग्यों के निर्णय की
　　जबरन प्रतीक्षा में
　　सिर ऊँचा रखने की सजाओं में
　　　　—सिर्फ बीत जायेगी
　　क्या हर पतझर की हवा
　　इस सारी खुराफात को
　　ऐसे ही हमेशा
　　बदस्तूर छोड़ जायेगी।''[1]

(२) यथार्थ तनाव

यथार्थ तनाव की दृष्टि से माथुर जी की कविता को दो शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) आर्थिक परिवेश

(ख) सामाजिक तनाव

(क) आर्थिक परिवेश

समाज में एक ओर ऐश्वर्य सम्पन्न व्यक्ति थे, तो दूसरी ओर भूख और बेकारी से तड़पते हुए मजदूर। अमीरी और गरीबी ने वर्ग-संघर्ष की भावना को जन्म दिया।

"आर्थिक दशा तंगी पर थी। निम्न मध्यवर्ग सबसे अधिक दयनीय था। रोज-मर्रा की छोटी-मोटी जरूरतें मन को चोट पहुँचाने लगी थीं। जो मन पहले बड़े-बड़े ऊँचे आदर्शों और सपनों के पंखों पर उड़ा करता था, उस पर छोटी-छोटी भौतिक बातों का बोझ बढ़ चला था। घर बाजार में बिकने को आ पड़ा था, दुकान रसोईघर को ग्रसने लगी थी। नैतिक दृष्टि से यह पतन का युग था।''[2]

द्वितीय विश्वयुद्ध, संसार-व्यापी मुद्रा स्फीति तथा बंगाल के अकाल ने देश की

---

१. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ३३-३५।

२. हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ, डा० नामवर सिंह, पृ० ४६।

स्थिति को और भी दयनीय बना दिया था। युद्ध की प्रगति के कारण देश के व्यापारी-वर्ग ने काले धन से अपना घर भर लिया, और कपड़ा, अनाज आदि आवश्यक वस्तुओं का अकारण अभाव हो गया। पैसा देने पर भी बाजार में चीजें उपलब्ध नहीं होती थीं। "चोरबाजारी, मुनाफाखोरी, आसमान को छूने लगी—घुसमरी फैली, चीजों के दाम इतने आश्चर्यजनक हो गये कि सुनकर विश्वास नहीं होता था।"[१]

इस प्रकार के वर्ग-वैषम्य और दयनीय स्थिति को देखकर माथुर जी द्रवित हो उठे। उस स्थिति का यथार्थ चित्रण उनकी निम्नलिखित पंक्तियों में हो जाता है—

"राजमार्ग पर एक सीध में सारी बत्ती,
लम्बी श्वेत लकीर बनाती—
जिसके नीचे दिखते
गोरे-गोरे दम्पती,
सुन्दरता का स्वर्ग—किन्तु
आँखों के नीचे यह श्यामलता
ड्रेसिंग टेबिल में देखी थी
मेरी छः पैसे की कीमत"[२]

"एसोसिएशन्स" कविता के अन्तर्गत माथुर जी ने जहाँ नागर प्रकृति का चित्रण किया है, वहाँ मदमस्त करने वाली चाँदनी रात, कार, मोटर, बंगलों आदि की भरपूर चर्चा करके धनी व्यक्तियों के वैभवपूर्ण जीवन की ओर भी संकेत किया है। जहाँ एक ओर सम्पन्न व्यक्तियों का ऐश्वर्यमय जीवन है, वहीं दूसरी ओर जीवन की कठिनाइयों तथा आर्थिक दारिद्र्य के फलस्वरूप मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन की प्रत्येक साँस हँसी उड़ाती हुई दृष्टिगत होती है।

"मंद चाँदनी रात, चाँदनी रात दूर तक,
हल्की सी मलमल में लिपटी।
× × ×
बंगला, मोटर कोच, रेडियो
रेशम की वह चमचम साड़ी
× × ×
क्यों न चाँदनी केवल महलों पर ही उपजी,
दूरी के ड्राइंग-रूमों पर,
खिड़की के रेशम पर्दों से
जिनकी रंगीनी की ज्योतित छाँह झलकती—
× × ×

१. नयी कविता सीमाएँ और संभावनाएँ, माथुर, पृ० ८३।
२. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० २७।

किन्तु यहाँ पर
जीवन की प्रत्येक साँस है हँसी उड़ाती''[1]

नीचे की दो पंक्तियों में कवि का भाव अधिक प्रखर रूप में सामने आया है, निम्न वर्ग के लिये जीवन की एक-एक साँस दूभर है, कष्टप्रद है।

(ख) सामाजिक तनाव

समाज के शोषित व तिरस्कृत लोगों के प्रति कवि की पूर्ण सहानुभूति है। किसानों, मजदूरों और इन सबसे बढ़कर मध्यवर्गीय क्लर्क के जीवन के अभावों व विषमताओं का चित्रण कवि के तनावपूर्ण जीवन का परिचायक है। "नाश और निर्माण" की "मशीन का पुर्जा" नामक कविता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस कविता में एक ओर उच्च वैभव का चित्रण है, तो दूसरी ओर अल्प आमदनी वाले "क्लर्क की दिनचर्या का चित्रण है, जिन्दगी की मिठास जिस क्लर्क के लिये समाप्त हो गई है। जीवन भावहीन मशीन बन गया है—

"शीत हुवा में ठंडे सात बजे हैं,
ठिठुरन से सूरज की गर्मी जमी हुई है,
सारा नगर लिहाफों में सिकुड़ा सोता है,
पर वह मजदूरी से कंपता उठ आया है
रफू किया उसका वह स्वेटर
तीन सर्दियाँ देख चुका है
× × ×
उसका जीवन भावहीन मशीन बन गया।
जाड़ों के दिन की मिठास
अब जहर हुई है''[2]

"शाम की धूप" कविता में भी सरकारी कर्मचारियों के अभावमय जीवन का एक अन्य चित्र कवि ने उतारा है। इनका जीवन इतना अभावमय तथा नाना क्लेशों से पूर्ण हो गया है कि दूध घी आदि वस्तुओं को बात तो दूर चीनी दाल-नमक आदि आवश्यक वस्तुएँ भी स्वप्नवत् हो गई हैं—

"दूध घी की यहाँ पै चर्चा क्या
अब न चीनी, न गुड़, न दाल-नमक
हो गया स्वप्न किरासिन का तेल
इनका अब ख्याल है इतिहास की बात''[3]

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ८६-८७।
२. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ४२-४३।
३. धूप के धान, माथुर, पृ० ३१।

ग्रीष्म ऋतु की सुनसान दोपहरी का चित्रण करता हुआ कवि जीवन के एकाकीपन की तुलना गरमी के सुनसान दिनों से करता है। जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु की दोपहरी काफी लम्बी होती है, उसी प्रकार जीवन का एकाकीपन भी अन्तहीन है। समस्त कविता कवि के तनाव का परिचायक है—

"थकी दुपहरी में पीपल पर
काग बोलता शून्य स्वरों में।
यह जीवन का एकाकीपन—
गरमी के सुनसान दिनों सा,
अन्तहीन दोपहरी डूबा
मन निश्चल है शुष्क वनों सा
ठहर गई हैं चीलें नभ में
ठहर गई हैं धूप छाँह भी"[1]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि माथुर जी के काव्य में संघर्ष और 'तनाव' की स्थिति व्यक्तिगत, मानसिक, दैहिक एवं यथार्थ रूप में विद्यमान है। "मशीन का पुर्जा" कविता में जहाँ समाज की विपन्नता का चित्रण है, वहीं दूसरी ओर "अँधेरी दुनिया" कविता में विफलताएँ और असवरहीनता है। इससे कवि परास्त नहीं होता, इन समस्त तनावों के बावजूद ये कविताएँ अदम्य आस्था से दीप्त हैं। ये तनाव के समस्त रूप उनके अन्त समय में होने वाले संघर्षों का स्पष्ट रूप रूपांकित करते हुए दिखाई देते हैं। इन तनावों में कवि की कविता टूटती हुई नहीं, अपितु सुसंबद्ध चेतना की गहरी पहचान और जुझारूपन को प्रकट करती है।

(ख) तनाव का समाधान

सर्जनात्मक चेतना का धनी कोई भी कवि, साहित्यकार क्यों न हो, वह किसी एक निश्चित बिन्दु की स्थापना के बिना रचना को मूर्त नहीं बना सकता। मूर्तवान जीवन्त इकाई के लिए वह अपने तनाव की गहरी पहचान कराते समय कुछ संभावनाओं की ओर भी संकेत अवश्य करता है। यह सत्य है कि वह राजनीतिक रंगमंचीय नेता की भाँति लुभावनी संकल्पनाओं की गुदगुदाहट में कोई घोषणा-पत्र प्रस्तुत नहीं करता अपितु उन संभावनाओं की ओर संकेत करता है, जो संभावनाएँ व्यक्ति की सामर्थ्य को परिपुष्ट कर उन तनावों से मुक्त कराने का प्रयत्न करती हैं, जिनकी उसे आवश्यकता है।

समाधान की दृष्टि, प्रतीकों, बिम्बों, और उलझन भरे द्वन्द्व में व्यक्त करने की मनोवृत्ति माथुर जी की कविताओं में नहीं है। यह सपाट बयानी स्पष्ट और मन को आस्था के भाव से जोड़ने वाली अपनी अनुभूति को व्यक्त करते हैं।

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ३२।

कवि को विश्वास है कि परिश्रम द्वारा मनुष्य हर अज्ञात रहस्य को, हर समस्या को हल कर सकता है। मेहनत के द्वारा वह हर दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता है। श्रम में वह शक्ति है, जो उसकी हर कठिनाई को रौंदती हुई मनुष्य में आशा का संचार करती है। यह परिश्रम के द्वारा होने वाली आस्था का बोध उनकी कविताओं में मिलता है। परिश्रम से नवीन आशा हर धड़कन के समान उन्हें जीवन देती हुई प्रतीत होती है। इस मेहनत में छिपा हुआ उल्लास जीवन की सफलता का सच्चा रहस्य है, और माथुर जी की कविता की तनाव की इतिश्री "ये नये साल की साँझ नई" नामक कविता में होती हुई दिखाई देती है।

"ये नये साल की है साँझ नई
एक और वर्ष की किरन उजल के डूब गई
उठ रहा है वह नया दूज का चाँद
दुधिया चाँद श्वेत हँसली सा
लालिमा साँझ की सिमट सारी
जा रही सँवलते मैदानों से
जैसे घर लौटती किसान बहू
काम दिन भर का करके खेतों से
लाल मुँह हो रहा है मेहनत से"[1]

यह समस्त कविता तीन खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड स्थिति वाचक है, द्वितीय में स्थिति-पूर्व का वातावरण है, तृतीय में स्थिति का स्पष्टीकरण किया गया है। लाल मुँह कवि के निराशा और घबराहट का संकेत नहीं, अपितु श्रम की गरिमा का परिणाम है, जो उसे एक निश्चित दिशा का संकेत करता हुआ परिलक्षित होता है।

कवि जहाँ श्रम के द्वारा मनुष्य के तनाव को मुक्त करने की अभिव्यंजना व्यक्त करता है, वहीं उसका विश्वास है कि जब तक निरन्तर परिश्रम नहीं होगा, तब तक मानव अपने निर्धारित लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सकता। इस निरन्तरता में जो विकास की तीव्रता है, जहाँ कवि की मानसिकता में यह भावना है, वहीं मानव के परिवर्तन में विकास की तीव्रता और गतिशीलता उसकी समस्याओं के समाधान में सहायक बनी हुई दिखाई देती है। "पहिये" कविता में पहिये का विकासवादी स्वर मात्र विकास ही नहीं, अपितु निरन्तर गतिशीलता का भाव भी प्रकट करता है—

ये घूम रहे हैं जीवन के पहिये महान
नभ में ये सूरज चाँद सितारों के पहिये।
× × ×
ये शक्तिवान मेहनत की बाँहों के प्रतीक
उन रूखे भारी हाथों के गतिमान चित्र

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ८०।

गढ़ते जाते हैं जो सामाजिक मूरत को
जीवन की मिट्टी को सँवार
सच्चे कर देते हैं सपने
लेते हैं स्वर्ग उतार विचारों के नभ से
× × ×
पर परिवर्तन का तेज चक्र बढ़ता आगे
है धार काटती नागपाश
बस इसीलिए होगा विनाश
मानव का मानव पर
दुःख दोहन, अनाचार
इसीलिये कि रुकता नहीं कभी गति का पहिया
अविरल चलता विकास का क्रम
वह पास लिये आता है मनुज समाज नया
जब दुःख की सत्ता मर जायगी
पीले बासी फूलों सी"[1]

परिश्रम और निरन्तर गतिशीलता के पश्चात् कवि में विश्वास की भावना सबल दिखाई देती है, विश्वास के धरातल पर खड़ा होकर कवि परिश्रम के हाथों से हर असंभव बात को संभव बना देने की सामर्थ्य रखता है। किसी भी समस्या का समाधान मनुष्य की दृढ़तर विश्वास की भावना पर अवलम्बित होता है। इसलिये अहर्निश संभावनाओं के बल पर संकल्प को तराशने की आवश्यकता है। "आग और फूल" कविता में यही विश्वास की भावना आशा का संचार करते हुए सुनहरे भविष्य का अवगाहन करती हुई दिखाई देती है—

"निकलती ही आ रहीं घड़ियाँ सुनहली
आयु के सबसे अधिक उज्ज्वल चरण की
ग्रीष्म के उस फूल-सी
जिसकी नयी केसर हवा ने सोख ली
× × ×
वह भूमि किन्तु न मिट सकी
आगत फसल की राह में
वह फूल मुरझाया नहीं
ऋतु रंग लाने के अमर विश्वास में
वह आग की पीली शिखा
उठती रही जलती रही

१. धूप के धान, माथुर, पृ० १७३।

आलोक कन तम से बचा
वह अग्नि बीजों को सतत बोलती रही
फिर से नया सूरज उगाने के लिये''[1]

जुझारूपन की प्रवृत्ति भी माथुर जी की कविता में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। उनका विश्वास है कि किसी भी प्रकार की समस्या क्यों न हो, लेकिन यदि इकाई की तड़प गहरी है, और परिस्थितियों से जूझने का आत्मविश्वास है तो हर प्रकार की जूझने की परिस्थिति और संघर्ष कटुता उत्पन्न करते हुए मार्ग से हट जाते हैं। ''प्रौढ़ रोमांस'' कविता में यही चित्र है—

''और क्योंकि हमने भुजबल से
अपना मार्ग प्रशस्त बनाया
दुःखों से कर युद्ध
परिस्थितियों से लड़कर
और जूझकर भारी से भारी अन्धड़ से।

कवि संघर्ष में पलायन करने की प्रवृत्ति नहीं रखता, उसका जुझारूपन संघर्ष के साथ जूझने का और उसी संघर्ष को विषाद का नहीं अपितु आनन्द का भाव मानने के लिये संकेत करता है—

''किन्तु जिन्दगी की मिठास का रस लेने को
हमने कटुता से खुलकर संघर्ष किया है।''[2]

इस संघर्ष की मूल प्रवृत्ति के पीछे कटुता का विष बोना नहीं, अपितु अभीष्ट का अमृत लाना है। यह अमृत की संकल्पना आशावादी जीवन का संकेत है, जिसे कवि समाधान के रूप में अभिव्यक्त करता है।

माथुर जी की कविताओं में जिजीविषा का स्वर प्रमुख रूप से उभरा है, यह जिजीविषा परिस्थितियों में संघर्ष की प्रेरणा देती है, निराशा में आस्था का संचार करती है। परिस्थिति से पलायन करना नहीं, अपितु उससे संघर्ष करने के लिए कवि तत्पर है। ''रूठ गये वरदान सभी'' कविता में कवि ने इसी जिजीविषा की भावना से अपने अरमानों को जीवित करने का संकल्प परिश्रम के रथ पर खड़े होकर किया है।

रूठ गये वरदान सभी फिर भी मैं मीठे गान लिये हूँ,
टूट गया मन्दिर तो क्या पूजा के अरमान लिये हूँ।
पूरी निकल गयी सूली,
तारे हैं अभी और मिटने को—
एक बार खोकर भी मैं फिर से खोने को प्राण लिये हूँ''[3]

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ५१।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० २६।
३. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० २८।

वर्तमान परिवेश में कवि निराश और हताश नहीं है, अपितु उसने संघर्ष करने का, आशावान होने का संकल्प जगाया है। उसका खण्डहरों में फिर से भवन बनाने का संकल्प वायवी संकल्पना नहीं है, अपितु जिजीविषा की गहराई में गोते लगाकर उसे व्यक्त किया है।

गिरिजा कुमार माथुर की कविताओं के इस संकलन से यह स्पष्ट होता है कि उनकी कविताओं में समाधान के लिये निरन्तर परिश्रम, संघर्ष से पलायन न करना, आस्था और विश्वास की दृढ़ता, जिजीविषा और आशावादी दृष्टि दिखाई देते हैं। आज की समस्याओं के समाधान के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

पंचम अध्याय

कवि माथुर के काव्य में अप्रस्तुत योजना का स्वरूप

काव्य में अप्रस्तुत का उपयोग भाव को बोधगम्य तथा अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये होता है। अप्रस्तुत के प्रयोग से अभिव्यक्ति अधिक ग्राह्य हो जाती है, तथा उसमें मूर्तिमत्ता आ जाती है। यह विधान किसी न किसी प्रकार के साम्य पर आधारित रहता है। साम्य तीन प्रकार का होता है—रूप-साम्य (सादृश्य), धर्म-साम्य (साधर्म्य) तथा प्रभावसाम्य।

"रचयिता कभी-कभी अप्रस्तुत विधान के बल पर भी चमत्कार उत्पन्न करता है। अप्रस्तुत विधान के अन्तर्गत प्रायः उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्य मूलक अलंकार तो गृहीत किये जा सकते हैं, साथ ही, ऐसे श्लिष्ट प्रयोग भी लिये जा सकते हैं, जो एक से अधिक अर्थ का द्योतन करते हैं, तथा साथ ही, ऐसे प्रयोग भी, जो कि कोष सम्मत न होकर प्रतीकात्मक होते हैं, जैसे सुख के लिये प्रातः शब्द का, दुःख के लिये निशा शब्द का प्रयोग करना आदि।"[1]

नयी कविता में शिल्पगत नवीनता का आग्रह प्रबल है। नवीन अनुभूतियों व नवीन भावबोध के प्रस्तुतीकरण में परम्परागृहीत अप्रस्तुतों को अनुपयुक्त समझ कर और नये-नये अप्रस्तुतों (उपमानों) की योजना की। इस दृष्टि से कवि माथुर ने भी सार्थकता दिखाई है। सूक्ष्म भाव-संवेदनों को अभिव्यंजित करने के लिये उन्होंने नये-नये तथा संश्लिष्ट उपमानों की योजना की है, जिसका वर्णन इस अध्याय के तीसरे शीर्षक "सादृश्य" के अन्तर्गत किया गया है।

इस अध्याय के अन्य शीर्षक हैं—"बिम्ब योजना" यह नई कविता की महत्व-पूर्ण उपलब्धि है, क्योंकि इसका समस्त बाह्य रूपाकार, बिम्ब योजना पर आधारित है। "प्रतीक विधान" के निर्माण की ओर भी प्रायः समस्त कवियों की चेतना सजग है। इस दृष्टि से कवि माथुर भी पूर्णतः सफल हुए हैं। "नव्य प्रयोग" की पुष्टि कवि की प्रसिद्ध कविताओं के पढ़ने से हो जाती है, जिसका वर्णन इस अध्याय के अन्त में है।

---

१. भारतीय शैलीविज्ञान, डा० सत्यदेव चौधरी, पृ० २७३।

(क) बिम्ब विधान

"चेतना के स्तर पर कवि, जीवन की घटनाओं और विषयवस्तु को बिम्ब रूप में ही ग्रहण करता है। साहित्य में बिम्ब का अर्थ कलाकार की उस क्षमता से है, जिसके आधार पर वह अतीत की घटनाओं और विषयवस्तु को रंग, ध्वनि, गति, आकार-प्रकार सहित देशकाल, परिस्थिति को ध्यान में रखकर शब्द-चित्रों में वर्णित कर देता है।"[1]

बिम्ब मनुष्य के विभिन्न ऐन्द्रिय संवेदन के अनुभव पर आधारित है। किसी वस्तु अथवा घटना को देखने पर उसका जो चित्र मन पर अंकित हो जाय, उस मानस-चित्र को रूपक आदि की सहायता से अभिव्यक्त करना बिम्ब कहलाता है। बिम्ब योजना नई कविता की महत्वपूर्ण उपलब्धि है, क्योंकि इसका समस्त बाह्य रूपाकार बिम्ब योजना पर आधारित है। बिम्बों का विषयवस्तु से घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। इसी के कारण काव्य में स्पष्टता, संक्षिप्तता व चित्रात्मकता का समावेश होता है।

"बिम्ब अंग्रेजी शब्द "इमेज" का पर्याय है। हिन्दी आलोचना में शुक्ल जी के द्वारा सर्वप्रथम इसका प्रयोग हुआ और काव्य में प्राकृतिक दृश्य के अन्तर्गत इसकी विवेचना की गई। हिन्दी में सर्वप्रथम यह रूप विधान और चित्रविधान की समकक्षता की कोटि का माना गया। रूप और चित्र के लिये नया शब्द ग्रहण हुआ बिम्ब।"[2]

बिम्ब-विधान की विभिन्न पद्धतियाँ

माथुर जी की कविता का बिम्ब-विधान परम्परावादी बिम्ब विधान से अलग है, इनकी कविता की जीवन-दृष्टि अलग है, और इनकी काव्य-मान्यताएं भिन्न हैं। उन्होंने मौलिक काव्य-सिद्धान्तों का प्रस्थापन किया है। माथुर जी के काव्य में निम्न पद्धतियाँ निर्धारित कर सकते हैं।

(१) बाह्य उपकरण मूली बिम्ब विधान
(२) ऐन्द्रिय बिम्ब
(३) विषय-वस्तु के आधार पर बिम्ब

(१) बाह्य उपकरण मूली बिम्ब विधान

इस शीर्षक के अन्तर्गत निम्नलिखित बिम्ब उल्लेखनीय हैं—

(क) रंगों द्वारा

प्रयोगवादी कवियों ने बिम्ब की सृष्टि में रंग का अत्यधिक प्रयोग किया है। माथुर जी ने रंगों की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा है कि, "वातावरण-चित्रण के

---

१. वर्ड आफ इमेजरी, स्टेपन जे, ब्राउन, पृ० १२।
२. रस मीमांसा, आचार्य शुक्ल, पृ० २५२।

डिटेल में मैंने रंगों का आधार विशेष रूप से रखा है, किन्तु मैं चित्र को सदा हल्के रंगों की छाँहों के आवरण में लिपटा पसन्द करता हूँ। क्योंकि यथार्थ चित्रण के सभी डिटेल मैं कला की दूरी से देखता रहा हूँ। मेरा यह विश्वास है कि अत्यधिक गहरे रंगों का प्रयोग कला में प्राचीनता (मेडीकल ट्रेट) का द्योतक है। क्लासिकल विषयों पर गंभीर शैली में लिखी कविताओं में मैंने गहरे रंग प्राचीनता लाने के लिये ही रक्खे हैं।"[1]

अतः हल्के रंगों द्वारा ही इन कवियों ने बिम्ब उभारने का प्रयत्न किया है। देखिये—

> "आज है केसर रंग रंगे बन,
> रंजित शाम भी फागुन की खिली पीली कली-सी,
> केसर के वसनों में छिपा तन,
> सोने की छाँह सा,
> बोलती आँखों में
> पहिले बसन्त के फूल का रंग है।
> गोरे कपोलों पै हौले से आ जाती,
> पहिले ही पहिले के,
> रंगीन चुम्बन की सी ललाई"[2]

वन को केसर के रंग से रँगा एवं शाम को खिली पीली कली कहकर कवि ने वन-सुषमा एवं वातावरण की रंगीनी को तो बिम्बित किया ही है, साथ ही साथ कली से साहश्य स्थापित करके शाम की सुखदता एवं वातावरण की कोमलता को भी व्यंजित कर दिया है। अन्य पंक्तियों में कली पर नायिका का आरोप कर उसके वस्त्रों, उसके कांतिमान शरीर एवं उसकी लजालु प्रकृति को भी व्यंजित कर दिया है।

(ख) अलंकृत बिम्ब

इस बिम्ब में अनुभूतियों की अपेक्षा अलंकरण की ही प्रधानता होती है अलंकारों की योजना से बिम्बों को अनुपम सौष्ठव प्रदान किया है। प्रिया के रूप-सौन्दर्य का चित्रण कवि ने कलात्मक ढंग से इस प्रकार किया है—

> "देह कुसुमित मृणाल
> जैसे गेहूँ की बाल
> जैसे उनकोहे बारों से
> रोमिल रसाल"[3]
>
> ×   ×   ×

१. गिरिजा कुमार माथुर, तारसप्तक, वक्तव्य, पृ० १२७।
२. गिरिजा कुमार माथुर, तारसप्तक, पृ० १२७।
३. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ५३।

"मैं वैसा का वैसा ही रह गया सोचता
पिछली बातें
दूज-कोर-से उस टुकड़े पर
तिरने लगीं तुम्हारी सब लज्जित तस्वीरें
सेज सुनहली
कसे हुए बन्धन में चूड़ी का झर जाना।
निकल गयीं सपने जैसी वे मीठी रातें
याद दिलाने रहा सुहाग-भरा यह टुकड़ा"[1]

इस प्रकार रंग, रेखाओं, एवं अलंकारों के द्वारा प्रयोगवादी कवियों ने सुन्दर बिम्ब-विधान किया है। रंग एवं रेखाओं का बिम्बों की दृश्यता में विशेष योगदान है।

(ग) मूर्त का अमूर्त बिम्ब विधान

मूर्त पदार्थों के लिये अमूर्त उपमान की स्थापना कर प्रयोगवादी कवियों ने मूर्त के अमूर्त बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। मूर्तता के अभाव में इस प्रकार के बिम्ब धुँधले एवं अस्पष्ट ही रहते हैं। माथुर जी के काव्य में ऐसे अनेकों बिम्ब प्रस्तुत किए जा सकते हैं। एक उदाहरण देखिए—

"कुचले हुए मरे मन-सा है मौन नगर भी,
मजदूरों का दूरी से रुकता स्वर आता"[2]

नगर चहल-पहल का प्रतीक है, लेकिन वह मौन है, इसकी मौनता को कवि ने कुचले हुए मरे मन से बिम्बित किया है। जैसे-कुचले मन की गति रुक जाती है, वैसे ही नगर की भी गति रुक गयी है। हाँ बिम्ब कुछ स्पष्ट नहीं हो पाता, क्योंकि "मरा मन" दृश्य पदार्थ नहीं है।

"जिनसे अब रोज साँझ कुहरा निकलता था,
प्यासे सपनों की मँडराती हुई छाँह-सा"[3]

कुहरा दृश्य पदार्थ है, लेकिन उसका प्यासे सपनों की छाँह से साहश्य स्थापित कर, उसको अमूर्त रूप देकर अस्पष्ट एवं धुँधले बिम्ब का ही निर्माण कहा जायगा।

(२) ऐन्द्रिय बिम्ब

माथुर जी के काव्य-बिम्बों को हम इन्द्रियों के आधार पर पाँच वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। बिम्ब का मुख्य तत्व ऐन्द्रिय संवेदन है। डा० रामविलास शर्मा ने

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ४।
२. माथुर, तारसप्तक, पृ० १३३।
३. माथुर, तारसप्तक, पृ० १३२।

स्पष्ट शब्दों में कहा है "मूर्त विधान वही सार्थक है जो भावों से अनुप्राणित हो, जिसमें सहज इन्द्रिय बोध का निखार हो।"[1]

(क) नेत्र-दृश्य बिम्ब
(ख) कान-श्रवण बिम्ब
(ग) त्वचा-स्पर्श बिम्ब
(घ) मिश्रित बिम्ब

(क) दृश्य-बिम्ब

दृश्य-चित्रों के प्रभाव केवल हृदय पक्ष को ही आन्दोलित नहीं करते, अपितु मानस-चित्रों की भी सृष्टि करते हैं। चाक्षुण बिम्ब जितने अधिक भास्वर एवं प्रांजल होंगे, उनका मानस-चेतना पर उतना ही गहरा प्रभाव पड़ेगा।

"सूरजमुखी हुआ दिन छूकर
मिट्टी लाल पठार की
सांझ पहनती दिन डूबे
फरिया सलमों के तार की"[2]

जंगल, खेत, मिट्टी और रात का कालापन, धूप और फूलों के उजलेपन से गाँव का दृश्य सप्राण हो उठा है। पठार की लाल मिट्टी को छूकर दिन का सूरजमुखी होना, कितना सच्चा बिम्ब है। और दिनांत की लाल वर्ण की किरणों के तार वाली फरिया (चुन्नी) को पहनकर सन्ध्या को नवोढ़ा नायिका के रूप में चित्रित किया गया है।

"रुक-रुक कर जाती हुई रात का
अन्तिम छाँहों-भरा प्रहर है
श्वेत धुएं से पतले नभ में
दूर साँवरें पड़े हुए सोने-से तार
जगी हुई भारी पलकों से पहरा देते
नींद भरी मन्दी बयार चलती है
वर्षा-भीगा नगर
भोर के सपने देख रहा है अब भी"[3]

सफेद पतले धुएं सदृश आकाश, साँवरे पड़े तारे, मन्द बयार एवं राजपथों पर जलती हुई रोशनी के थक जाने आदि से कवि ने रात्रि के अन्तिम प्रहर को नेत्रों के समक्ष मूर्तित किया है। जो तारे रात्रि भर सोने की तरह जगमग थे, अब वे कुछ-कुछ प्रकाश हो जाने के कारण धुंधले हो गए हैं, जो ऐसे लगते हैं मानो उनकी पलकें रात-

---

१. रामविलास शर्मा, तारसप्तक, पुनश्च, पृ० २६८।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ४२।
३. गिरिजा कुमार माथुर, तारसप्तक, पृ० १२८।

भर जागने से भारी हो गयी हैं। यहाँ भी कवि ने बिम्ब को रंगों के माध्यम से नेत्रग्राही बनाया है, तथा तारों का मानवीकरण भी कर दिया है।

"कातिक का रसवान महीना
धरती फूली-फली
ठण्डी मिट्टी पर खिल आई
दीपक सुमन दिवाली
गृह-लक्ष्मी सी साँझ खड़ी है
पहिन किरन तन वाली
जला दीप से दीप
चमक से भरी धरी की थाली"[1]

कातिक मास की धाम का चित्रण करने के लिये कवि ने अनेक लघु बिम्बों की नियोजना द्वारा दीपों से जगमगाती धरती का पूर्ण बिम्ब चित्रित किया है।

"दिश दिशाएँ, काल, लोक-सीमा से आगे,
यह त्रिमूर्ति चलती जाती मन के फूलों पर,
अगले श्यामल गौर चरण से पावन करती,
वर्षों, सदियों, युगों-युगों के इतिहासों को"[2]

यहाँ पर चलती जाती एवं पावन करती क्रियाओं से ही नेत्रों के समक्ष जाते हुए व्यक्ति की मूर्ति प्रस्तुत हो जाती है। इसके अतिरिक्त श्यामल और गौर रंग तो व्यक्ति विशेष को ही नेत्रों के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। जाती हुई त्रिमूर्ति में अब श्यामल चरण राम के प्रतीक एवं गौर चरण लक्ष्मण के प्रतीक होने के कारण उनके चलने का क्रम भी प्रत्यक्ष हो जाता है।

(ख) श्रवण बिम्ब

श्रवण बिम्ब का सम्बन्ध श्रवणेन्द्रिय से होता है। ऐसे बिम्बों में सूक्ष्म ध्वनियों व नाद-प्रभावों को शब्द-बद्ध किया जाता है। संगीत का ज्ञान होने के कारण ध्वनियों की सूक्ष्मताओं को प्रस्तुत करने में माथुर जी अधिक सफल रहे हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में निर्जन स्थान में गूंजनेवाली झींगुरों की झंकार के लिये झाँझ के नाद का कवि ने प्रयोग किया है—

"सनसनाती साँझ सूनी
वायु का कठुला खनकता
झींगुरों की झंझरी पर

1. धूप के धान, गिरिजा कुमार माथुर, पृ० 42।
2. गिरिजा कुमार माथुर, तारसप्तक, पृ० 141।

झांझ सा बीहड़ झनकता''[१]

× × ×

''धुन-धुन करते मैदानों में-से होकर
मेल जायगी, निज लम्बी-लम्बी तेजी से
प्रतिदिन की ही भाँति आज भी''[२]

हवा से भरे खुले मैदानों में से जब वेग से रेलगाड़ी गुजरती है तो हवा के टकराव से उत्पन्न ध्वनि को ''स'' ''न'' व्यंजन एवं ''ऊ'' स्वर की आवृत्ति द्वारा कर्ण संवेद्य बनाकर उसका बिम्ब प्रस्तुत किया है।

(ग) स्पर्श बिम्ब

स्पर्श बिम्ब का बोध स्पर्श करने वाली वस्तु के आकार और उसकी प्रकृति पर निर्भर होता है। बिम्बों का यह प्रभाव किसी अंग विशेष द्वारा ही अनुभव किया जाता है। माथुर जी की एक कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है—

''सेमल की गरमीली हल्की रुई समान
जाड़ों की धूप खिली नीले आसमान में
रूखे पतझर-भरे जंगल के टीलों पर
काँप कर चलती समीर हेमन्त की
लम्बी लहर-सी''[३]

जाड़ों की धूप एवं सेमल की हल्की रुई दोनों में ही स्पर्श का हल्का-हल्का ताप है। जाड़ों की धूप में सेमल की रुई में स्पर्श की सुखदता विद्यमान है।

रनिवासों की नंगी बाँहों-सी रंगीनी
वह रेशमी मिठास मिलन के प्रथम दिनों की....
फीकी पड़ती गई अचानक''[४]

कवि ने अपने प्रेम-मिलन के प्रारम्भिक दिनों की सुखदता को रेशम के स्पर्श से व्यक्त किया है। रेशम में स्पर्श की कोमलता एवं स्निग्धता होती है। इस प्रकार कवि ने रेशम की स्पार्शिक अनुभूति द्वारा अपने रोमानी दिनों के सुख स्पर्श को अभिव्यक्त किया है।

(घ) स्वाद परक बिम्ब

इस प्रकार के बिम्ब माथुर जी की कविताओं में कम मात्रा में मिलते हैं। एक

---

१. गिरिजा कुमार माथुर, धूप के धान, पृ० ८५।
२. गिरिजा कुमार माथुर, तारसप्तक, पृ० १३८।
३. गिरिजा कुमार माथुर, तारसप्तक, पृ० १२२।
४. गिरिजा कुमार माथुर, तारसप्तक, पृ० १५६।

उदाहरण द्रष्टव्य है—

"भीगी मिसरी सी बरसाती चाँदनी"[१]

भीगी मिसरी के प्रयोग से आर्द्रता के साथ ही एक मिठास की भी अनुभूति इस बिम्ब से होती है।

(३) विषयवस्तु के आधार पर

(क) प्राकृतिक बिम्ब

कवि ने प्राकृतिक दृश्यों को भी बिम्बों में उतारा है। "सावन की रात" के वातावरण का बिम्ब कितना रोचक और स्वाभाविक है—

"नीली बिजली मेघों वाली
झींगुर की गुंजार
धुंधभरा सावन सुनसान
हवा लहरियों वार
घन-घुमड़न भुज बन्धन के उन्माद सी
बढ़ती आती रात तुम्हारी याद सी"[२]

इस बिम्ब के निर्माण में स्वर एवं ध्वनि आदि की योजना का अपूर्व योग है। अन्तिम पंक्ति में प्रिया की सुधि ने स्मृति पटल पर बिम्ब की अमिट छाप लगा दी है।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में घुसते हुए चन्द्रमा का बिम्ब प्रयोगवादी कवियों को प्रिय रहा है—

"बुझी रात का भी अँधेरी पहर नहीं उतरा है,
दूरों के रेखा छाँहों से पेड़ों ऊपर
ठण्डा-ठण्डा चाँद ठिठककर मन्दा होता
नभ की लम्बी साया दूरी तक पसरी है।"[३]

"क्वांर की सूनी दोपहरी" का बिम्ब निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत हुआ है—

"क्वांर की सूनी दुपहरी
श्वेत गरीमीले, श्वे से बादलों में,
तेज सूरज निकलता, फिर डूब जाता
घरों में सुनसान आलस ऊँघता है"[४]

घरों में सुनसान आलस के ऊँघने से, थकी राहों से, सूनी गली आदि के वर्णन

---

१. गिरिजा कुमार माथुर, नाश और निर्माण, पृ० ७३।
२. गिरिजा कुमार माथुर, धूप के धान, पृ० १०६।
३. गिरिजा कुमार माथुर, तारसप्तक, पृ० १२८।
४. गिरिजा कुमार माथुर, तारसप्तक, पृ० १३५।

से गिरिजाकुमार माथुर ने दोपहरी के अत्यधिक ताप को बिम्बित किया है, क्योंकि गर्मी से व्याकुल मनुष्य दोपहरी में घरों से बाहर नहीं निकलते।

(ख) पौराणिक बिम्ब

माथुर जी की दृष्टि पुराणों पर भी पड़ी है। यत्र-तत्र पौराणिक तथ्यों को उन्होंने अपने बिम्बों द्वारा प्रकट किया है—

"किस राधा का हल्दी सा मुख इस उदास चन्दा में आया"[१]

(ग) ऐतिहासिक बिम्ब

पौराणिक बिम्बों के समान ही ऐतिहासिक बिम्बों की संख्या भी अत्यधिक न्यून है।

"बहु रेशमी मिठास मिलन के प्रथम दिनों की
फीकी पड़ती गयी अचानक
जाने कैसे मिटे नयन-डोरों के बन्धन
मोह-पाश रोमान, प्यार के
गोरा के सोते मुख की तस्वीर सलौनी
गौतम बनने के पहले किस तरह मिटी थी,
तीस वर्ष तक रखी राजमदिरा की लाली"[२]

उपर्युक्त पंक्तियाँ बुद्ध भगवान के राजसी ठाठ एवं पारिवारिक रोमानी वातावरण को छोड़कर जाने को व्यक्त करती हैं। निर्वाण प्राप्ति के बाद वे सिद्धार्थ से गौतम बुद्ध बन गये थे। इस ऐतिहासिक घटना का बहुत ही सुन्दर बिम्ब बन पड़ा है।

(घ) प्रणय व्यापार संबंधी बिम्ब

दैनिक जीवन के व्यापारों से ग्रहण किये गये दूसरे प्रकार के ये बिम्ब हैं, जो प्रिय और प्रिया की प्रणय-चेष्टाओं को व्यक्त करते हैं। प्रणय-व्यापारों की शारीरिक चेष्टाओं और भावदशाओं दोनों के मूर्तन का प्रयास इस प्रकार के बिम्ब-विधान में उपलब्ध होता है। विदाई की संध्या में नायिका के नेत्रों की स्थिति का बिम्ब द्रष्टव्य है—

"एक विदाई की संध्या में
छोड़ चाँदनी सी वे आँखें
आँसू रुकी मचलती आँखें"[३]

---

१. गिरिजा कुमार माथुर, नाश और निर्माण, पृ० ७४।
२. गिरिजा कुमार माथुर, तारसप्तक, पृ० १४६-४७।
३. गिरिजा कुमार माथुर, तारसप्तक, पृ० १३३।

प्रेमी से बिछोह के समय नायिका अश्रुध के कारण आँसू रोके हुए हैं लेकिन उसके हृदय की गति को चंचल क्षेत्र व्यक्त कर रहे हैं।

सावन के मास, एवं पुरवाई हवा के चलने पर प्रेमियों की विचित्र ही स्थिति हो जाती है। प्रणय की सभी पूर्व-स्मृतियाँ रह रहकर प्रेमी प्रेमिका के मन को चंचल करती है। माथुर जी के शब्दों में एक ऐसा बिम्ब देखिए —

"सील भरी फुहार-डूबी चलती पुरवाई
बिछुड़न की रातों की ठण्डी-ठण्डी करवी
खोये-खोये जुड़े हुये खाली कमरे में
गूँज रहो पिछले रंगीन मिलन की यादें
नींद भरे आलिंगन में चूड़ी की खिलखन
मीठे अधरों की वे धीमी-धीमी बातें"[1]

एक अन्य उदाहरण जिसमें मिलन की स्थिति का अंकन है—

"जीवन में फिर लौटी मिठास है
गीत की आखिरी मीठी लकीर सी
प्यार भी डूबेगा गोरी सी बाँहों में
ओठों में, आँखों में
फूलों में, डूबे ज्यों
फूल की रेशमी-रेशमी छाँहें"[2]

प्रणय सम्बन्धी अनेक कोमल व मार्मिक अनुभूतियों का सफलतापूर्वक चित्रण माथुर जी के काव्य में उपलब्ध होता है। एक अत्यन्त सूक्ष्म मन स्थिति का बिम्ब देखिए—

"बोलते में
मुस्कुराहट की कनी
रह गई पड़कर
नहीं निकली अनी
बेल से
पल्ला जो उँगली पर कसा
मन लिपटकर रह गया
छूटा नहीं"[3]

लघु बिम्बों की रचना करने में भी कवि ने प्रतिभा का परिचय दिया है। एक-एक पंक्ति में बिम्ब के प्रयोग से चमत्कार आ गया है—

1. गिरिजा कुमार माथुर, तारसप्तक, पृ० 136।
2. गिरिजा कुमार माथुर, नाश और निर्माण, पृ० 119।
3. गिरिजा कुमार माथुर, शिलापंख चमकीले, पृ० 51।

"जीवन की ज्वाल भरी जलती मशाल।" इसमें जलती मशाल का बिम्ब कितना सशक्त है।

कवि के बिम्बविधान में चित्रकला के तीनों गुण पाये जाते हैं।

(१) विषय की प्रधानता
(२) अलंकरण की प्रधानता
(३) अमूर्तता।

इनके अतिरिक्त बिम्ब विषय-प्रधान हैं। जैसे—क्लासिक मरीज, खत, मकड़ी का जाल, डाकवनी आदि। "मंजीर" और "नाश और निर्माण" की कविताओं में अलंकरण-प्रधान बिम्ब योजना अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। समग्र रूप में कहा जा सकता है कि माथुर जी के काव्य में सभी प्रकार के बिम्ब मिलते हैं। माथुर जी की बिम्ब-योजना के सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र का कथन सत्य प्रतीत होता है—

"गिरिजा कुमार के अन्तः संस्कार छायावाद के सूक्ष्म-कोमल शत-शत रंगोज्ज्वल बिम्बों से बसे हुए हैं, उनकी काव्य-चेतना का पोषण एक ओर प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी के काव्य-वैभव से और दूसरी ओर अंग्रेजी कवियों की चित्रमय विभूतियों से हुआ था। कवि ने इस वैभव-विलास का पूर्ण उपयोग करते हुए उसे नवीन उपकरणों से सिद्ध किया।"[1]

(ख) प्रतीक विधान

अभिव्यक्ति की संक्षिप्तता प्रतीक है। प्रतीक शब्द प्रति+इक से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है, अपनी ओर झुका हुआ। "प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य अथवा अगोचर वस्तु के लिये किया जाता है, जो किसी अदृश्य, अगोचर या अप्रस्तुत विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है।"[2]

"अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव-विचार, क्रिया-कलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है।"[3]

नयी कविता में शिल्प का प्रयोग अधिक है, अतः नवीन प्रतीकों का प्रयोग नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति है। सामान्यतया प्रतीकों को लोक-जीवन से ही लिया जाता है, किन्तु नये कवियों ने नये भावों की अभिव्यक्ति के लिये सामान्य की अपेक्षा विशेष प्रतीकों का व्यवहार किया है, जिससे अर्थ की प्रतीति में बाधा पड़ती है। नयी कविता की प्रतीक-योजना के सम्बन्ध में गिरिजा कुमार माथुर के विचार इस प्रकार हैं—

---

१. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, डा० नगेन्द्र, पृ० १२५।
२. हिन्दी साहित्य कोश, सम्पादक ज्ञान मण्डल, काशी, पृ० ४७१।
३. काव्यशास्त्र, डा० भगीरथ मिश्र, पृ० २५४।

"सीधे, जमे और एक परिचित दायरे में घूमने वाले प्रतीक उपमानों के स्थान पर वस्तु-जगत् के समस्त क्रियाकलापों को उसने (नयी कविता ने) अपनी वर्द्धमान उंगलियों को छूकर उन्हें ग्रहण किया है। मानसिक जगत की अनेक सूक्ष्म प्रक्रियाओं के पर्दे उठाये हैं। दैनिक जीवन की सैकड़ों छोटी-छोटी घटनाओं के वातावरण और प्रतीकों से काव्य-शिल्प को समृद्धिशाली किया है।"[1]

माथुर जी के काव्य में प्रतीकों का वैशिष्ट्य है। ये प्रतीक नूतन भाव को उद्दीप्त करने में सक्षम हैं। उनके काव्य में प्रतीकों के विविध प्रयोग मिलते हैं। कुछ प्रतीक सांस्कृतिक होते हैं, परम्परागत होते हैं; कुछ वास्तविक, व्यक्तिगत, प्राकृतिक इत्यादि।

(१) सांस्कृतिक प्रतीक

सांस्कृतिक प्रतीक वे प्रतीक कहलाते हैं, जो धर्म व संस्कृति से ग्रहीत किए जाते हैं। माथुर जी ने भारतीय संस्कृति व धर्म से ही नहीं, विदेशी धर्म व संस्कृति से संबद्ध प्रतीकों को भी चुना है। उन्होंने मनु से लेकर ईसा तक के प्रतीकों का प्रयोग किया है। प्रस्तुत उदाहरण में कवि ने महात्मा बुद्ध का धर्मगत चित्रण इस प्रकार किया है :—

> "जिनमें डूबी-डूबी दिखती,
> ध्यान-मग्न तस्वीर बोधितरु के नीचे की"[2]

इसी प्रकार (शिव) को कल्याणकारी भावना के रूप में माना है।

> "सदियों पहले का शिव-सुन्दर मूर्तिमान है।
> चलता जाता है ओझीले इतिहासों पर
> श्वेत हिमालय की लकीर सा।"[3]

(२) ऐतिहासिक प्रतीक

माथुर जी की कविताओं में ऐतिहासिक प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। भारतीय इतिहास में चंगेज खाँ अपने अन्याय और क्रूरता के लिये प्रसिद्ध हैं। इसी अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने निम्न पंक्तियों में इस ऐतिहासिक प्रतीक का प्रयोग किया है—

> "आदम का पुत्र बहुत भटका अँधेरों में
> चंगेजी ग्याम के खून भरे घेरों में"[4]

कवि ने कोहिनूर और तख्तताऊस के ऐतिहासिक प्रतीकों के द्वारा काल-विशेष

---

१. धूप के धान (भूमिका), गिरिजा कुमार माथुर, पृ० १३।
२. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ११२।
३. धूप के धान, माथुर, पृ० ८२।
४. धूप के धान, माथुर, पृ० ७।

के नहीं अपितु सार्वकालिक वैभव के विलुप्त हो जाने की बात कही है—

"लाल कोहिनूर गिरते मृत्तिका में
उलटते हैं एक क्षण में तख्त ताऊसी हजारों"[१]

(३) पौराणिक प्रतीक

पौराणिक प्रतीक पौराणिक कथाओं पर आधारित होते हैं। इन पौराणिक प्रतीकों के आधार पर आज के युग बोध को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है। निम्नलिखित पंक्तियों में माथुर जी ने आज की संहारक शक्तियों को असुर-संस्कृति का और मानवता को सीता के पौराणिक प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है—

' जब जगत को चाहिये फुलवारियाँ
हो रही तब युद्ध की तैयारियाँ
फिर धरा-सीता सताई जा रही
फिर असुर संस्कृति अमाई जा रही"[२]

प्रिया की पवित्र भावना से संयुक्त करने के लिये माथुर जी ने "राधा" के पौराणिक प्रतीक की नियोजना भी की है—

"किस राधा का हल्दी सा मुख
इस उदास चंदा में आया"[३]

निम्नलिखित एक अन्य उदाहरण में "कंस व दुर्योधन" को आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक रूप में और राम, कृष्ण तथा गौतम आदि को मानवतावादी सात्विक प्रवृत्तियों के रूप में व्यक्त किया गया है—

"नैतिकता के दीपक पर
जले कंस दुर्योधन
× × ×
अब जब इस धरती की
ज्योति थकी मुरझाई
राम कृष्ण गौतम और
गाँधी बन उठ आई"[४]

(४) परम्परागत प्रतीक

परम्परागत प्रतीक वे प्रतीक हैं, जो बहुत समय पहले संतों की रचनाओं में

---

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० १०७।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ६२।
३. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ७७।
४. धूप के धान, माथुर, पृ० १४६।

कास, तलवार, अग्नि, आदि के रूप में उपलब्ध है। इसी प्रकार के सर्वस्वीकृत प्रतीक गिरिजाघरों और मन्दिरों पर अक्सर अंकित मिलते हैं। माथुर जी के काव्य में इस प्रकार के प्रतीक यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं—

"रुठ गये वरदान सभी फिर भी मैं बाँटे गान लिये हूँ
टूट गया मंदिर तो क्या पूजा के अरमान लिये हूँ"[1]

(५) व्यक्तिगत प्रतीक

व्यक्तिगत प्रतीक वे होते हैं जिनका सीधा सम्बन्ध कवि की निजी अनुभूति और प्रेरणा से रहता है, और उन्हीं को अभिव्यक्त करने के लिए वह विशिष्ट प्रकार के प्रतीकों की कल्पना करता है। आधुनिक कवियों की रचना में व्यक्तिगत प्रतीकों का ही आधिक्य रहता है। माथुर जी के काव्य में वैयक्तिक भावना पूर्ण रूप से मुखरित हुई है, अतः व्यक्तिगत प्रतीकों का प्रयोग होना स्वाभाविक है—

"प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा।
कोटि दीप जलते थे मन में
कितने तपते यौवन में
रस बरसाने वाले आकर—
विष ही छोड़ गये जीवन में
जग की जगह ज्वाल ही बरसी
सदा प्यार के नभ सावन में"[2]

प्रतीक विधान की दृष्टि से नये प्रतीकों का प्रयोग किया गया है—दीप-आशा का प्रतीक, मरु—प्रेम की अग्नि का, जल—शीतलता, पवित्रता का प्रतीक, ज्वाल—कष्ट, दुःख का, आग—दुःख का प्रतीक, रस—सुख का प्रतीक है।

"आँखों के नीले उपवन में,
आँसू सागर के लघु तट पर
आ जाती सुख प्राण सदा ही
चल मेरे सपनों के पथ पर"[3]

(६) वैज्ञानिक प्रतीक

विज्ञान की उन्नति के कारण सामान्य मानव ही नहीं कवि भी उससे प्रभावित हुए बिना न रहा। नये कवियों में माथुर जी के काव्य में वैज्ञानिक प्रतीकों का सहारा लिया गया है। आज के यथार्थ सौन्दर्य-बोध के लिए उन्होंने वैज्ञानिक प्रतीकों का

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ५१।
२. छाया मत छूना मन, माथुर, पृ० ५८।
३. मंजीर, माथुर।

आश्रय लिया है। अणु को उन्होंने संहारक शक्ति के प्रतीक रूप में व्यक्त किया है—

"किन्तु नहीं
मिट सका कभी न भविष्य मनुज का
जग का वैभव रचने वाले ज्योति मनुज का
अणु का नाग नचानेवाले महामनुज का"[१]

"पहिये" नामक कविता में वे लिखते हैं—

"एटम और उद्‌जन बम हैं नभगामी महलों के कर में
चाह रहे जो सृष्टि धरा को केवल हिरोशिमा कर देना"[२]

यहाँ एटम, उद्‌जन बम, आदि वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग कवि ने प्रतीक रूप में किया है। वैज्ञानिक उन्नति से किस प्रकार काव्य-क्षेत्र में परिवर्तन हुआ है, यह उनका विशिष्ट प्रयोग है।

ब्रह्म के निर्गुण व सगुण रूप को लेकर आज तक विद्वानों में परस्पर मतभेद रहा है। किन्तु आधुनिक युग विज्ञान का युग है, अतः माथुर जी ने ईश्वर को अव्यक्त, अक्षर या निर्गुणतत्व के रूप में प्रस्थापित नहीं किया है। उन्होंने अनादि परब्रह्म को परमाणु के प्रतीक रूप में व्यक्त किया है—

"फेंक दो कापाय
क्योंकि अब अव्यक्त अक्षर
सूक्ष्म-निर्गुण तत्व में
रण ठना है
हो गया है निमन अणु का
परम ब्रह्म अनादि मनु का
आत्मा का बम बना है।"[३]

(७) यौन प्रतीक व संकेतों का उपयोग

"चूड़ी का टुकड़ा" और "रेडियम की छाया" आदि माथुर जी की कुछ ऐसी कविताएँ हैं, जिनमें यौन-भावना की अभिव्यक्ति के लिये सांकेतिक प्रतीकों को अपनाया गया है। "चूड़ी का टुकड़ा" इस कविता में कवि ने मिलन के क्षण का प्रतीक रूप में चित्रण नहीं किया, चूड़ी के टुकड़े के माध्यम से कवि ने यथार्थ जीवन की भाषा और उपकरणों से मधुर स्मृति का ज्यों का त्यों चित्र अंकित कर दिया है।

"रेडियम की छाया" कविता में सांकेतिक चित्रण द्वारा आलिंगन-व्यापार का संकेत किया है। सम्पूर्ण चित्र ऐन्द्रिय सम्पर्क की मर्यादित अभिव्यक्ति में सफल रहा है।

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ६७।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ६७।
३. धूप के धान, माथुर, पृ० ७८।

"उन्हीं रेडियम के अंकों की छायापर
तो छाँहों का वह चुपचाप मिलन था,
उसी रेडियम की हल्की छाया में,
चुपके का वह रुका हुआ चुम्बन अंकित था"[१]

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि माथुर जी की रचनाओं में लगभग सभी प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग व्यापक ढंग पर किया गया है। नगरीय बोध के कवि होने के कारण वैज्ञानिक प्रतीकों का इनमें बाहुल्य है। नये प्रतीकों के संबंध में निम्नांकित उद्धरण भी प्रासंगिक होगा—

"नये प्रतीकों के निर्माण की ओर प्रायः शत-प्रतिशत कवियों की चेतना सजग है, इसीलिये नयी कविता प्रतीकों की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। किन्तु अतिशय बौद्धिकता के कारण इन प्रतीकों में अस्पष्टता है, तथा रोचकता का अभाव है। किन्तु जो प्रतीक व्यावहारिक से चुने गये, उनमें भावबोध में पूर्ण सहायता मिलती है।"[२]

(ग) सादृश्य योजना

"काव्य भाषा में सादृश्य विधान साभिप्रायता की खोज के लिये एक महत्वपूर्ण साधन है। एक वस्तु को जानी पहचानी है, उसके द्वारा नयी जानने वाली वस्तु का बोध कराना सादृश्य-विधान का उद्देश्य है। सादृश्य विधान के इस सतही उद्देश्य के अलावा एक और भी उद्देश्य है। वह है "एक साथ दो प्रकार की वास्तविकताओं का साक्षात्कार करते हुए दोनों का संयोजन।

सादृश्य ऐन्द्रिय और बौद्धिक दोनों को एक साथ प्रत्यक्ष करने वाला एक प्रमाण रूप ज्ञान है। सादृश्य का अर्थ एक साथ दिखाने का भाव है। सादृश्य विधान के संबंध में प्राच्य दृष्टि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह मानव-जीवन को मानवेतर चेतन या जड़ जीवन से भिन्न नहीं दिखाती।"[३]

सादृश्य विधान में तीन-चार चीजें एक साथ समझनी चाहिये। सादृश्य की जब प्रतीति होती है, तब दो चीजें दिमाग में रहती हैं। जो वस्तु बताई जाये, तथा जिसकी कल्पना की जाये, वह सादृश्य है, जैसे प्रकाश वृक्ष गया। कुछ ऐसे गुणों में समानता आवश्यक है, जो महत्वपूर्ण हो। किसी चीज का महत्वपूर्ण गुण क्या है? यह कसौटी पर कसा जाता है। जैसे—बोतल की तरह लम्बा कोई प्रसिद्ध गुण नहीं है, किन्तु अगर सुराहीदार गर्दन कही जाये तो लम्बाई से अभिप्राय होगा। जो वस्तु प्रसिद्ध है, उसमें सादृश्य की बात। दूसरी चीज है सादृश्य की अभिव्यक्ति कैसे होती है, इसके अन्तर्गत कई अलंकार आते हैं जैसे—प्रतिवस्तूपमा आदि। जब हम कहते हैं कि मुख कमल

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ५६।
२. हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग, डा० गोपालदत्त सारस्वत, पृ० ४१७।
३. रीतिविज्ञान, डा० विद्यानिवास मिश्र।

चन्द्रमा तो वास्तव में चन्द्रमा और मुख में भेद है, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से इन दोनों में सामीप्य है, तथा भाव आरोपित है। कहीं उपमा सार्थक होगी, कहीं रूपक। सादृश्य विधान में वह भी देखना आवश्यक है कि उपमा के, रूपक के प्रयोग का प्रयोजन क्या है।

वास्तव में सादृश्य विधान के सम्बन्ध में एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। सादृश्य का प्रमाण रूप में ज्ञान, सादृश्य की प्रतीति के लिए जरूरी है। उदाहरण के लिए—किसी बच्चे ने फोटो खींचते समय फ्लैश-गन को चमक देखी है, और उसके बाद वह आकाश में बिजली चमकते देखता है, और चिल्ला पड़ता है -- देखो, कोई फोटो खींच रहा है।

"वस्तुतः सादृश्य विधान के द्वारा किसी भी वस्तु के अद्वितीय यथार्थ का अद्वितीय रूप में प्रस्तुतीकरण ही मुख्य लक्ष्य होता है। सादृश्य योजना का अपने आप में केवल इतना महत्व है कि वह ऊपरी सतह पर परस्पर सम्बद्ध साधर्म्य के गुणों का सम्मुखीकरण कर देती है, किन्तु इसका मौलिभूत प्रयोजन वह समग्र वस्तु है, जो इस सम्बन्ध की प्रतीति के द्वारा एक सामंजस्य रूप में सामने आती है।"[1]

सादृश्य-विधान चार प्रकार के गुणों से संयोजित हो सकता है।

(१) अमूर्त का अमूर्त से संयोजन

(२) अमूर्त का मूर्त के साथ संयोजन

(३) मूर्त का मूर्त के साथ संयोजन

(४) मूर्त का अमूर्त के साथ संयोजन।

चारों प्रकार की उपमान योजना के उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(१) अमूर्त का अमूर्त से संयोजन

(क) जिसकी सुधि आते ही पहलो
ऐसी ठंडक मन प्राणों पर
ज्यों सुबह ओस भीगे खेतों से आती है
मीठी हरियाली—खुशबू मंद हवाओं में।[2]
× × ×

(ख) यह जीवन का एकाकीपन
गरमी के सुनसान दिनों सा।[3]
× × ×

१. रीतिविज्ञान, डा० विद्यानिवास मिश्र।

२. धूप के धान, माथुर, पृ० ५।

३. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ३२।

(ग) मेंहदी महुए की पछुवा में
नींद सरीखी लाज उड़ गयी।[१]

नींद का लाज के समान अचानक उड़ जाना बड़ा ही मार्मिक है। इस उपमान में प्रभाव साम्य और धर्मसाम्य है।

(२) अमूर्त का मूर्त के साथ संयोजन

(क) टूटती वाणी अकेली
ज्यों अकेली लहर आकर
टूट जाती पत्थरों पर।[२]
× × ×
(ख) दर्द और उदासी वह
सूने प्लेटफार्म सी।[३]

(३) मूर्त का मूर्त के साथ संयोजन

(क) आज दिखता है वही सा चाँद शीतल।[४]
× × ×
(ख) देह पड़ी रह जाती
खोखले लिफाफे सी।[५]
× × ×
(ग) गालों की मोटाई जैसा
यह पतझर का मौसम आया।[६]
× × ×
(घ) दूधिया चाँद श्वेत हँसली सा।[७]
× × ×

(४) मूर्त का अमूर्त के साथ संयोजन

(क) वहीं हरेक सनीचर के दिन

---

१. छाया मत छूना मन, माथुर।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ५६।
३. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ३६।
४. धूप के धान, माथुर, पृ० २३।
५. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ३७।
६. धूप के धान, माथुर, पृ० ६३।
७. छाया मत छूना मन, माथुर, पृ० ८०।

हाट लगा करती है
भूतकाल की भटकी हुई आत्मा जैसी।[1]

× × ×

स्पष्ट है कि माथुर जी ने परम्परागत उपमानों के स्थान पर तार्किक दृष्टि से समसामयिक जीवन तथा प्रकृति से उपमानों का चयन किया है। इस उपमान योजना के अतिरिक्त कवि के काव्य में अन्य उपमानों का प्रयोग भी मिलता है। यह सही है कि कवि ने नवीन उपमानों की खोज की है, किन्तु पुराने उपमानों का प्रयोग भी यत्र-तत्र आया है। उपमानों की दृष्टि से कवि के काव्य में छह उपमान मुख्य रूप से पाये जाते हैं :—

(१) परम्परागत प्राकृतिक उपमान
(२) वैज्ञानिक उपमान
(३) पौराणिक उपमान
(४) ऐतिहासिक उपमान
(५) पारिवारिक उपमान
(६) सामान्य जीवन से गृहीत उपमान।

(१) परम्परागत प्राकृतिक उपमान

अंगों और नेत्रों के लिये कचनार कली और गुलाब का प्रयोग। अंगों के खिलने के लिये "कचनार की कली" का प्रयोग मार्मिक और सार्थक है। इसी प्रकार "गोल पूनम सा चेहरा" में पूनम (पूर्णिमा के चाँद) का उपमान भी प्राचीन और प्राकृतिक प्रयोग है।

परम्परागत प्राचीन उपमानों का कवियों ने नया प्रयोग भी किया है। माथुर जी द्वारा प्रयुक्त "सावन बादल" का दृश्य प्रस्तुत करते हुए वर्ण-साम्य के आधार पर बादलों के लिए "काले अगरु" और "जामुन के रंग" का उपमान सार्थक है—

"काले अगरु से उठे आज बादल
ये मिट्टी की गन्ध सी सोंधी हवाएँ
ये जामुन के रंग सी नीली घटाएँ
उड़ी जा रही हैं लहर सी फुहारें"[2]

माथुर उड़ते हुए उत्तरीय को उपमान मलय पवन से देते हैं। मलय-पवन में जो भीनी गन्ध है, लहरों वाली गति है, उसका साम्य उत्तरीय से उचित ही है—

"है फूल भरे भुजबन्ध
उड़ रहा मलय पवन सा उत्तरीय

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ६९।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ५७।

किंशुक लस सी काली अलकें
तिल सुमन खिला मुख शोभनीय"[1]

"सावन की रात" नामक कविता के समस्त उपमान प्राकृतिक क्षेत्र से गृहीत हैं। इसी प्रकार "ख्वत" नामक कविता में स्वच्छन्दता और मुक्ति की उपमा लहर से दी गई है—"ख्वत हवा की लहर सा आजाद है।" हवा की लहर का उपमान प्राचीन और अमूर्त होते हुए भी उपमेय के साथ नवीन है। जैसे हवा की लहर आजाद होती है वह किसी का बन्धन नहीं मानती, वैसे ही ख्वत भी आजाद और बन्धन रहित है। वह लहर की तरह अभीष्ट स्थल की ओर जाता है।

अन्य उदाहरण :—(१) आयु भावना की
मस्तगंधा सी जवान रहे।
× × ×
(२) निकलेगा व्यक्ति नया
सूरज के टुकड़े सा
तोड़ अन्यायों को
शशि पर खिची दरारें।[2]

भावना की आयु मस्तगंधा के समान नवीन और स्फूर्तिमय कहना बड़ा ही मार्मिक और आकर्षक है। दूसरे उदाहरण में संघर्षरत और अन्यायों को नष्टकर उदित होने वाले व्यक्ति की उपमा सूरज से दी गई है। वह धर्म साम्य पर आधारित उपमान है। पहले में अमूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमान तथा दूसरे में मूर्त के लिए मूर्त उपमान प्रस्तुत हुआ है।

(२) वैज्ञानिक उपमान

(क) टूटी हुई देह सी टूटी-फूटी बेंचें
जर्जर एनेमिक प्रयासों से
भटके हुए मकान।[3]
× × ×
(ख) नीचे दबी कमजोर व्यक्ति सी धरती
सिमटती चली जाती है
जैसे सिलाई की मशीन के नीचे
तेजी से पीछे को कपड़ा खिसकता है।[4]

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० १०४।
२. धूप के धान, माथुर।
३. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ३६।
४. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ३३।

"कमजोर घरौंदे" आज के मध्यवर्गीय व्यक्ति का सही रूप सामने लाती है, जो युगीन परिस्थितियों की असमानता के कारण अपने आपमें ही सिमटता जा रहा है। माथुर जी के उपमान युगीन भावबोध की अभिव्यंजना में पूर्णतः सफल रहे हैं।

(३) पौराणिक उपमान

कवि माथुर ने पौराणिक प्रसंगों और पात्रों का प्रयोग उपमानों के रूप में किया है। "शिलापंख चमकीले" की "खत" नामक कविता में उन्होंने "खत" के लिये अनेक पौराणिक उपमानों की सुन्दर योजना की है। "खत" के आने से वैसी ही सिहुरन तथा खुशी होती है, जैसे अशोक वन में मुद्रिका के गिरने से सीता को—

"लगता है आज भी वह तेज चिनगारी—
गिरी थी ज्यों उदास अशोक वन में
मुद्रिका प्यारी
वही है मेघदूत नये जमाने का
वही है हंस
दयमन्ती मिलन को पास लाने का"[१]

अशोक वाटिका, हंस और मेघदूत ये सभी प्राचीन उपमान हैं। इनमें एक ओर इतिहास की झलक है, और दूसरी ओर पवित्रता और प्राचीनता से पौराणिक श्री। माथुर ने दुःख को यम कहा है—"मुख पर दुःख के यम की गिरी साँवली छाया", यह "यम" उपमान कितना सार्थक है। यातनाओं की सूचना के लिये "यम" उपमान वास्तव में बड़ा ही सहज ग्राह्य है।

पौराणिक उपमानों के प्रयोगों को देखने के लिये माथुर जी की "धूप्वी प्रियतम" कविता द्रष्टव्य है। उदाहरणार्थ—

यह मदन धनुष-सा बंक चन्द्र
है पंच कुसुम पंचमी कला
गति के गोरे रोमन तन-सी
खिल रही कपूरी चन्द्र प्रभा"[२]

चन्द्रमा को मदन, धनुष सा बंक, पंचमी कला को पंच कुसुम चन्द्र और उसकी चाँदनी को रति के गौर तन की उपमा यह सभी पौराणिक उपमान है।

(४) ऐतिहासिक उपमान

माथुर जी ने ऐतिहासिक उपमानों का बड़ा ही सार्थक प्रयोग किया है। ये उपमान प्रतीकों के रूप में प्रयुक्त है, उदाहरण द्रष्टव्य है—

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० २५-२६।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० १०४।

"आदम का पुत्र अद्भुत
भटका अंधेरों में
फंगेजी ल्यादों के
खून भरे घेरों में"[1]

(५) पारिवारिक उपमान

"धूप चंदन रेख-सी
सन्ध्या सितारा माँग होगी
चाँदनी होगी न तपसिनि
दिन बना होगा न योगी"[2]
× × ×
तन के मन के स्वस्थ चैन की
जिनकी उजली-उजली छायें
खिंची हुई हैं स्वास्तिक सी कोने-कोने में"[3]

ये रेखांकित उपमान धार्मिकता और पावनता की भावना को उभारते हैं। ये समस्त प्रयोग शालीनता लिए हुए हैं।

(६) सामान्य जीवन से ग्रहीत उपमान

सामान्य जीवन के क्रियाकलापों से भी कवि ने उपमानों की संयोजना की है, जैसे—

"काली चिकनी सड़कों की ऊँची पटरी पर,
बढ़ जाता वह मशीन सा,
चाँदी के पहियों पर चलती हुई
मोटरों के स्वर सुनता"[4]
× × ×
धुले मुख सी इहिणी
× × ×
"वत्सल छाती सी पहाड़ियाँ
दूध पिलाते आतुरा

१. धूप के धान, माथुर, पृ० २३।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ७०।
३. धूप के धान, माथुर, पृ० ४२।
४. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ९३।

बच्चे सा सूरज हो जाता
लेकर मुँह में अँधरा"[१]

उपर्युक्त उपमानों के अतिरिक्त "पुहलक्ष्मी सी साँझ", "मरते ओले जैसा मन" "स्लीट सी जैसा छोटा लॉन", "रुँधी हुई छाती सा सूनापन", "गेहूँ की बाल जैसी धरा", "नदी प्राय से भरे हुक्य के दुकड़े जैसा रेडियो", आदि सहज और सुन्दर उपमानों की योजना की है।

माथुर जी ने उपमानों तथा विशेषणों के अतिरिक्त अलंकारों द्वारा भी अपने काव्य को अलंकृत किया है। मानवीकरण का एक उदाहरण देखिए, जिसमें चाँदनी को एक आधुनिक नारी के रूप में चित्रित किया गया है—

"स्लीवलैस ब्लाउज पहने
छरहरी चाँदनी"[२]

उपमा अलंकार का प्रयोग भी कवि ने कहीं-कहीं किया है। उपमा का एक सुन्दर उदाहरण जिसमें "जल" की उपमा आलेन्दु से दी गई है—

"तांदिनेय रघु से आज जन्मे
ज्यों आलेन्दु क्षीर सागर से
रूप कांति ज्यों एक दीप से
जलकर पाता दीप दूसरा"[३]

रूपक अलंकार का एक उदाहरण—

"आजानु करों से घेर लिया तुमने कविता का फुल्ल कमल"[४]
(महाकवि निरालाजी के प्रति)

प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट है कि माथुर जी के उपमान व्यापक धरातल पर आधृत हैं, उनमें स्वाभाविकता और सार्थकता है। इनके प्रयोग से कविता में गाम्भीर्य और सौन्दर्य आ गया है।

(घ) नव्य प्रयोग विधान

काव्यगत प्रयोगशीलता को माथुर जी ने वैज्ञानिक दृष्टि से स्पष्ट करने का प्रयास किया। "प्रयोग सभी कालों में होते आये हैं, यह कहकर ही आधुनिक प्रयोगों की सार्थकता सिद्ध नहीं की जा सकती। उसके सम्बन्ध में आज हमें यह देखना भी जरूरी है कि किस सन्दर्भ में वे किये जा रहे हैं, और उनका लक्ष्य क्या है। फिर पहले जो प्रयोग हुए थे उनमें और आज के इन प्रयोगों में परिस्थिति, प्रयोजन, दिशा और

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ४।
२. जो बंध नहीं सका, माथुर, पृ० १५।
३. धूप के धान, माथुर, पृ० २१।
४. धूप के धान, माथुर, पृ० ३६।

आग्रह का अन्तर है। इसके अलावा कवि या लेखक-विशेष का वैशिष्ट्य भी अपनी नवीनता की उद्‌भावना के अर्थ में एक सीमा तक नया प्रयोग कहा जा सकता है।'

इस कथन की पुष्टि गिरिजाकुमार माथुर जी के काव्य-संग्रहों को पढ़कर हो जाती है। वास्तव में प्रयोगवाद की इस नयी प्रवृत्ति का विकास करने में माथुर जी का बहुत बड़ा योगदान है। उन्होंने जिस नवीन साहित्य-सृष्टि का उन्मेष किया वह केवल अध्ययन से प्राप्त नहीं की, अपितु उनके संस्कार सहायक थे। विज्ञान के नये आविष्कार और उसकी संभावनाएँ इस नये कवि की काव्य-चेतना में ढलने लगीं—अणुयुग के वैज्ञानिक चमत्कारों की, अन्तरिक्ष विजय की नयी संभावनाओं को और उनके प्रकाश में मानवता के भविष्य की कल्पनाओं को साकार करने के लिए कवि ने "पृथ्वी कल्प" के रूप में अत्यन्त साहसिक प्रयास किया है।

साहश्य योजना, बिम्ब, प्रतीक, नव्य शब्द प्रयोग आदि समस्त क्षेत्रों में कवि के नये प्रयोग मिलते हैं। कुछ उदाहरणों से बात स्पष्ट हो जायेगी।

उपमान विधान की दृष्टि से माथुर जी सफल रहे हैं। नयी कविता ने जीवन के नये धरातल और नये परिप्रश्नों को छुआ है, इसी से कथ्य की अभिव्यक्ति के लिये उपमानों को ढूंढ़ना पड़ा है। ये उपमान एकदम नूतन हैं, तथा अर्थ को स्पष्ट करने में समर्थ है। कवि ने उपमानों के लिये दोनों का अनुसंधान किया है। उसने गुजरे हुए वर्ष को पत्थर-सा, काँचे-सा, स्याही-सा, और बूँद-सा बताया है। अमूर्त समय के लिए मूर्तमान लाये गये हैं, जिनमें नूतनता के साथ व्यंजकता भी है।

"ढल गया
लुढ़क गया
एक और वर्ष फिर
पत्थर-सा
रंगीन कँचे-सा
आँसू की बूँद-सा"[१]

नव्य उपमान विधान की दृष्टि से "पहिये" कविता उल्लेखनीय है। इसमें कवि कहता है एक दिन ऐसा आयेगा जब संसार में दुःख की सत्ता समाप्त हो जायेगी, और एक ऐसे नये समाज की रचना हो सकेगी, जहाँ शोषण, दोहन, अन्याय होकर एक स्वस्थ सुन्दर मानवीय समाज की रचना बन सकेगी।

"जब दुःख की सत्ता मर जायेगी
पीले बासी फूलों सी"[२]

दुःख की सत्ता की उपमा पीले बासी फूलों से देना कवि की प्रतिभा का परिचायक है, इस प्रकार के उपमान अन्यत्र दुर्लभ हैं।

१. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० २०।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० २१।

"सूनी आधी रात ।
चाँद-कटोरे की खिकुड़ी कोरों से,
मन्द चाँदनी पीला लम्बा कुहरा,
सिमट, लिपट कर ।
दूर-दूर के छाँह भरे सुनसान पथों में,
चलते की आहट ओले-सी अभी पड़ी थी,
भूरे पेड़ों का कंपन भी ठिठुर गया था ।
× × ×
आलस भरे अंधेरे में
दो काली आँखों-सी चमकीली,
एक रेडियम घड़ी सूम कोने में चलती,
सूनेपन के हल्के स्वर-सी ।"[1]

"रेडियम की छाया" कविता का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि नवीन बिम्बों, नवीन उपमानों एवं नये शिल्प ने एक मादकता और जीवन्तता प्रदान की है । इस कविता की उपरोक्त पंक्तियाँ नव्य उपमान विधान की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । "ओले सी अभी पड़ी थी", सुख की प्रतीति । सन्नाटे को साकार करने के लिये "ओले सा जमना" कहा है । यहाँ पर शिशिर ऋतु का संकेत है । "सूनेपन के हल्के स्वर सी" नवीन प्रयोग है ।

"प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा ।
कोटि दीप जलते थे मन में
कितने मधु तपते यौवन में
रस बरसाने वाले आकर—
विष ही छोड़ गये जीवन में ।
अम्र की जगह ज्वाला ही बरसी,
सदा प्यार के लघु सावन में ।
इस घर के कोने-कोने में धीरे मौत बिछाती डेरा ।
× × ×
गरम मोम-सा घुलता जीवन,
मरते ओले जैसा मन है ।
ढलो रात के से दीपक का काजल बन छा रहा अंधेरा ।"[2]

नवीन उपमान विधान की दृष्टि से "प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा" कविता पूर्णतः सफल है । 'मरते ओले जैसा मन है', 'मौत बिछाती डेरा', प्रयोग निराशा के

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ५६ ।
२. छाया मत छूना मन, माथुर, पृ० २२ ।

लिये किया गया है। जिस प्रकार मौत धीरे-धीरे आदमी को ग्रसित करती है, उसी प्रकार कवि के प्रेमी जीवन में निराशा की छाया धीरे-धीरे घिर रही है। "गर्म भोम सा" नवीन प्रयोग है।

"नन्हा बच्चा" कविता में छोटे बच्चे को नरम, अमोला, चिरोटें की पाँख, खरगोश-सा मूँह, सैल्युलाइड का गुड्डा कहा है।

"सोंधा है
मीठा है
जैसे तुर सद्य आत
बौल से फूटी कांस
नरम अमोला मुठली से
चिरोटें की पाँख
भोला मूँह खरगोश
बिल्ली, कबूतर का बच्चा
जिन्दा सैल्युलाइड का गुड्डा
बेखबर मासूम·········"[1]

नव्य बिम्ब विधान की दृष्टि से "धूप के धान" की "चँदरिमा" कविता में कवि के मन पर प्रेयसी के गोल पूनम से चेहरे का प्रभाव अधिक है। चेहरे की याद अमिट है, और लगातार अंकित है। पूर्णिमा को देखकर कवि को प्रेयसी के सुन्दर मुख की स्मृति पुनः आती है, और बहुत सूक्ष्म लक्षण से कवि यह कहना चाहता है कि चाँदनी भी वही है, गोल चेहरे-सी पूर्णमासी भी वही है, किन्तु प्रिया पास नहीं है, अतः यह पूरा चन्द्रमा भी उसकी पूरी अनुकृति नहीं बन पाता। प्रिया की स्मृति का नवीन बिम्ब।

प्रस्तुत कविता में परम्परागत उपमान और प्रतीक नये उपमान-प्रतीकों के साथ मिलकर सुलभ-बिम्बों का निर्माण करते हुए प्रतीत होते हैं।

नव्य प्रतीक विधान की दृष्टि से "खद्भिट्टी चाँदनी" कवि का चाँदनी विषयक अनेक प्रसिद्ध रचनाओं में अपना स्वतन्त्र स्थान रखती है। चाँदनी यहाँ मात्र उजली रात की रोशनी नहीं है, वह कवि के प्रेरक भाव-स्रोत का सुकुमार प्रतीक भी है। उसके द्वारा प्राप्त जीवन-रस केवल मधुर ही नहीं कटु, तिक्त, खट्टे तीखे आदि अन्य रसों का भी समावेश है, जिसके कारण कवि को अनुभूति साधारण रूमानी स्तर से सर्वथा भिन्न अनुभव की विविधता के आस्वाद से सिक्त और पकी हुई दिखाई देती है। स्वयं कवि का कथन है—

"यह पकाव न उस कवि का है, जिसकी कामना है "जिन्दगी सिंक के ताजा फूल बने, पर के मृदु वक्ष की गरमाई में", "बन्धशक्ति", "स्मृति से सम्बद्ध होने के

१. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० २२।

कारण आप चाहें तो उसे स्तूनियो कह सकते हैं, यह कवि कलाकारों में थोड़ी बहुत होती ही है। मेरे में भी यह गुण काफी मात्रा में मिलता है। यानी चन्द्रशक्ति और चाँदनी के रूप का नवीन-नवीन बिम्बों, शब्द-योजनाओं से वर्णन करना मेरे कवि-स्वभाव की एक विशेषता है। चाँदनी से प्राप्त अनगिनत अनुभूतियों को नये ढंग से वर्णित कर चैलेन्ज-सा अपने भीतर अनुभव करता रहता हूँ।''[1]

"कितना सुख पाया है
तुमसे ओ चाँदनी
देह चूर रस से है
मन में है चाँदनी
× × ×
उम्र के कटोरे में
जितना यह आसव है
उसमें तुम्हारा ही
षट्‌रस है चाँदनी
× × ×
भर दी है जीवन में
कितने प्रिय स्वादमयी
सोंधी, मीठी लोनी
खट्‌मिट्‌ठी चाँदनी"[2]

शिल्प या क्रिया-कल्प इस कवि का अपना वैशिष्ट्य है। संगीत का सूक्ष्म ज्ञान होने के कारण उन्होंने स्वर-लय की अनेक सूक्ष्म संयोजनाएँ प्रस्तुत करने में अद्भुत सफलता प्राप्त की है और उनके लिए उन्हें प्रयास नहीं करना पड़ता। मात्रिक छंदों के अतिरिक्त विधान में प्रवेश कर उन्होंने अनेक कोमल गीति-लयों का आविष्कार किया है—उधर वार्णिक छन्दों के आधार पर मुक्त छन्द के अनेक सुपाठ्य रूपों का नवीन विकास किया है। माथुर जी का पाश्चात्य छन्द-विधान से भी परिचय है, और नवीन संभावनाओं को उद्भावना में उन्होंने उसका भी पूरा लाभ उठाया है।

प्रयोगशील कवि होने के कारण कवि ने अपने काव्य में नवीन विषयों को भी अपनाया है। विज्ञान के नवीन आविष्कार और उनकी संभावनाएँ अणु-युग के वैज्ञानिक चमत्कार, अंतरिक्ष विजय की नवीन संभावनाएँ भी उनकी कविता का विषय बनी हैं। डा० नगेन्द्र ने लिखा है कि "हमारी धारणा है कि विज्ञान के नये उपकरणों को काव्य सामग्री के रूप में प्रयुक्त करने का यह अपने ढंग का पहला प्रयास है। "रेडियम की छाया", "ऐलोविसेरूल्स", "युग-अवर्तक" आदि कवि की इस प्रयोगवादी पद्धति

१. शिलापंख चमकीले, भूमिका, माथुर, पृ० ३०७।
२. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ७७-७८।

की प्रमुख कविताएँ हैं। युग प्रवर्तक में कवि की यह प्रयोग की प्रवृत्ति देखिये—

"मैं अचल, अनंत अजेय हूँ
नीला शिखर एवरेस्ट का
लिपटे हुए मुख पर प्रभंजन चूमते,
अविराम ध्रुव पर घूमती धरणी सदृश
मेरे सुदर्शन चक्र से"[1]

माथुर जी ने नवीन प्रयोगों की प्रवृत्ति से अनुप्राणित होकर जो रचनाएँ की हैं, उन्हें विषय के आधार पर निम्न भागों में बाँटा जा सकता है—

(क) नवीन व्याख्याओं से युक्त विशुद्ध प्रयोग

इसका उदाहरण "धूप के धान" की निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है

"यह झकाझक रात
चाँदनी उजली कि सुई में पिरो लो तार
चाँदनी को दिन समझकर बोलते हैं काग"[2]

(ख) संदर्भगर्भी प्रयोग

माथुर जी ने अपनी कविताओं में जो पौराणिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक संदर्भ दिए हैं, उन्हें समझने के लिए पाठक का बहुपठित व बहुश्रुत होना आवश्यक है। संसार के प्रत्येक कोने से समेटे गये इन संदर्भों को साधारण पाठक समझ नहीं सकता, और इनके पीछे छिपी भावभूमि को न जानने के कारण वह काव्य-भाषा को क्लिष्टाई समझ बैठता है। उदाहरण के लिए "शिलापंख चमकीले" की निम्न पंक्तियों में प्रयुक्त पिरामिड और "स्फिन्क्स" शब्द ऐतिहासिक ज्ञान की अपेक्षा रखते हैं।

"मैं अफ्रीका
मौन पिरामिड, मैं रहस्यगर्भा हूँ"[3]

(ग) कथासूत्र में गुथे हुए प्रयोग

माथुर जी की इस प्रकार की रचनाओं में कुछ के नाम हैं—"सिन्ड्रेला", "दियाबरी", "दम्मुसती" आदि।

उपर्युक्त समस्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कवि नई कविता की बदलती हुई प्रवृत्तियों और परिस्थितियों के साथ आरंभ से लेकर आज तक जुड़ा हुआ है। उसने सन् १९३७ के आस-पास अपने काव्य-क्षेत्र में प्रवेश किया, और

१. धूप के धान, माथुर।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ६४।
३. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ५६।

सभी से नये प्रतीक, नये बिम्ब, एवं काव्य-वस्तु में भाव और शिल्प के नवीन प्रयोग करते हुए निरन्तर काव्य-साधना में तत्पर है। उसने नयी कविता को आशा और विश्वास का स्वर दिया है, तथा उसमें शील की प्रतिष्ठा करके भविष्य की संभावनाओं का मार्ग प्रशस्त किया है। सब प्रकार के वादों और गुटों से बचकर उसने ईमानदारी के साथ कथ्य और शिल्प-विधान में अभिनव प्रयोग किए हैं। भावों का सही अंकन करना ही उनका प्रमुख लक्ष्य था। चमत्कार का वह उतना ही अंश पसन्द करता था, जितना भावोद्दीपन तथा विचारोत्तेजन में सहायक हो।

●

षष्ठ अध्याय

माथुर जी के काव्य में शिल्पगत भाषा-सौन्दर्य का स्वरूप

भाषा-सौन्दर्य

भाषा मानवीय विचारों और भावों को व्यक्त करने का सर्वाधिक सहज, सरल एवं सशक्त माध्यम होती है। यह स्वतः अंतःस्फूर्त प्रतीक योजना द्वारा विचारों, भावावेगों तथा इच्छाओं के सम्प्रेषण का एक विशुद्ध मानवीय आयासजन्य माध्यम होती है। इस प्रकार भाषा के मूलतः दो प्रमुख कार्य होते हैं—विचारों, भावावेगों और इच्छाओं का संप्रेषण और मन में उद्भूत आकारहीन विचार आदि को प्रतीकों द्वारा आकार प्रदान करना, जो आयासहीन नहीं होता लेकिन अपने सहज रूप में मानवीय होता है।

आकारहीन विचारों को रूपायित करने वाला यही माध्यम गद्य और पद्य दोनों ही क्षेत्रों में भिन्न स्वरूप ग्रहण करता है। दोनों की भाषा में तात्विक अन्तर होता है। गद्य की भाषा दैनन्दिन प्रयुक्त होने वाली व्याकरण सम्मत जनभाषा का रूप होती है, जबकि काव्य की भाषा राग-प्रेरित भावोच्छ्वासजन्य और लययुक्त होती है। काव्य में यही लय, शब्दबद्ध होकर छन्द बन जाती है।

भाषा का अर्थ केवल शब्दों के प्रयोग से लिया जाता है, किन्तु भाषा अभिव्यक्ति का साधनमात्र नहीं है, और न ही केवल शब्दों का सार्थक समूह है। भाषा हमारी संवेदना का कथित रूप है। वह सब जो अन्तर की किन्हीं सतहों में अभिव्यक्ति के लिये आकुल होता है, उन्हें अभिव्यक्ति भाषा देती है।

"भाषा आज वह बर्तन नहीं है, जिसमें सारा यथार्थ भर लिया गया है, जैसा कि अठारहवीं शताब्दी तक माना जाता था, वरन् अब उसकी संगति का क्षेत्र सीमित है। वह क्रिया विचार और संवेदना के सभी प्रकारों पर लागू नहीं होती और न ही उन्हें संघटित ही करती है। शब्द की दुनिया संकुचित हो गई है।"[1]

यह कलात्मक संघटना भाषिक रूपों से प्राप्त विविध अन्तःशक्तियों के अधिकतम पारस्परिक प्रभाव को समाहित करती है। भारतीय काव्यशास्त्र की शब्दावली में यह अभिधा, लक्षणा और व्यंजना से मुक्त होती है। काव्य सहज क्रियाशील नहीं रहती। इन तीनों शक्तियों का उपयोग करता ही, भाषा को चरमबिन्दु तक खींचकर लाना ही

---

१. बी० बी० सी० लिस्टनर : जॉर्ज स्टीनर, दि रिट्रिएट फ्राम दि वर्ड।

भाषा की विविध अन्तःशक्तियाँ है। काव्य में इसलिये भाषा का पक्ष अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाता है और विशेषकर आधुनिक शैली वैज्ञानिक दृष्टि से।

नयी कविता ने शिल्प के क्षेत्र में जो चमत्कारपूर्ण अन्वेषण किये हैं, उनके कारण लोग उसे रूपवाद के अर्थ में ग्रहण करने लगे हैं, पर शिल्प को महत्व देना इस कविता का एक अंश मात्र है। भाषा के प्रयोग में छायावाद के घिस गए संस्कारहीन शब्दों को छोड़कर उन्होंने गम्भीर, कर्कश और परुष शब्दों का उपयोग किया, और साथ ही लोकतत्वों से युक्त जनभाषा की पदावली भी अपनाई। उसका कथ्य नया और भावबोध नया है, जिसकी अभिव्यक्ति के लिए नूतन शब्दावली, नूतन पद-प्रयोग एवं कथन शैली के नये-नये ढंग अपेक्षित हुए। ''नकेन'' के समर्थ कवि केसरी कुमार ने इस प्रयोग की आवश्यकता बतलाते हुए लिखा है—

''थोड़ी दूर तक सामाजिक विनिमय में शब्द मुद्राओं की तरह है। घिसी मुद्राओं को फिर से ढालना पड़ता है, और बदली स्थिति के साथ उन पर नये चेहरे भी लगाने पड़ते हैं। चूँकि आसंग संगति स्वर संस्कार इत्यादि रूढ़िबद्ध प्रयोग में कविता के असंख्य शब्द अलंकार चित्र घिस-पिट कर पूरे वजन का अर्थ नहीं दे रहे हैं, और उसमें निश्चयात्मकता का अभाव हो गया है, इसलिये प्रयोगवादी कवि उनका संस्कार कर रहा है, कुछ नये गढ़ रहा है, और इस प्रकार अपने शब्दों, अलंकारों और चित्रों को निश्चयात्मक रखने की कोशिश कर रहा है। भाषा की थकान को दूर करने के लिये, उसमें नई ताजगी भरने के लिए तथा उसे नये आवेगों एवं आसंगों के उपयुक्त बनाने के लिए वह शब्दों को नई व्यवस्था, स्वर विधान एवं नई शब्द-संगति का निर्माण कर रहा है। विशेषणों का स्थानान्तर तथा शब्द लोपी वाक्य-विन्यास प्रस्तुत कर रहा है।''[1]

किसी भी कृति का संरचनात्मक विश्लेषण करने के लिये भाषा की संरचना की जानकारी आवश्यक है। इस अध्याय के अन्तर्गत सर्वप्रथम ''वाक्य-विन्यास'' जो कि भाषा की सबसे बड़ी और प्रमुख इकाई है, का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् पदबन्ध, शब्द-चयन, शब्दसंगीत आदि का वर्णन विश्लेषित है जिससे भाषा का समग्र ढाँचा स्पष्ट हो जाता है। डॉ० विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है :—

''काव्य भाषा का विश्लेषण काव्यगत सन्दर्भों के ऊपर आधृत होने के कारण सामान्य भाषा के विश्लेषण की अपेक्षा अधिक गणितीय और विच्छिन्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता। काव्य भाषा में वाक्य-गठन केवल घटक वाक्य खंडों से ही पूरा नहीं होता, और न वाक्यार्थ की संगति से ही मर्यादित रहता है : काव्य-भाषा का गठन विभिन्न पदांशों-प्रत्ययों विभक्तियों की आवृत्ति के द्वारा अर्थ की प्राचीर तैयार करता है।''[2]

---

१. नकेन के प्रपद्य पत्पद्य, पृ० १४४।
२. रीतिविज्ञान, डा० विद्यानिवास मिश्र, पृ० ७४।

(क) वाक्य-विन्यास

विचारों के आदान-प्रदान के लिए भाषा प्रमुखतम साधन होती है। वाक्य भाषा की प्रमुखतम इकाई है, जब भी हमें विचार व्यक्त करना होता है, तब हम वाक्यों को माध्यम बनाते हैं। एक ही बात अनेक प्रकार से व्यक्त की जाती है, वह बात एक सूक्ष्म वाक्य से भी पूरी हो सकती है, और अनेक वाक्यों में फैलाकर भी व्यक्त की जा सकती है। एक बात जो प्रश्नवाचक वाक्य के माध्यम से व्यक्त हो सकती है, उसी बात को आज्ञार्थक वाक्य अथवा साधारण कथन के माध्यम से भी व्यक्त किया जा सकता है :-

(१) क्या मुझे रोटी मिलेगी ? (प्रश्नवाचक वाक्य)
(२) मुझे रोटी दीजिये ? (आज्ञार्थक वाक्य)
(३) मुझे भूख लगी है। (साधारण वाक्य)

इन तीनों उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि एक ही अभिप्राय को व्यक्त करने के लिये वक्ता के पास कई विकल्प होते हैं। वक्ता अपनी बात जिस रूप में, वाक्यों में जिस शब्द पर अधिक बल देकर व्यक्त करता है। उसके लिये वाक्य के प्रकारों घटकों का अध्ययन और उसके स्वरूप को विश्लेषित करना आवश्यक हो जाता है।

वाक्य बहुधा तीन प्रकार के होते हैं—

(१) साधारण वाक्य

जिस वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय रहता है, उसे साधारण वाक्य के नाम से जाना जाता है। कवि माथुर की कविताओं में ऐसे वाक्य प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, जिनमें एक उद्देश्य और एक विधेय रहता है, जैसे—

"अमलतास खिल गया"[1]
"सूरज डूब गया"[2]
"पंछी घर आये"[3]
"जिन्दगी है भार हुई"[4]

प्रथम वाक्य में संज्ञा, दो अकर्मक क्रियाओं का प्रयोग करके वाक्य बनाया है। दूसरे वाक्य में संज्ञा, क्रिया और सहायक क्रिया का प्रयोग किया है। तीसरे वाक्य में संज्ञा+कर्म+क्रिया का प्रयोग किया है। चौथे वाक्य में संज्ञा+सहायक क्रिया और अकर्मक क्रिया का प्रयोग किया है।

१. कोतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ३७।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ४४।
३. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ४५।
४. जो बंध नहीं सका, माथुर, पृ० ३०।

(२) मिश्र वाक्य

जिस वाक्य में मुख्य उद्देश्य और मुख्य विधेय साथ-साथ एक या एक से अधिक समापिका क्रियायें रहती हैं, उसे मिश्र वाक्य कहते हैं। कवि माथुर की कविता में यह विशेषता भी मिलती है, उदाहरण द्रष्टव्य है—

"दुःख की सत्ता मर जायेगी, पीले बासी फूलों-सी"[1]

इस वाक्य में दुःख की सत्ता का मर जाना मुख्य उद्देश्य है, और पीले बासी फूलों जैसी उस सत्ता का होना मुख्य विधेय से बनने वाले वाक्य पर आश्रित है। उस आश्रित उपवाक्य का स्वयं में कोई भी सार्थक अर्थ नहीं निकलता, उस सार्थक अर्थ के लिये "दुःख की सत्ता मर जायेगी" वाले वाक्य के साथ शेष उपवाक्य आश्रित हैं, इसलिये दूसरे प्रकार का वाक्य मिश्रित कोटि का उनकी कविता में प्रमुख रूप से मिलता है।

(३) संयुक्त वाक्य

जिस वाक्य में साधारण अथवा मिश्र वाक्यों का मेल रहता है, उसे संयुक्त वाक्य कहते हैं। संयुक्त वाक्य के मुख्य वाक्य को समानाधिकरण उपवाक्य में स्वीकार करते हैं, क्योंकि वे एक दूसरे के आश्रित नहीं रहते हैं। कवि माथुर के काव्य में इस प्रकार के प्रयोग कम मिलते हैं :—

"अविरल चलता विकास का क्रम वह पास लिये आता है—
मनुज समाज नया"[2]

इस वाक्य में दो साधारण वाक्य हैं, जिन्हें कवि ने इस ढंग से गूँथा है, वे दोनों एक दूसरे पर आश्रित से प्रतीत होते हैं, और इसी प्रकार के संयुक्त वाक्य उनकी कविताओं में कम मिलते हैं।

भाषा में घटकों की अवधारणा

भाषा के अधिकांश वाक्य किसी न किसी भाव को व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार के शब्द भी जिससे वाक्य बनता है, व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न दो तरह के होते हैं। अव्युत्पन्न शब्दों के अर्थ व्याकरण सम्मत कोश से उतने स्पष्ट नहीं जाने जा सकते जितने कि उनके प्रयोग से। कविता में वाक्य-रचना का अध्ययन और भी कठिन हो जाता है। व्याकरण के नियमों से दर्द, फूल, भावना, ईंट, कटुता आदि शब्दों के अर्थ कोशगत तो प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु कविता के वाक्य में प्रयुक्त इन शब्दों का अभिधा और लक्षणा से अर्थ काफी दूर हो जाता है। इसलिये इन वाक्यों का अध्ययन परम्परागत व्याकरणिक वाक्य घटकों के आधार पर नहीं किया जा सकता है।

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० २१।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० २१।

वाक्यों में अर्थसाम्य और अर्थभेद होने पर भी व्याकरण का निर्वाह तो रहता है, पर वाक्यों का गठनात्मक रूप बदल जाता है। इस बदले हुए रूप का अध्ययन प्रयोगशील कविता के लिये अपरिहार्य हो जाता है।

(१) "केसर के वसनों में छिपा तन"[१]
(२) वसनों में केसर के छिपा तन
(३) छिपा रहा तन केसर के वसनों में
(४) क्या केसर के वसनों में छिपा तन
(५) क्या केसर के वसनों में नहीं छिपा तन
(६) केसर जैसा वसनों में छिपा हुआ क्या

इन वाक्यों में परस्पर अर्थ-साम्य भी है, और अर्थ-भेद भी। इन सभी वाक्यों में एक ही क्रिया का अथवा व्यापार का उल्लेख है। इस व्यापार में तन का केसर जैसे वसनों में छिपे होने के बीच सम्बन्ध है। केसर और वसन यहाँ कर्त्ता के रूप में है, तथा तन कर्म के रूप में। इन वाक्यों में परस्पर अर्थभेद भी मिल रहा है, पहले और दूसरे वाक्य में साधारण कथन है, इसमें कर्त्ता प्रथम स्थान पर आया है, और तीसरे वाक्य में कर्म प्रमुख कर्त्ता के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है, और कर्त्ता एकदम पीछे चला गया। ऊपर उदाहरण नं० (४) प्रश्नवाचक और उदाहरण नं० (५) निषेधवाचक और असमर्थता का द्योतन कराने वाले हैं। वहीं वाक्य नं० (६) में तुलनावाची शब्दों का प्रयोग करके वाक्य को जहाँ स्पष्ट किया गया है, वहीं सन्देह भी व्यक्त हुआ है। इन वाक्यों से यह स्पष्ट होता है कि वाक्य का वह अर्थ जो वाक्य में संज्ञा और क्रिया के सम्बन्धों पर निर्भर करता है, इससे वाक्य के दो अर्थ स्पष्ट होते हैं। पहले प्रकार के अर्थ का सम्बन्ध वाक्य की कारक व्यवस्था से है, और कारक व्यवस्था वाक्य की मुख्य क्रिया पर निर्भर होती है, अन्य अर्थ प्रयोक्ता पर निर्भर करते हैं। लक्षणा में मानसिक और भौतिक स्थिति पर निर्भर होता है। वाक्य में क्रिया का चुनाव भी प्रयोक्ता पर निर्भर करता है। कहीं-कहीं काव्य में क्रिया के चुन लेने पर भी वाक्य की कारक व्यवस्था उससे बँधी हुई आ जाती है। कविता में इसका प्रतिहार करने पर भी वाक्य में किस शब्द पर विशेष बल देना है, क्रिया किस काल में प्रयुक्त हो, व्यापार की कौन सी अवस्था हो। वाक्य स्वीकारात्मक हो अथवा निषेधात्मक आदि विकल्पों पर वाक्य की क्रिया का नियंत्रण प्रभावशाली है, अथवा नहीं। इन सभी का कविता के वाक्य-विश्लेषण में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है, और उस समय जब प्रयोगोन्मुखी नयी कविता, काव्य, भावबोध, अभिव्यक्ति, नूतन शब्दावली, पद-प्रयोग, कथन शैली में नये-नये प्रयोगों के रूप में गढ़ी जा रही है, उस समय भाषाई शिल्प का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है।

वाक्य में कुछ घटक अनिवार्य होते हैं, और कुछ ऐच्छिक। जिन घटकों के बिना वाक्य अपूर्ण रह जाता है, उनको अनिवार्य घटक कहते हैं।

---

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० १११

अकर्मक क्रिया से बने वाक्य में क्रिया के अतिरिक्त कर्त्ता और कर्म का स्थान अनिवार्य होता है। मायुर जी की कविताओं में द्विकर्मक क्रिया से बने वाक्यों में क्रिया के अतिरिक्त अन्य घटकों की स्थिति भी अनिवार्य सी होती है। कर्त्ता, कर्म तथा सम्प्रदान भी मिलते हैं। काव्य भाषा में कोई घटक ऐच्छिक है, अथवा अनिवार्य इसका निर्णय वाक्य के आधार पर ही किया जाता है। एक ही घटक एक वाक्य के लिये अनिवार्य हो सकता है, तो दूसरे वाक्य के लिये ऐच्छिक हो सकता है -

"सूरज डूब गया"[1]

(क) सायंकाल सूरज डूब गया।

(ख) सायंकाल डूब गया।

प्रथम वाक्य में सूरज अनिवार्य घटक है, और द्वितीय वाक्य में सायंकाल ऐच्छिक घटक है, क्योंकि सायंकाल में ही सूरज डूबता है। इस वाक्य में अनिवार्य घटक सूरज का क्रिया घटक डूब गया से सम्बन्ध है। सायंकाल ऐच्छिक घटक के रूप में इस वाक्य में मिलता है। वाक्य क्रमांक (२) में सायंकाल अनिवार्य घटक के रूप में प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि इस वाक्य का कर्त्ता छुपा हुआ है, जिसका क्रिया के साथ सम्बन्ध है। सायंकाल घटक का लक्षणागत भावार्थ सूर्य के लिये होने के कारण भाव में बाधा नहीं पड़ती, और सायंकाल से सूरज का अस्तित्व अनुभव हो जाता है। इसलिये सायंकाल इस वाक्य में अनिवार्य घटक के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जबकि दूसरे वाक्य में ऐच्छिक घटक के रूप में।

वाक्य में कितने घटक होंगे, कितने वैकल्पिक, ये दोनों बातें क्रिया पर निर्भर करती हैं। क्रिया न केवल वाक्य में आने वाले घटकों की संख्या पर निर्भर करती है, अपितु घटकों के कारकीय सम्बन्धों को भी नियन्त्रित करती है। अकर्मक, सकर्मक तथा द्विकर्मक क्रियाओं मे उत्तरोत्तर एक अधिक घटक लेने की क्षमता होती है। इस प्रकार से दोनों प्रकार के कारकों में भी अन्तर आ जाता है।

"जीवन की पियरी केसर कभी चुके नहीं"[2]

(क) पियरी केसर कभी चुके नहीं।

इन वाक्यों में कारक के कारण अर्थ में भी अन्तर आ गया है। कविता में वाक्य को स्पष्ट करने के लिये कई कारकों का भी प्रयोग करना पड़ता है—

"चैत के अन्तिम चरण की साँझ धुंधली हो गई है"[3]

यहाँ चैत के और अन्तिम चरण की इन अतिरिक्त घटकों के माध्यम से लक्षणा को सजीव बनाने का प्रयत्न माथुर जी की कविताओं में मिलता है, वहीं भाषा की सामासिक प्रवृत्ति का रूप भी उनकी कविताओं में ओझल नहीं होने पाया है।

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ४४

२. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ६।

३. धूप के धान, माथुर, पृ० ५६।

"क्रीमसैंट की जहाँ मिठास उड़ा करती है"[1]

इस वाक्य में सम्बन्धवाची 'और' का लोप करके भाषा की समास शक्ति का रूप मिलता है। इसी प्रकार—

"वहाँ विश्व-जय हुई प्यार के एक घूंट से"[2]

इस वाक्य में विश्व की जय या विश्वमेंजय का प्रयोग न करके संकेत चिह्नों का प्रयोग करके कवि ने घटकों की संख्या को नियंत्रित करने का प्रयत्न भी किया है।

वाक्य में संज्ञा का क्रिया से जो सम्बन्ध होता है, उसी को कारक कहते हैं—वस्तुतः कारक सम्बन्ध आर्थी सम्बन्ध है।

"प्रिय की याद ताजा है"[3]

इस वाक्य में प्रिय कर्ता कारक है, और इसी की याद ताजा है, इस कर्ता का क्रिया के साथ सम्बन्ध है। याद कर्म है, वह क्रिया के साथ कर्ता के सम्बन्ध को जोड़ने वाला है, इसलिये वह कर्म है। इस प्रकार से क्रिया के निष्पन्दन में सहायक कर्ता का प्रयोग माथुर जी की कविताओं में मिलता है।

कविता में क्रिया एक साधारण धारणा ही नहीं होती, वह अनेक उपक्रियाओं का समुच्चय होती है। इन उपक्रियाओं में कौन-सी उपक्रिया कब प्रधान बनेगी, यह विशिष्ट काव्यकार की विवक्षा से जुड़ा हुआ प्रश्न है। उदाहरणार्थ—

"पंचमी की चाँदनी में याद आती है"[4]

(क) चाँदनी में याद आती है।

(ख) याद आती है।

इन वाक्यों में अनेक क्रियाओं का समुच्चय है। जैसे—पंचमी का होना, चाँदनी का निकलना, और याद का आना। मुख्यतः यह सभी क्रियाएं छिपी हुई हैं, याद आती है, में यह क्रियाएं समा गई हैं। इसमें वक्ता या कवि जिस क्रिया को महत्ता देना चाहता है, वह है "आती है"। इसके साथ पंचमी का होना, चाँदनी का निकलना व्यापार के सम्बन्ध हैं, जिन्हें कर्ता बनाकर क्रियाओं को गौण कर दिया है। पहले दो वाक्य में पंचमी की और चाँदनी में सम्बन्धवाची संज्ञा और अधिकरण वाची संज्ञा कर्ता का द्योतन करा रही हैं, वही वाक्य में मुख्य बात याद आती है, में याद संज्ञा की तरह कार्य कर रही है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कविता में प्रत्येक वाक्य और उसके घटक यथा संज्ञा, क्रिया, सर्वनाम, क्रिया विशेषण, और कारक चिह्नों की बहुत

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ८६-८७।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ४३।
३. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० २५।
४. छाया मत छूना मन, माथुर, पृ० २१।

महत्वपूर्ण भूमिका होती है, वह अपने सहवर्ग घटकों के साथ प्रयुक्त होकर वाक्य को अर्थगत दृष्टि से एक नया रूप प्रदान करने में सक्षम होते हैं।

कोई काव्य-भाषा परम्परागत व्याकरणिक चौखटे में कसी हुई भाषा के रूप में नहीं होती। विचलन की सम्भावनाओं को प्रयोगशील कविता में नकारा नहीं जा सकता है, इसलिये विचलन के प्रभाव से कविता में प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिये कवि अनेक नये प्रयोग करता है, अनेक नये चौखटे प्रस्तुत करता है, जिससे वह अपने भावों को संप्रेषित कर सके। इस प्रेषण में अर्थगत सौन्दर्य और प्रयोगशील धर्मिता भाषा को एक नया रूप प्रदान करती है। इस दृष्टि से भी उनकी काव्य भाषा में वाक्य साँचों को देखना एक महत्वपूर्ण उपादान होता है।

वाक्य-साँचा

माथुर जी की कविताओं में वाक्यों का अध्ययन करने के लिये अनेक जटिलताओं का सामना करना पड़ता है, इसका कारण है कि कविता में विविध भावों को व्यक्त करने के लिये भाषा अनेक रूपों में नये-नये आवरण पहनती हुई दिखाई देती है। प्रयोगशील कवि ने अपने वाक्यों की रचना में अनेक प्रकार के रूपों का प्रयोग किया है, परन्तु हमने उनके वाक्यों का अध्ययन करके कुछ प्रमुख साँचों को ही चुना है, जैसे —

(१) संज्ञा + क्रिया
(२) संज्ञा + कर्म + क्रिया
(३) संज्ञा + विशेषण + क्रिया
(४) संज्ञा + सर्वनाम + क्रिया
(५) संज्ञा + क्रियाविशेषण + क्रिया
(६) सर्वनाम + संज्ञा + क्रिया
(७) सर्वनाम + विशेषण + संज्ञा + क्रिया
(८) क्रिया + संज्ञा
(९) विशेषण + संज्ञा + क्रिया
(१०) क्रियाविशेषण + संज्ञा + क्रिया।

इन समस्त मुख्य साँचों के विश्लेषण का उद्देश्य है कि हम कवि माथुर की भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था को व्यक्त करने वाली प्रतिनिधि अभिव्यक्ति को जान सकें। सूक्ष्मतम भेदों और उपभेदों को यदि विवेचित किया जाय तो यह संख्या बहुत अधिक हो जाती है, जिस पर कि स्वतंत्र रूप से एक लघु शोध प्रबन्ध हो सकता है। अतः उन समस्त प्रयोगों के फैलाव को व्यक्त न करते हुए उनके कुछे हुये प्रतिनिधि साँचों को ही यहाँ व्यक्त किया गया है। वे समस्त साँचे निम्न रूप से उनकी कविताओं के आधार पर निर्धारित किये जाते हैं—

(१) संज्ञा + क्रिया

कवि माथुर की कविता का सबसे छोटा साँचा जो बनता है, वह है संज्ञा + क्रिया। संज्ञा और क्रिया के द्वारा वे अपनी बात कहने में सक्षम दिखाई देते हैं। इसी साँचे में कुछ वाक्यों में संज्ञा और क्रिया से अर्थ की स्पष्टता नहीं हो पाती, तब कवि को विशेषण का प्रयोग भी करना पड़ता है। कवि की कविता में कभी-कभी एक क्रिया का प्रयोग वाक्य की स्पष्टता के लिये पर्याप्त नहीं होता, तब अन्य क्रियाओं का सहयोग भी वाक्य में अपेक्षित प्रतीत होता है। यही नहीं, कुछ वाक्य इतने अधिक फैल जाते हैं कि दो-दो संज्ञायें, क्रिया, विशेषण की आवश्यकता भी पड़ती है। इन वाक्यों के गठन में कारकीय चिह्नों का प्रयोग भी कर्ता और कर्म के साथ विभिन्न विभक्तियों में मिल जाता है। व्याकरणिक गठन की दृष्टि से संज्ञा + क्रिया का द्योतन करने वाले ढाँचे के अन्तर्गत विभिन्न व्याकरणिक व्यवस्थाओं की सूचना देने वाले निम्न प्रकार से मिलते हैं।

"रात हुई"[१]

इस वाक्य में रात संज्ञा है, और हुई क्रिया। इनमें किसी भी प्रकार के अतिरिक्त संज्ञा और सहायक क्रिया का प्रयोग नहीं किया गया है। "रात हुई" के स्थान पर "रात हो गई है" यदि इस वाक्य का प्रयोग किया जाता तो भाषा गद्य की सी होती। सहज रूप से होने वाली दिनांत के बाद रात की जिस प्रक्रिया का बोध "रात हुई" से होता है, वह 'रात हो गई" जैसे वाक्यों से न हो पाता।

"अमलतास खिल आया"[२]

इस वाक्य में संज्ञा क्रिया और सहायक क्रिया का प्रयोग किया गया है। यहाँ कवि ने "अमलतास खिल आया" इस वाक्य में "आया" क्रिया का प्रयोग इसलिये किया प्रतीत होता है क्योंकि इससे उसे अपनी तपन और घबराहट भरी पारिवारिक जिन्दगी में राहत की तात्कालिक अनुभूति होती है। अगर वह "आया" के स्थान पर "गया" क्रिया का प्रयोग करता तो "गया" क्रिया यह अनुभूति न कराती, अपितु बीती हुई बात हो जाती।

"जिन्दगी है भार हुई"[३]

यह वाक्य संज्ञा, सहायक क्रिया, विशेषण और क्रिया से बना है। "है" का प्रयोग जिन्दगी के निश्चयात्मक रूप से भार होने का अधिकाधिक बोध कराने के लिये प्रतीत होता है। इसीलिए कवि ने केवल यह नहीं कहा कि "जिन्दगी भार हुई।"

"वक्त की सलाई बुझी आती है"[४]

---

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ४५।
२. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ३७।
३. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ३०।
४. साक्षी रहे वर्तमान, माथुर, पृ० १५।

प्रस्तुत वाक्य सम्बन्धवाची संज्ञा, संज्ञा, क्रिया और सहायक क्रिया से निर्मित है। इस वाक्य में कवि "बुझी जाती है", क्रियाओं के स्थान पर "बुझ रही है" अथवा "बुझने को है" क्रियाओं के विकल्प का प्रयोग भी सोच सकता था। किन्तु उसने ऐसा नहीं किया, क्योंकि "बुझी जाती है" कहने से मनुष्य को जल्दी-जल्दी अपना कर्तव्य-निर्वहन करने की जो बात कही गई है, वह अन्य क्रियाओं से पूरी न हो पाती, तथा उसमें उतनी तीव्रता और आकुलता का भाव न आता।

"खत हवा की लहर सा आजाद है"[1]

इस वाक्य में संज्ञा, सम्बन्धवाची संज्ञा, तुलनावाची संज्ञा, फिर संज्ञा तथा सहायक क्रिया का प्रयोग किया गया है। एक वाक्य में चार-चार संज्ञाओं का प्रयोग कवि के अभूतपूर्व कौशल का परिचायक है। इस काव्य-पंक्ति को यदि कवि "है हवा की लहर सा आजाद खत" अथवा "खत हवा की लहर सा आजाद होता है", इस रूप में लिखता, तो इस पूरे छन्दबन्ध में वो प्रवाह, लय और संगीतात्मकता न आ पाती, जो प्रस्तुत पंक्ति के प्रयोग में है। दूसरे पंक्ति में सर्वप्रथम "खत" संज्ञा के प्रयोग से कवि यह भी इंगित कर रहा है कि उसके वर्ण्य विषय का केन्द्र "खत" ही है।

(२) संज्ञा+कर्म+क्रिया

कवि माथुर की कविताओं में इस प्रकार के वाक्य अल्प मात्रा में मिलते हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

"पंछी घर आये"[2]

इस वाक्य में सर्वप्रथम संज्ञा, कर्म और क्रिया का प्रयोग स्पष्ट है। इस वाक्य के स्थान पर "आये घर पंछी", "घर आये पंछी" अथवा "पंछी घर को आये" आदि वाक्य भी कवि प्रयुक्त करने पर विचार कर सकता था। किन्तु "पंछी घर आये" कहने में जो पक्षियों की रात होने पर स्वतः अपने-अपने घोंसलों में लौट आने की बात है, वह अन्य वाक्यों से अभिव्यक्त न हो पाती। कवि के कथन में उन-उन प्रकार के वाक्यों के प्रयोग से वो लय और प्रवाह भी न आ पाता, जो कि "पंछी घर आये" कहने से आता है। "पंछी घर आये" कहने से पक्षियों के उड़ते हुए घर आने का एक गतिमान, मूर्त चित्र भी सामने उपस्थित होता है।

"चाँदनी की कली खिलती"[3]

इस वाक्य में सम्बन्धवाची संज्ञा, फिर कर्म तथा क्रिया का प्रयोग किया गया है। "चाँदनी की कली खिलती है" या "है चाँदनी की कली खिलती" अथवा "खिलती है चाँदनी की कली" इस तरह से भी वाक्य लिख सकते हैं। अन्त में "है" क्रिया के

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० २७।
२. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ४५।
३. धूप के धान, माथुर।

प्रयोग से सदाशक्तता आ जाती है, जो कि काव्य भाषा के विरुद्ध है। इसलिए "चाँदनी की कली खिलती" यह वाक्य सही है।

(३) संज्ञा + विशेषण + क्रिया

कवि माथुर की कविता में संज्ञा के साथ एक ही विशेषण आता हो, ऐसा नहीं है, दो-दो विशेषणों का प्रयोग भी वाक्यों में मिलता है। जिन वाक्यों में दो संज्ञाओं के बीच में विशेषण का प्रयोग मिलता है, वह एक ओर दो वाक्यों को एक वाक्य में समाविष्ट करते हैं। वहीं दूसरी ओर वाक्य के मर्म को भी स्पष्ट करने में सहयोग देते है। कुछ वाक्य इतने फैल जाते हैं कि दो-दो विशेषण एक ही वाक्य में दूर-दूर स्थान पर प्रयुक्त होते हैं, और वाक्य की प्रभावशालिता को और तीखी व्यंजना के साथ व्यक्त करने में सक्षम प्रतीत होते हैं। इस सचि के अन्तर्गत मिलने वाले रूप इस प्रकार है—

"जीवन अपाहिज है"[1]

इस वाक्य की रचना संज्ञा, विशेषण, सहायक क्रिया से हुई है। इस वाक्य को यदि कवि यों कहता कि "जीवन है अपाहिज" या "हो गया है जीवन अपाहिज" अथवा "है जीवन अपाहिज" तो एक लम्बे अरसे से जो रोगी अपाहिजपन की दशा को प्राप्त हो गया है, और जो दशा उसके जीवन की एक विवश स्थायी स्थिति बन गई है, वह व्यक्त न हो पाती।

"आइना नन्हा बने"[2]

वाक्य की संरचना में संज्ञा, विशेषण और क्रिया का प्रयोग किया गया है। इस वाक्य को यदि कवि इस प्रकार प्रस्तुत करता कि "नन्हा आइना बने" अथवा "बने आइना नन्हा" या "बने आइना नन्हा" तो खत का जो नन्हापन है, वह उतना उभरकर सामने नहीं आता जो "आइना नन्हा बने" से आता है और लय व तुक में भी बाधा पड़ती।

"दुनिया एक मिट गई"[3]

प्रस्तुत वाक्य संज्ञा, गणनावाचक विशेषण, क्रिया और सहायक क्रिया से निर्मित है। पंक्ति में कवि दुनिया संज्ञा को सर्वप्रथम इसलिए प्रयुक्त कर रहा प्रतीत होता है जिससे कि वह दुनिया संज्ञा के माध्यम से अपनी जिस दुनिया की बात कहना चाहता है, उस पर सर्वाधिक बल दे सके। "एक" विशेषण का प्रयोग किसी विशिष्ट दुनिया के लिये किया गया है, उसकी सार्थकता स्पष्ट है। इसी वाक्य को "एक मिट गई दुनिया" अथवा "गई एक मिट दुनिया" कहता तो यद्यपि पंक्ति में भाषा दोष तो कोई न आता, किन्तु वह जो "दुनिया" संज्ञा पर बल देना चाहता है, वह न हो पाता।

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० २२।
२. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ३०।
३. छाया मत छूना मन, माथुर, पृ० १४।

"ज्वार भरा सागर लहराता"[१]

इस वाक्य में संज्ञा, विशेषण, संज्ञा, क्रिया और सहायक क्रिया का प्रयोग किया गया है। ऊपर की पंक्ति को यदि कवि "लहराता है ज्वार भरा सागर" अथवा "सागर लहराता है ज्वार भरा" या "ज्वार भरा लहराता है सागर", इन रूपों में कहता तो उसमें भाषा दोष तो न होता परन्तु दूर-दूर तक लहराते हुए अनंत सागर का जो एक चित्र ऊपर के वाक्य से आँखों के सामने आता है, वह प्रभाव व्यक्त न हो पाता।

(४) संज्ञा + सर्वनाम + क्रिया

कवि की कुछ कविताओं में एक ही क्रिया का द्योतन कराने वाले संज्ञा और सर्वनाम का उल्लेख है। इस वाक्य में से संज्ञा को हटा दें, तब अर्थ अस्पष्ट रह जाता है, इसलिए संज्ञा पद की महत्ता स्वतः हो जाती है।

"संघर्ष का यह लोक है"[२]

यह पंक्ति संबंधवाची संज्ञा, सर्वनाम, संज्ञा एवं सहायक क्रिया से निर्मित है। ऊपर की पंक्ति के स्थान पर "है लोक यह संघर्ष का", "यह लोक है संघर्ष का" अथवा "संघर्ष का है लोक यह" आदि वाक्यों का प्रयोग भी कवि कर सकता था, किन्तु उसने एक साधारण वाक्य के रूप में ही इस पंक्ति को रखा है। संसार के संघर्षमय स्वरूप पर बल देने के लिये "संघर्ष" संज्ञा को सबसे पहले रखना ही सार्थक था। उसी प्रकार इस लोक को संघर्षमय बताने के लिए "लोक" संज्ञा के पहले ही "यह" विशेषण रखना सार्थक था। इस संज्ञा तथा विशेषण को पंक्ति में इधर-उधर रखने से वांछित भाव तथा विचार की उतनी बलपूर्वक अभिव्यक्ति न हो पाती।

"याद यह हो आई मुझको पुरानी"[३]

इस पंक्ति में संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, सर्वनाम, और विशेषण का जो प्रयोग हुआ है, वह यदि "हो आई यह मुझको याद पुरानी" अथवा "याद हो आई मुझको पुरानी" "हो आई मुझको पुरानी याद यह" आदि-आदि रूपों में भी पंक्ति बन सकती थी, किंतु यहाँ "याद यह हो आई मुझको पुरानी" "याद" के बाद "यह" सर्वनाम किसी विशिष्ट याद की ओर संकेत करता है। संकेतवाचक सर्वनाम का प्रयोग एक विशिष्ट संदर्भ में प्रयोग करके एक विशेष व्यंजना की ओर वाक्य का संकेत मिल जाता है।

(५) संज्ञा + क्रिया-विशेषण + क्रिया

कुछ कविताओं में संज्ञा के साथ क्रिया-विशेषण का प्रयोग होता है। इस प्रकार के वाक्यों में यदि संज्ञा शब्द हटा दिये जायें तो क्रिया-विशेषण ही संज्ञा की तरह

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ४३।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ५१।
३. छाया मत छूना मन, माथुर, पृ० ३६।

व्यवहार करेगा। ऐसे वाक्यों में फैलाव अधिक मिलता है। और अनैच्छिक घटकों की संख्या भी अनेक होती है। कविता में जहाँ अनैच्छिक घटकों की संख्या अधिक होती है, वहाँ अर्थछटा की संभावना और भी अधिक रहती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

"मन में जो विराजा वह लेता आकार है"[1]

इस वाक्य की रचना अधिकरणवाची संज्ञा, क्रियाविशेषण, क्रिया, सर्वनाम, क्रिया, संज्ञा और सहायक क्रिया से हुई है। इस ऊपर की पंक्ति में यदि "जो" क्रिया-विशेषण को विचलित कर विराजा के बाद लिखा जाता अथवा अन्यत्र, तो कवि अपने मन में जिसके पहले से ही विराजने पर बल देना चाहता है, और यह कहना चाहता है कि मन के भाव ही आकार लेते हैं, उस बात पर उतना बल न दे पाता।

"महलों का जब स्वप्न अधूरा पूर्ण हुआ था"[2]

इस वाक्य की रचना में सर्वप्रथम सम्बन्धवाची संज्ञा, क्रिया विशेषण कर्म, विशेषण, क्रिया और सहायक क्रिया का प्रयोग किया गया है। पंक्ति में कवि उस अधूरे स्वप्न के पूर्ण होने की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित कराना चाहता है, जो बुद्ध ने महलों में देखा था। इसलिए यहाँ "महलों" संज्ञा का वाक्य में सबसे पहले स्थान पर प्रयोग ही सार्थक है। अगर कवि ऊपर की पंक्ति को इस प्रकार लिखता कि "जब महलों का स्वप्न अधूरा पूर्ण हुआ था" तो उसमें जब शब्द के कारण समय का बोध होता, महलों का नहीं। "जब" के स्थान पर जो शब्द प्रयुक्त होता तो मात्र दोष तो न आता, परन्तु फिर "स्वप्न" पर बल आ जाता।

(६) सर्वनाम + संज्ञा + क्रिया

कवि माथुर की कविताओं में कर्त्ता के स्थान पर सर्वनाम का प्रयोग भी मिलता है। इन वाक्यों में एक मुख्य क्रिया के साथ-साथ दो संज्ञाओं का प्रयोग भी मिलता है। ऐसे वाक्यों की संख्या कविताओं में बहुत कम है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

"मैंने विष के बान सहे थे"[3]

सर्वनाम, संज्ञा, संज्ञा क्रिया आदि के संयोजन से वाक्य बना है। इसी वाक्य को दो तरह से भी लिख सकते हैं "मैंने बान सहे थे विष के", "बान सहे थे विष के मैंने"। दोनों वाक्यों में क्रमशः सम्बन्धवाची संज्ञा और सर्वनाम को अन्त में रख दिया गया है। लेकिन "विष के बान" यहाँ बान की विशेषता के लिये विष को लिखा गया है, यदि एक भी शब्द आगे पीछे कर दें, तो अर्थ का अनर्थ हो जायेगा, सर्वनाम "मैंने" का प्रयोग भी कवि की वेदना की पूर्ण स्थिति को व्यक्त करता है।

---

१. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ७२।

२. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ४९।

३. छाया मत छूना मन, माथुर, पृ० ५२।

"ये जीवन के पहिये घूम रहे हैं"।[1]

यह वाक्य संकेतवाचक सर्वनाम, सम्बन्धवाची संज्ञा, संज्ञा, क्रिया और सहायक क्रिया से बना है। "जीवन के पहिये ये घूम रहे हैं", "पहिये घूम रहे हैं ये जीवन के" दोनों वाक्यों में अन्तर है, प्रथम वाक्य में "है" सहायक क्रिया का प्रयोग ज्यादा जरूरी प्रतीत नहीं होता वाक्य सही है, दूसरे वाक्य में "ये" सर्वनाम का प्रयोग वाक्य के बीच में किया गया है। लेकिन जो विशिष्ट अर्थ सर्वनाम "ये" का शुरू में हो रहा है, वह मध्य में नहीं। "ये" किन्हीं विशेष "जीवन" के "पहियों" की ओर संकेत है।

(५) सर्वनाम + विशेषण + संज्ञा + क्रिया

कवि की कविताओं में कर्त्ता के स्थान पर सर्वनाम का प्रयोग भी मिलता है। इस प्रकार के वाक्य मे ऐच्छिक और अनैच्छिक घटकों की संख्या मिलती है। अनैच्छिक घटकों के कारण वाक्य में फैलाव की संभावना अधिक रहती है। इस साँचे के अन्तर्गत एक सर्वनाम के साथ दो विशेषण, दो संज्ञाएँ, क्रिया एवं सहायक क्रिया का प्रयोग भी मिलता है। इस प्रकार के वाक्यों का व्याकरणिक गठन निम्न प्रकार से है :—

"वह मधुर मेहमान है"[2]

सर्वनाम (कर्त्ता) विशेषण, संज्ञा और सहायक क्रिया से वाक्य बना है। ऊपर के वाक्य के स्थान पर "है मेहमान मधुर वह", "है मधुर मेहमान वह" आदि वाक्य बन सकते हैं। लेकिन इन दोनों वाक्यों में है, सहायक क्रिया पहले आई है, फिर "मेहमान" और "मधुर" जिससे कि वाक्य के अर्थ की स्पष्टता नहीं हो पाती। "वह मधुर मेहमान है" इस वाक्य में "वह" शुरू में रखकर कर्त्ता को छुपा दिया गया है, तथा मधुर मेहमान का विशेषण बहुत ही सार्थक है।

"हमारा हर अपराध रफू किया हुआ कोट है"[3]

इस वाक्य की रचना सर्वनाम, गणनावाचक विशेषण, संज्ञा, क्रिया, संज्ञा और सहायक क्रिया से हुई है। ऊपर दिया हुआ वाक्य विशुद्ध गद्यात्मक रूप में लिखा गया है, लेकिन काव्य का सौन्दर्य नहीं नष्ट करता, इस वाक्य से यह सिद्ध होता है कि कवि काव्य में गद्य भाषा का प्रयोग करके भी अपना वाक्य स्वरूप और अर्थ से युक्त कर सकता है। अगर इस वाक्य को हम, यों कहें "हर अपराध है हमारा रफू किया हुआ कोट" ज्यादा सार्थक है।

"मैंने तुम्हें कितनी बार आँसुओं में गाया है"[4]

इस वाक्य में दो सर्वनाम, विशेषण, अधिकरणवाची संज्ञा, क्रिया और सहायक

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० १७।
२. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० २७।
३. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ४३।
४. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ५६।

क्रिया का प्रयोग किया गया है। पंक्ति में आरम्भ में ही "मैंने तुम्हें" दो सर्वनामों का प्रयोग द्रष्टव्य है, इनका एक साथ प्रयोग कवि और उसके आलम्बन के निकटतम सम्बन्धों का द्योतक है। अगर यही पंक्ति "मैंने गाया है तुम्हें आँसुओं में कितनी बार" या "मैंने गाया है तुम्हें आंसुओं में कितनी बार" दोनों सर्वनामों को अलग-अलग करके लिखी जाती तो कवि और उसके आलम्बन के सम्बन्ध में दूरी आ जाती। अतः एक साथ दो सर्वनामों का प्रयोग सार्थक है।

(८) क्रिया + संज्ञा

कवि की कविताओं में यह आवश्यक नहीं है कि वाक्य में सर्वप्रथम संज्ञा, फिर क्रिया, इसके पश्चात् कुछ अन्य आये। उनकी कविताओं में कुछ वाक्य क्रिया से प्रारंभ होते हैं, फिर संज्ञा, विशेषण, आदि का प्रयोग मिलता है। इन वाक्यों में यदि संज्ञा को पहले रख दें, उसके पश्चात् क्रिया को रखें, तब भी वाक्य में अर्थ की संप्रेषणीयता प्राप्त हो जाती है। परन्तु इसका उल्लेख (सबसे पहले सोचे) मे है। यहाँ पर कवि ने क्रिया का पहले प्रयोग करके वाक्य में उद्देश्य की प्रेषणीयता पर अधिक बल मिलता हुआ दिखाई देता है, इस प्रकार से क्रियाएँ वाक्य में प्रारम्भ में आने पर भी वाक्य अटपटा और अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता, अपितु भाव प्रेषणीयता की दृष्टि से वाक्य अधिक सक्षम प्रतीत होता है। क्रिया के साथ व्यवहृत होने वाली व्याकरणिक कोटियों में ऐच्छिक और अनैच्छिक घटकों की व्यवस्था निम्न रूप में मिलती है :—

"थरथराती हुई जिन्दगी"[१]

क्रिया, सहायक क्रिया एवं संज्ञा इनके प्रयोग से यह वाक्य बना है। यदि इस वाक्य को हम "थरथराती हुई जिन्दगी है", "थरथराती है जिन्दगी" कर दें तो अर्थ में अन्तर आ जाता है। प्रथम वाक्य गद्यभाषा के अधिक निकट है। "थरथराती है जिन्दगी" इस वाक्य में "है" के प्रयोग से निरन्तरता का भाव नहीं व्यक्त होता, जो कि "हुई" के माध्यम से होता है।

"हुई आहत मिठास"[२]

इस वाक्य की रचना क्रिया, विशेषण, संज्ञा से हुई है। इस वाक्य को यदि हम "है आहत मिठास" कर दें तो अर्थ में अन्तर आ जाता है। "है" के प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि मिठास निश्चित रूप से आहत है, किन्तु "हुई" के माध्यम से यह अर्थ ध्वनित होता है कि जो मधुर सम्बन्ध थे, उनमें कुछ समय के लिए व्यवधान आ गया है। कवि एक-एक शब्द चुनकर प्रयुक्त करता है।

---

१. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ३७।
२. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ३८।

"उठ रहा है वह नया दूज का चाँद"[1]

इस वाक्य की रचना क्रिया, सहायक क्रिया, सर्वनाम, विशेषण, सम्बन्धवाची संज्ञा से हुई है। इस पंक्ति के पूर्व पिछले वर्ष की सन्ध्या की किरण के डूबने का उल्लेख है, जो दुःख भरी स्थिति को द्योतित करता है। कवि ने उस दुःखान्त स्थिति के उल्लेख के साथ ही "उठ रहा है" क्रिया का अगली पंक्ति में सर्वप्रथम प्रयोग कर पाठक को दूसरी आशा, नये साल के भरे तट पर लाकर खड़ा कर दिया है। अगर इस वाक्य को हम यों लिख दें "वह नया दूज का चाँद उठ रहा है" तो तुरन्त आशा की किरणों के उदय की जो बात है, वह न हो पाती।

(६) विशेषण + संज्ञा + क्रिया

कवि की कविताओं में विशेषण से प्रारम्भ होने वाले वाक्य भी मिलते हैं। विशेषण लगा देने से वाक्य में बनावटीपन नहीं आता, वाक्य की व्यंजना को व्यक्त करने में विशेषणों का प्रयोग सार्थक होता है। कुछ वाक्यों में विशेषण प्रारम्भ और मध्य में प्रयुक्त किये गये हैं, उस अवस्था में वह कर्ता और कर्म को विशेषता का जहाँ द्योतन कराते हैं, वहाँ साभिप्राय शब्द-चयन की महत्ता को भी अपनी कविताओं में देखा जा सकता है। इस संधि में मिलने वाली व्याकरणिक संरचना का रूप निम्न प्रकार से है :—

"नई सरसों के फूलों से केसर झरे"[2]

इस वाक्य की रचना-विशेषण, सम्बन्धवाची संज्ञा, करणवाची संज्ञा, संज्ञा और क्रिया से हुई है। यदि इस वाक्य में "नई" विशेषण को हटा दें तो वाक्य साधारण कोटि के वाक्यों में आ जायेगा। अगर हम लिखें—"नई केसर के फूलों से सरसों झरे" तो वाक्य एकदम विपरीत हो जायेगा, कवि ने "नई" विशेषण का प्रयोग "सरसों" के लिए किया है, केसर के लिए नहीं।

"सारा नगर लिहाफों में सिकुड़ा होता है"[3]

इस वाक्य की संरचना गणनावाचक विशेषण, संज्ञा, अधिकरणवाची संज्ञा, विशेषण, क्रिया और सहायक क्रिया से हुई है। यह साधारण वाक्य है। इसके कवि की प्रतिभा स्वच्छ रूप से मुखरित होती है। "सारा नगर" पहला प्रयोग। "नगर" से नागरिक का बोध होता है, लेकिन नगर से जो बिम्ब बनता है, वह अधिक सशक्त रूप में होता है। इस वाक्य को हम इस तरह भी लिख सकते हैं—"लिहाफों में सारा नगर सिकुड़ा होता है"। लेकिन इससे कवि "सारा नगर" का पहले प्रयोग कर जो अर्थ देना चाहता है, वह सार्थक नहीं होता।

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ५८।
२. छाया, मत छूना मन, माथुर, पृ० ३३।
३. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ८२।

"मरते ओले जैसा मन है"[1]

इस वाक्य की रचना विशेषण, तुलनावाची संज्ञा, संज्ञा और सहायक क्रिया से होती है। "ओले जैसा मरता मन है", "मन है ओले जैसा मरता" आदि वाक्यों का प्रयोग भी कर सकते थे, लेकिन इससे अर्थ बदल जाता, मन के आगे अगर "मरता" विशेषण का प्रयोग करें तो अर्थ उचित नहीं प्रतीत होता है। अतः मन के लिये "मरते ओले" की उपमा बहुत सार्थक है। जिस प्रकार कि ओला आकाश से गिरते ही समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार से मन की इच्छायें भी शीघ्र समाप्त हो जाती हैं।

(१०) क्रियाविशेषण + संज्ञा + क्रिया

कवि की कविताओं में वाक्य संज्ञा या सर्वनाम से ही प्रारम्भ नहीं होते, अपितु कुछ वाक्य क्रियाविशेषण से भी आरम्भ होते हैं, तत्पश्चात् संज्ञा का प्रयोग मिलता है, इसके पश्चात् क्रिया का। कहीं-कहीं वाक्य ऐसे भी हैं, जहां क्रियाविशेषण, क्रिया और संज्ञा का प्रयोग हुआ है। कविता में जब कभी वाक्य फैलता है, तब एक ही वाक्य में अनेक संज्ञाओं का प्रयोग होता है। वह सभी संज्ञाएँ कर्त्ता, कारक की तरह व्यवहृत हों, ऐसा आवश्यक नहीं है, वह घटक (संज्ञा, सर्वनाम) आदि ऐच्छिक और अनैच्छिक दोनों ही रूपों में वाक्य मिलते है। इस प्रकार के वाक्यों का संरचनात्मक रूप इस प्रकार से है :—

"आज जीवन चाँदनी रूठी हुई है"[2]

क्रियाविशेषण, संज्ञा, संज्ञा, क्रिया, सहायक क्रिया के योग से यह वाक्य बना है। इस वाक्य में यदि हम "आज" को हटा दें, अर्थात् "जीवन चाँदनी रूठी हुई है" तो वाक्य नहीं बनता। "आज क्रियाविशेषण का प्रयोग शुरू करने का मूल अभिप्राय वर्तमान काल से है, शायद कवि के जीवन में ऐसी कोई घटना घटित हो गई हो जिससे उसकी जीवन चाँदनी रूठ गई है।

"आज फूल रही कचनार"[3]

क्रियाविशेषण, क्रिया और संज्ञा के योग से यह वाक्य बना है। यदि हम "आज" क्रियाविशेषण को बाद में प्रयुक्त करें तो वाक्य बनता है—"फूल रही आज कचनार" वाक्य के अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता, और न लय में ही कोई रुकावट आती है। लेकिन "आज फूल रही कचनार" कहने में जो साभिप्रायता है, वह दूसरे वाक्य में नहीं। वाक्य ऐसे भी कर सकते थे "फूल रही है कचनार" लेकिन "आज" का प्रयोग किसी विशेष संदर्भ में किया गया है, कवि को वर्तमान में इतनी खुशी मिली होगी जिससे कि "आज" क्रियाविशेषण का प्रयोग स्वतः हो गया है।

---

१. छाया, मत छूना मन, माथुर, पृ० ५८।
२ छाया, मत छूना मन, माथुर, पृ० २३।
४. छाया, मत छूना मन, माथुर, पृ० ३७

निष्कर्ष रूप में माथुर जी की कविताओं में वाक्यों के गठनात्मक रूप का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि पुलिंग शब्दों की तुलना में, संज्ञा शब्दों का स्त्रीलिंग रूप काव्यभाषा में अधिक ग्राह्य हुआ है। इसके साथ ही वे कारक चिन्ह भी अनुपयोगी ठहराते हैं, क्योंकि इससे भाषा की कसावट नष्ट हो जाती है। वाक्यों में सर्वनाम का उतना महत्व नहीं मिलता, जितना संज्ञा पदों का। काव्य-भाषा में सर्वनाम, संज्ञा अथवा विशेषण के समान इनके चयन का उतना महत्व नहीं रहता। माथुर जी की कविता में विशेषण चमत्कार-सृष्टि का अंकन करते हुए उनकी पर्यवेक्षण शक्ति को प्रकट करते हैं। काव्य-भाषा में संज्ञाओं की अर्थ की सीमा निश्चित नहीं होती, विशेषण उनको निश्चित करते हुए कवि की कल्पना अनुभूति या भावना को पाठक के हृदय पर अंकित करते हैं। इस प्रकार से हम यह देखते है कि संज्ञा पदों के अकेले होने पर जो जटिल भावचित्र उत्पन्न होता है, उसकी जटिलता को काव्य के सौन्दर्य अर्थात् लाक्षणिक अर्थ देने में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण है।

क्रियावाचक विशेषण का चमत्कार भी इनकी कविताओं में महत्वपूर्ण है। क्रिया वाचक विशेषण विशेष्य की क्रिया को मूर्त कर देते हैं। माथुर जी की कविताओं में रूढ़ मौलिक और विशेषण विपर्यय, विशेषण वाक्यों के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कवि की कविताओं में क्रिया पदों का प्रयोग बड़े संयत रूप में मिलता है। यह कवि के अनुभव-गम्य विशेषता का परिचायक है। आपकी कविताओं में संयुक्त क्रियाएँ, अर्थछटा और व्यंग्यार्थ को उभारने में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निर्वासित करती हुई दिखाई देती हैं।

कवि ने सामान्य प्रचलित शब्दों को व्याकरणिक ढाँचे में इस प्रकार से पिरोया है कि वे भाषा की समाहार शक्ति के परिचायक प्रतीत होते हैं। कविता में यद्यपि वाक्यों का गठन सामान्य गद्य भाषा जैसे नहीं होता, तथापि उसमें एक व्याकरणिक व्यवस्था होती है। उस व्यवस्था की दृष्टि से आपकी कविताओं में सशक्त प्रयोग मिलते हैं। वाक्य दो पदबन्ध के, और छ पदबन्ध के भी मिलते हैं। सामान्य प्रश्नवाचक, आज्ञार्थक, संबोधनात्मक सभी प्रकार के वाक्यों का प्रयोग आपकी कविताओं में मिलता है। वाक्य दृष्टि से आपकी कविताएँ अभिव्यंजना सक्षम और गठी हुई प्रतीत होती हैं।

विचलन की दृष्टि से कविता को प्रभावशाली बनाने के लिये कवि ने वाक्यों को इस ढंग से व्यक्त किया है कि परम्परागत व्यवहृत होने वाले सामान्य ढाँचों से अनेक रूपों में भिन्नता मिलती है। इस भिन्नता से कवि के व्यक्तित्व की अनोखी पहचान जहाँ होती है, वहाँ उनके शिल्पगत कौशल का परिचय भी मिलता है। विशुद्ध भाषावैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि व्याकरणिक दृष्टि से उनकी कविताओं में शिथिलता मिलती है। परन्तु यह शिथिलता नहीं है, अपितु कवि का निजी दृष्टिकोण है, जो उनके काव्य से मुखरित होता है।

(ख) पदबंध

विचारों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से होती है, और उस अभिव्यक्ति का माध्यम वाक्य होते हैं। वाक्यों की संरचना सार्थक अर्थ-युक्त, व्यवस्थित पदक्रम से होती है। इस एक प्रकार से अधिक संबद्ध शब्द, संज्ञा, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण आदि व्याकरणिक इकाइयों के स्थान पर प्रयुक्त होकर किसी एक पद का कार्य करें और अर्थ स्पष्ट करने में सक्षम हों, उस बंधी हुई इकाई को पद-रचना कहते है।

'सुप्तिङन्तंपदम्' पाणिनि के इस सूत्र के अनुसार संस्कृत के सभी पद, प्रत्ययान्त माने जाते है। धातुओं के साथ तिग प्रत्यय लगता है। हिन्दी में वह पद सविभक्ति होने से ही वाक्य में प्रयुक्त हो सकते है। इस प्रकार से पद का निर्माण प्रकृति और प्रत्यय के योग से होता है। शब्द को वाक्य में प्रयुक्त होने योग्य बना देने पर उसे पद की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। प्रतिपदिक धातु में प्रत्यय के योग से पद की संरचना होती है।

हिन्दी में पद दो प्रकार से निर्मित होते है :—

(१) प्रतिपदिक में प्रत्यय के योग से नामिक पद बनते है। जैसे—संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण।

(२) धातुओं में प्रत्यय लगाने से जो पद बनते हैं, उन्हें क्रिया पद कहते हैं।

निष्कर्ष रूप में पद से अभिप्राय उस विभक्ति-युक्त शब्द (या धातु) से है, जो वाक्य में किसी व्याकरणिक सम्बन्ध को स्थापित करता है।

वाक्य के उस भाग को, जिसमें एक से अधिक पद परस्पर सम्बद्ध होकर अर्थ तो देते है, किन्तु पूरा अर्थ नहीं देते, पदबन्ध कहते हैं। रचना की दृष्टि से पदबन्ध के सन्दर्भ में तीन बातें स्पष्ट होती हैं :

(१) एक से अधिक पद होते हैं।

(२) यह पद किसी व्याकरणिक इकाई का काम करते हैं, पूर्ण वाक्य नहीं बनाते।

(३) पदबन्ध में शब्दक्रम निश्चित रहता है।

वाक्य में पदबन्ध पाँच प्रकार के होते हैं। कवि माथुर के काव्य में पदबन्ध के निम्नलिखित रूप मिलते हैं :

(१) संज्ञा पदबन्ध

वाक्य में जब संज्ञा और संज्ञा का विस्तार (विशेषण, सम्बन्धवाची सम्बन्ध शब्द) मिलकर एक संज्ञा का काम करें, उस अवस्था में संज्ञा पदबन्ध माना जाता है, जैसे—

"सत्ता का दर्शन"[1]

---

१. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ५१।

"यादों के स्टेशन"[१]

इनमें संज्ञा पदबन्धों का स्पष्ट प्रयोग मिलता है। संज्ञा पदबन्ध का संज्ञा के साथ, विशेषण के साथ और क्रिया के साथ सम्बन्ध मिलता है। संज्ञा पदबन्ध मुख्यतः तीन प्रकार से माथुर जी की कविताओं में मिलते हैं।

(क) ऐसे संज्ञा पदबन्ध मिलते हैं जिनका अन्तिम शब्द कर्तृवाचक संज्ञा होता है। ऐसे प्रयोग निम्न रूप में मिलते हैं :—

"मौत बिछाती डेरा"[२]

"नफरत की राजनीति[३]

"समय के दामन"[४]

(ख) कुछ इस प्रकार के संज्ञा पदबन्ध भी मिलते हैं जिनका अन्तिम शब्द संज्ञा होता है, और उससे पूर्व प्रयुक्त सारे पद उसके विस्तार के रूप में आते हैं। अर्थात् उस संज्ञा पद की विशेषता बताते हैं।

"ताजी कोंपल से बच्चे"[५]

इस पदबन्ध में बच्चे संज्ञा है, और उससे पूर्व जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है, वे सभी शब्द बच्चे की विशेषता को व्यक्त करने के लिये प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रकार से पूर्व प्रयुक्त पद संज्ञा के विस्तार के रूप में आये हैं। इसी प्रकार के अन्य वाक्य भी मिलते हैं—

"प्यार बोरियत का रेवन"[६]

"कलौंच-भरी नजरें"[७]

"पतली साँवली लकीर"[८]

(ग) ऐसे संज्ञा पदबन्ध भी माथुर जी की कविताओं में मिलते हैं जिनका अन्तिम शब्द क्रियार्थक संज्ञा होता है। क्रियार्थक संज्ञा से पूर्व पद क्रियार्थक संज्ञा की विशेषता बताते हैं।

"गन्ध लेने लगी आकार"[९]

इस वाक्य में लगी क्रियार्थक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हुई है। गन्ध संज्ञा है, और

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ३५।
२. छाया मत छूना, मन, माथुर, पृ० ५८।
३. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ६३।
४. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ७८।
५. जो बंध नहीं सका, माथुर, पृ० २१।
६. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ६१।
७. जो बंध नहीं सका, माथुर, पृ० ५।
८. जो बंध नहीं सका, माथुर, पृ० २१।
९. छाया मत छूना, मन, माथुर, पृ० १७।

गन्ध का सम्बन्ध लेने से या सूँघने से होता है, इसलिये इस पदबन्ध में "लगी" क्रियार्थक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त है।

"आँचल कोर लगाई"[१]
"उम्र सारी काटी"[२]
"बच्चे सा सूरज सो आता"[३]

(२) सर्वनाम पदबन्ध

जो पद-समूह या पदबन्ध सर्वनाम का कार्य करे, उसे सर्वनाम पदबन्ध कहते हैं। सर्वनाम पदबन्ध दो प्रकार के होते हैं। प्रथम सर्वनाम वह है जिसमें वाक्य सर्वनाम से शुरू होते है—

"वह आग की पीली शिखा"[४]
"तुम्हारे मन प्राण का पहिला समर्पण"[५]
"मेरी खामोश आँखें"[६]
"मेरे प्यार को"[७]

दूसरे प्रकार के सर्वनाम पदबन्ध में वाक्य के अन्त में सर्वनाम का प्रयोग होता है। कभी-कभी सर्वनाम पद और कार्य के परसर्गों के बीच में विशेषता बताने वाले शब्द रख दिये जाते हैं, तब वह शब्द भी सर्वनाम की विशेषता बताते हैं।

"गोरी कलाई छुड़ाती रहीं तुम"[८]
"माला सी मसली रहीं तुम"[९]

प्रथम वाक्य में तुम पदबन्ध के साथ गोरी कलाई विशेषता की तरह और माला सी मसली रही तुम में माला सी विशेषता बताने के लिए तुम प्रयुक्त हुए हैं।

"मसली सुहागन सेज पर के सुमन वे"[१०]
"अंधड़ सी सरहिट हूँ मैं"[११]

---

१. मंजीर, माथुर।
२. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० १५।
३. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ४।
४. धूप के धान, माथुर, पृ० ५१।
५. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० १३।
६. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ६।
७. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ६७।
८. छाया मत छूना, मन, माथुर, पृ० ३४।
९. छाया मत छूना, मन, माथुर, पृ० ३४।
१०. छाया मत छूना, मन, माथुर, पृ० २७।
११. शिलापंख चमकीले, माथुर पृ० ५६।

"आदिम नगर उठे थे मेरे"[१]

(३) विशेषण पदबन्ध

संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता कई शब्द मिलकर बताते हैं, तब विशेषण पदबंध के नाम से जाना जा सकता है। यह रूप, काल, स्वरूप, गुण, और संख्यावाची पदबंध को द्योतित करता है। यह पदबंध प्रायः संज्ञा या सर्वनाम का अंग बनकर आता है। विशेषण पदबंध पाँच होते हैं—

रूप—

"चमके नयन हँसती बिजली से"[२]
"नीली रात चंदोवे वाली"[३]
"गरम चाँदनी आई"[४]
"चमकीली कोंपल के"[५]

काल—

"बीते दिनों के सफर"[६]
"उतरते सितम्बर के अनमने चाँद पर"[७]

स्वरूप—

"एक छोटी उम्र को बवण्डर बनाती है"[८]
"लम्बा कुहरा"[९]
"छोटी मुद्दुदें, हँसी"[१०]

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ५५।
२. छाया मत छूना, मन, माथुर, पृ० ३५।
३. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ४।
४. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ६७।
५. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ४६।
६. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ३५।
७. साक्षी रहे वर्तमान, माथुर, पृ० ८६।
८. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ३०।
९. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ५६।
१०. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० २२।

गुण—

"भड़कीली दुनिया के एलबम में"[1]
"ढीला थका खोखला मौन"[2]
"झरती है जिन्दगी"[3]

संख्यावाची—

"इक्कीसवाँ भविष्य"[4]
"ढेर-ढेर पीले पत्तों की तरह"[5]
"शाम एक बेमर मजूरन है"[6]

(४) क्रिया पदबंध—

पदबन्ध का वह समूह जो क्रिया का काम करता है, क्रिया पदबन्ध की श्रेणी में रखा जाता है। क्रिया पदबन्ध दो प्रकार के होते हैं—

(क) क्रिया एक शब्द की भी हो सकती है—

"अजनबी उगाती है"[7]
"इतिहास हँस पड़ा"[8]
"हवा बहती कटीली"[9]

(ख) दूसरे प्रकार के क्रिया पदबन्ध में अनेक क्रियायें एक वाक्य में होती हैं, इसे समूह क्रियाबन्ध कहते हैं। कुछ उदाहरणों द्वारा बात स्पष्ट हो जावेगी—

"भीगे, रचे, गुंथे हुये आटे"[10]
"उलटती पलटती पृथ्वी शून्य में तैर जायेगी"[11]
"जली बस्तियों में झिलमिल लिखे ये तुम्हारे—
नाम तैरती चुमेर बने"[12]

---

१. साक्षी रहे वर्तमाना माथुर, पृ० ८९।
२. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ४९।
३. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ३९।
४. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ६७।
५. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ३३।
६. साक्षी रहे वर्तमान, माथुर, पृ० २८।
७. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ३।
८. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० १२।
९. छाया मत छूना, मन, माथुर, पृ० २३।
१०. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० २१।
११. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० २७।
१२. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० २।

"टूटे, छिटके, द्वीपों में बिखरे"[1]

(५) क्रियाविशेषण पदबन्ध—

वह पदबन्ध जो क्रियाविशेषण का काम करे, उसे क्रियाविशेषण पदबन्ध कहते हैं। माथुर जी की कविताओं के आधार पर क्रियाविशेषण पदबन्ध कई प्रकार के होते हैं—

(क) स्थान वाची—

"जहाँ पर छूट पूरी है"[2]
"कहीं भी रहा नहीं"[3]

(ख) कालवाची—

"अभी वियोग भरे सेंदुर से"[4]
"आज जीवन चाँदनी रुठी हुई है"[5]
"फिर समाज की सीप में"[6]

(ग) तुलनावाचक—

"जैसे वह काजल धुँआ लगा कौन हो"[7]
"तुम मेरे शरीर पर काले जादू की तरह छा गई हो"[8]

(घ) रीतिवाची—

"यह पक्षी मुक्त उड़ता है"[9]
"यह मिट्टी अपनी जगह निश्चल पड़ी हुई"[10]

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ५८।
२. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० २७।
३. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ८०।
४. छाया मत छूना, मन, माथुर, पृ० ४८।
५. छाया मत छूना, मन, माथुर, पृ० २३।
६. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ८।
७. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ३४।
८. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ७।
९. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० २६।
१०. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० २६।

(ङ) परिमाण—

"धीरे-धीरे घुमते खिलौने से हृदय सभी"[१]

"इस घर के कोने-कोने में धीरे मौत बिछाती डेरा"[२]

(च) "बीत गई बीसवीं सदी"[३]

"एक और अर्धहीन बरस बीत गया"[४]

मुख्य पदबन्ध तो पाँच ही हैं, किन्तु अन्य तीन पदबन्धों के भी प्रयोग मिलते हैं।

(६) सम्बन्ध-बोधक पदबन्ध—

जब कई शब्द मिलकर सम्बन्ध बताने का काम करें, तब सम्बन्ध बोधक पद-बन्ध होता है—यथा—के बाहर, की ओर, में, से, के ऊपर से, आदि।

"जीवन की पियरी केसर कभी झुके नहीं"[५]

"दूर घर में हँसी की धूप का झरना बने"[६]

"ओ मेरी आत्मा में ठहरे हुये इन्तजार"[७]

(७) समुच्चय-बोधक पदबन्ध—

जो पद-समूह समुच्चय का बोध करायें—यथा—इसलिये, कि, क्योंकि, चूंकि आदि।

"क्यों मैं लीक से इतना अलग हूँ"[८]

"क्योंकि प्रश्नों के नये उत्तर दिये हैं"[९]

(८) विस्मयादि-बोधक पदबन्ध—

जो पद समूह हर्ष, विषाद, विस्मयादि का बोध करायें, यथा—अरे बाप रे बाप, हाय री किस्मत आदि।

"ओ निर्वासित आत्मा"[१०]

१. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ८३।
२. छाया मत छूना, मन, माथुर, पृ० ५८।
३. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ३८।
४. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ८१।
५. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० १।
६. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० २९।
७. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ६६।
८. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ८७।
९. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ८७।
१०. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ५२।

"ओ निद्राहीन दृष्टि"[१]

मुहावरा—

मुहावरा पदबन्ध का ही एक अंग है। मुहावरा किसी भाषा का अत्यन्त महत्व-पूर्ण अंग ही नहीं, वरन् इसका मर्म होता है, इसका सत्व और इसका अन्तिम सहारा होता है। अतएव काव्यभाषा में भी मुहावरे का एक अपना महत्व है, मुहावरे के प्रयोग के सम्बन्ध में दो प्रकार की सतर्कता आवश्यक है। सर्वसम्मत मुहावरों का ही प्रयोग होना चाहिये। ऐसे घिसे-पिटे मुहावरों से बचना चाहिये जिनकी ताजगी समाप्त हो गई है।

मुहावरे को अधिक प्राधान्य देने से रूढ़ पदसमूहों में भाषा बंधी सी रहती है, उसकी शक्तियों का नवीन विकास नहीं होने पाता। कवि अपने विचारों को ढालने के लिये नए-नए साँचे तैयार करके बने-बनाए साँचों में ढलने वाले विचारों को ही प्रकट करता है।

वस्तुतः नई कविता का मुहावरा ही बदल गया है, क्योंकि नए भावों की अभि-व्यक्ति के लिये पुराने मुहावरों से काम नही चल सकता। इस दृष्टि से माथुर जी पूर्णतः सफल हैं। इनके मुहावरों में भावों का स्पन्दन है, हृदय की धड़कन है, और है नये शिल्प की भंगिमा।

यहाँ पर माथुर जी की कविताओं में से कुछ प्रसिद्ध मुहावरे उद्धृत हैं—

"शब्दों में फुंकारना"[२] जहरीले शब्दों का प्रयोग करना।
"कसौटियाँ टूटना"[३] मानवण्ड बदलना।
"मन सतरंग होना"[४] खुश होना।
"निचोड़ी हुई लालसाएँ"[५] निर्जीव इच्छायें।
"कुनमुनाकर उठना"[६] बेमन से कार्य करना।
"दीवाला निकालना"[७] खाली हो जाना।
"शम्भु धनु टूटा"[८] परम्परागत मान्यताओं का टूटना।
"नया सूरज उगाना"[९] नये मूल्यों और मान्यताओं अथवा नई संस्कृति लाना।

---

१. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ५३।
२. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ३२।
३. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ५०।
४. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ६।
५. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० १७।
६. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० १८।
७. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० २३।
८. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ४८।
९. धूप के धान, माथुर, पृ० ५३।

"कयामत के सफर आना"[1] विनाश के दिन दिखाई देना।

मुहावरों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि ये भाषा को शक्ति और अर्थ को दीप्ति प्रदान करने में विशेष महत्व रखते हैं।

(ग) शब्द-शिल्प

सामान्य गद्य-भाषा और काव्य-भाषा दोनों में शब्दों का स्थान महत्वपूर्ण होता है। किसी भाषा की और कवि की क्षमता का परिचय उसके शब्द-भण्डार से ही ज्ञात होता है। विपुल अर्थ-छटाओं के लिए शब्दों की अपेक्षा अपेक्षित होती है। काव्य में शब्दों का सुश्राव्य होना भाषा का एक गुण होता है, किन्तु यह शब्द-चयन पर ही अवलम्बित होता है। जिस प्रकार बच्चे की भाषा में उसके द्वारा किये गये मनोभाव प्रमुख होते हैं, उसी प्रकार से काव्य-भाषा में भाव प्रमुख होते हैं, और उनके संवाहक शब्द होते हैं। सामान्य भाषा में शब्दों की जो अर्थवत्ता, नादगुण, अर्थछटा प्रतीत प्रतीकात्मकता आदि होती है, वह कविता में और अधिक घनीभूत हो जाती है। इसलिये कविता में शब्द वस्तुरूप में रूपांकित होते हैं, चिह्न रूप में चिह्नांकित नहीं, क्योंकि कविता मे शब्द भी कथ्य का एक प्रभावी अंग होते हैं। व्याकरणिक दृष्टि से शब्दों का वाक्य में महत्वपूर्ण स्थान होता है। व्यक्तिवाचक संज्ञा अथवा नाम काव्य के लिए उपयोगी और अनुपयोगी दोनों ही कहे जा सकते हैं। किसी भाषा के नामवाचक शब्द उस भाषा-भाषी क्षेत्र में रहने वाले मस्तिष्क में जो भावचित्र उदित करते हैं, वे इतर भाषा-भाषी मस्तिष्क में नहीं उत्पन्न कर सकते। जिस प्रकार 'गंगा' शब्द भारतीय भाषाओं के बोलने वालों के मस्तिष्क में जो भावचित्र उत्पन्न करता है, वह विदेशियों के मस्तिष्क में उत्पन्न नहीं कर सकता। इस प्रकार किसी देश की सीमा के अन्तर्गत काव्य-भाषा में नाम का बड़ा महत्व है। परन्तु अन्तर्देशीय दृष्टि से काव्य-भाषा में नामों का प्रयोग साधारणीकरण के क्षेत्र को सीमित करता है।

काव्य-भाषा में पुरातन प्रयोग आर० के० इज्म० के सन्दर्भ में होरेस का कथन बड़ा महत्वपूर्ण है। जिसमें उन्होंने भाषा को एक वृक्ष के समान और शब्द को नये पत्ते के रूप में व्यक्त किया है। उनकी मान्यता है कि पत्ते बदलते रहते हैं, किन्तु वृक्ष वही रहता है। कविता के क्षेत्र में भाषा और उसके शब्दों के पारस्परिक सम्बन्ध के लिए होरेस की यह मान्यता महत्वपूर्ण है। भाषा, वृक्ष के शब्द रूपी पत्र एक ही समय में नहीं झड़ जाते, काव्य-भाषा में नये शब्द धीरे-धीरे आते हैं, और पुराने छूट जाते हैं।

काव्य-भाषा में शब्दों की कसौटी के दो ही निकष होते हैं—

(१) एकमात्रता

(२) आवश्यकता

काव्यभाषा में एकमात्रता से अभिप्राय यह है कि कविता यदि सचमुच कविता

---

१. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ६१।

है, तब उसमें जो शब्द आते हैं, वे एकमात्र और अलग होते हैं। उनके अतिरिक्त अन्य कोई भी शब्द वहाँ हो नहीं सकता। उसके बदल देने पर कविता वही नहीं रह जायेगी जो है। वह दूसरी ही कविता होगी।

काव्य-भाषा में शब्दों की एक दूसरी कसौटी है "आवश्यकता"। इसका तात्पर्य यह है कि काव्य में विवक्षा को अभिव्यक्त करने के लिए कविता में उतने ही शब्द आयें, जितने आवश्यक होते हैं। भरती के शब्दों का प्रयोग काव्य के सौन्दर्य को खंडित कर देता है।

काव्यभाषा के शब्दों की एक तीसरी कसौटी भी है। वह यह है कि वे शब्द ताजे हैं, या नहीं। यद्यपि एक वर्ग के कवि एक ही प्रकार की शब्दावली सतत् प्रयोग करने लगते हैं, तो वैसी शब्दावली थोड़े ही दिनों में घिस जाती है, और काव्य-भाषा के उपयोग में नहीं रह जाती। प्रत्येक युग में ऐसा अनचाहे ही हो जाता है। प्रत्येक युग श्रमपूर्वक काव्य-भाषा की सृष्टि करता है। फिर उसे नष्ट कर देता है। नष्ट से तात्पर्य यह नहीं है कि वह काव्य योग्य नहीं रहता, अपितु उसकी ताजगी समाप्त हो जाती है। कवि ऐसे शब्दों की खोज करता है, जो सतत् प्रयोग में घिसे हुए नहीं है। अर्थात् काव्यभाषा में शब्दों में नवीनता की चमक होनी चाहिए।

शब्द-भण्डार

नयी कविता प्रयोगोन्मुखी कविता है। इसमें कथ्य और भावबोध की नव्यता है। वहाँ अभिव्यक्ति के लिए नूतन शब्दावली, नूतन पद प्रयोग, कथन शैली और नये ढंग भी अपेक्षित हैं। इस अपेक्षा में नये-नये शब्दों की तलाश कवियों की स्वाभाविक आवश्यकता बन गई है। प्रोफेसर श्यामसुन्दर घोष के अनुसार—

"जिस प्रकार छायावाद ने हिन्दी शब्दावली को व्यापक और समृद्ध किया, उसी प्रकार प्रयोगवादियों ने भी हिन्दी काव्यभाषा की शब्दावली में कितने ही नये शब्दों का प्रवेश कराया। अन्तर सिर्फ इतना रहा कि एक ने शब्द जहाँ साहित्य से चुने, कोषों से लिये, दूसरे ने उन्हें जीवन और समाज से चालू सिक्के की भाँति उठाया।"[1]

कवि गिरिजा कुमार माथुर की भाषा में भी अभिव्यंजना-कौशल के लिये नये-नये शब्दों की आवश्यकता परिलक्षित होती है। इसलिये बासी प्रयोगों के अतिरिक्त कवि ने ताजगी भरने के लिये नये शब्दों का भी प्रयोग किया है। अपने द्वारा गढ़े हुए नूतन शब्दों में नवीन अर्थ-छवियों को उकेरा है। नये शब्दों का अर्थबोध उनके शब्द-भण्डार का परिचायक है। कवि ने जनभाषा में प्रचलित रूपों को सहज रूप में स्वीकार किया है। आंचलिक परिवेश आज के शिष्ट समाज के लिये अभी मुहावरा नहीं बना है, इसलिए भाषा को जीवन प्रदान करने के लिये भाषा की व्यंजना को प्रभावशाली

---

१. नयी कविता का स्वरूप विकास, प्रोफेसर श्याम सुन्दर घोष, पृ० ४९।

बनाने के लिये बोलचाल के शब्दों आंचलिक प्रयोगों, मुहावरों, विदेशी शब्दों (अरबी, फारसी, आंग्ल) आदि का निःसंकोच रूप से प्रयोग किया है। इस विविधता में अभिव्यक्ति को मुखरित करना कवि का प्रथम लक्ष्य रहा है। कवि की शब्दावली के आधार पर उनके शब्द - भण्डार के संदर्भ में संकेत किया जा सकता है।

"माथुर जी ने शिल्प के क्षेत्र में छायावादी भाषा की टक्कर में अपनी एक विशेष प्रकार की शब्दावली निर्मित की है, जो वैसे ही कोमल और श्रुति-मधुर शब्दों से युक्त है। यह कार्य जहाँ एक सीमा तक आकर्षक हो सका है, वहाँ इसने एक प्रकार की एकरसता भी उत्पन्न की है। कवि का शब्द-चयन भी एक निश्चित साँचे में ढला प्रतीत होता है।"[1]

(१) आंचलिक शब्दावली

प्रत्येक कवि भाषा को जीवंत बनाने के लिये नये प्रयोग करता है। वह प्रयोग अपने ही देश की मिट्टी से जब उसे मिलते हैं, तब कविता में उसे अपनेपन की गंध आने लगती है। प्रत्येक भाषा अपने आपको पुष्ट करने के लिये अपनी बोलियों से शब्दों का आदान प्रदान करती रहती है। खड़ी बोली हिन्दी में अनेक आन्दोलन हुए हैं। प्रगतिशील चिन्तनधारा ने कवियों को जहाँ अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के साथ जोड़ा है, वहीं अपने देश की मूल शक्ति के साथ जोड़ने का प्रयत्न भी किया है। इस परिप्रेक्ष्य में आधुनिकता के बोध में पनपने वाले कवियों ने भी अंचल के महत्व को स्वीकारा है। भाषा अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिये परिवेश से जुड़ती है, इस कारण से भी कवियों ने आंचलिक जीवन में स्पर्श किया है। इसी भाव-भूमि में ऐसे अनेक जीवंत प्रयोग लोकभाषा में मिल जाते हैं, जिन्हें कवियों ने सहर्ष स्वीकार किया है। माथुर जी ने अपनी भाषा में अभिव्यंजना के कौशल को मुखरित करने के लिये और नूतन अर्थछवियों को प्रभावशाली रूप से व्यक्त करने के लिये आंचलिक शब्दावली को निःसंकोच स्वीकार किया है।

"अलोप, धुरी साँझ, करिया, लुगड़ा, छंद, महक, परिया, हठरी, सुभैली, हम्मदा, धूसर, मटियाला"[2]

"डांग, कजरी, बजरी"[3]

"शिलापंख चमकीले" काव्यसंग्रह की "दियाधरी" कविता आंचलिक शब्दावली से युक्त रचना है। कविता की प्रसिद्ध दो पंक्तियाँ—

"साँझ पहिनती दिन डूबे

---

१. नया हिन्दी काव्य, डा० शिवकुमार मिश्र, पृ० २७१।
२. शिलापंख चमकीले, माथुर, (संक्षिप्त सूची)।
३. धूप के धान, माथुर।

फरिया सल्मों के तार की"[1]

"दिवारी" मालव प्लेटों की उत्तरी सीमा के एक गांव की पहाड़ी है। उस पहाड़ी क्षेत्र की स्त्रियां का पहनावा "फरिया" (ओढनी) है। सांझ स्त्रीलिंग शब्द है, इसलिये नीले आकाश में जो तारे निकल रहे हैं, कवि उसे सल्मा-सितारों से जुड़ी हुई नीली फरिया के रूप में ओढ़नी के लिये प्रयुक्त करता है। इस प्रकार "फरिया" शब्द का प्रयोग, बहुत ही सार्थक और उस पहाड़ी क्षेत्र के जनजीवन के पहनावे का बड़ा यथार्थ और रंगीन चित्र उभारकर सामने लाता है।

"धूप के धान" काव्यसंग्रह की प्रसिद्ध कविता "ढाकबनी" भी आंचलिक दृष्टि से सफल है। "ढाकबनी" से अभिप्राय है 'ढाक के वनों से युक्त प्रदेश'। इस कविता के आरम्भ की पंक्तियाँ आंचलिकता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं :—

"लाल फूले ढाक के वन
डांग गाती फाग कजरी"

बहुत दूर-दूर तक फैले हुए जंगल को डांग कहते हैं। इस प्रदेश में बहुत कम लोग रहते हैं। "डांग गाती" इससे अभिप्राय है—डांग में रहने वाले नागरिक फाग और कजरी नामक स्थानीय रागों में हर्ष और उल्लास के गीत गा रहे हैं। प्रयोग बड़ा सार्थक है।

(२) सामान्य शब्दावली

कवि अपने परिवेश से जुड़ा रहता है। समूचे संदर्भ इसी समाज से उसे मिलते हैं, इसी मिट्टी की सौंधी सुगन्ध जिसे वह प्रेषणीयता के माध्यम से प्रेषित करता है। उसमें जनजीवन की गंध, सामान्य शब्दावली के माध्यम से मुखरित होना स्वाभाविक ही है।

"अजाने, आंजा, भरी आँखें, बड़ा काजल"[2]
"तीखा, रसियाँ, रंगोली"[3]
"करधनी, चौकने, ताप, दवाहार"[4]

"अभी तो झूम रही है रात", "मंजीर" काव्य संग्रह की प्रसिद्ध कविता है। समस्त कविता सामान्य शब्दावली से युक्त है। आरम्भ की दो पंक्तियां दृष्टव्य हैं:—

'बड़ा काजल आंजा है आज
भरी आँखों में हल्की लाज'[5]

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ३।
२. मंजीर, माथुर।
३. शिलापंख चमकीले, माथुर।
४. धूप के धान, माथुर।
५. मंजीर, माथुर, पृ० १६।

"बड़ा काजल" इससे अभिप्राय विशाल नेत्र से भी है, तथा बहुत सुन्दर काजल से भी है। सौन्दर्य के ये द्योतक हैं। "भरी आँखों" उभरी हुई आँखों से अभिप्राय है। "आंजा" शब्द ग्रामीण भाषा का है, यहां इसका प्रयोग आँखों में काजल लगाने से है। "आंजा" शब्द में सजीवता है, "आ" में जो अनुस्वार है, वह श्रृङ्गार की कोमलता को व्यक्त करता है।

"शिलापंख चमकीले" की प्रसिद्ध कविता है "व्यक्तित्व का मध्यान्तर"। इस कविता के द्वितीय परिच्छेद में "कुम्हलाने" शब्द बहुत सार्थक है।

"कुम्हलाने लगा उमर का सूरजमुखी बदन"[1]

यौवन-काल तक शरीर में रसीलापन रहता है, और युवावस्था के बीतने पर शरीर में वह रसीलापन समाप्त होकर ढलाई, शिथिलता आदि आने लगता है। "कुम्हलाने" विशेषण का प्रयोग अधिकतर पुष्पों के लिए होता है। कुम्हलाने से पुष्पों की स्थिति में जो परिवर्तन होता है, वही परिवर्तन अब प्रौढ़ावस्था में आने लगता है।

"नया द्रष्टा कवि" इस कविता के द्वितीय परिच्छेद की प्रथम पंक्ति में "तीजा" शब्द दर्शनीय है :—

"जब न युग के पास रहे उपाय तीजा"[2]

यहां पर "तीजा" कहकर लय की गई रक्षा की है। इस शब्द का देशज प्रयोग किया गया है। "तीजा" के स्थान पर "तीसरा" शब्द का प्रयोग भी किया जा सकता था, लेकिन उसमें वह नयापन और ताजगी नहीं है, जो कि "तीजा" शब्द में है।

"जो बँध नहीं सका" काव्य-संग्रह की "प्यार की व्यंजनाएँ" कविता के द्वितीय पत्र में कवि प्यार की नई परिभाषा देता है—

"प्यार क्या छुई-मुई है"[3]

प्यार की यहां नई परिभाषा दी गई है। "छुई-मुई" एक छोटा-सा पौधा होता है। जब उसका स्पर्श किया जाता है, तो ऐसा संकुचित हो जाता है, मानों मुरझा गया हो। उसी प्रकार कवि प्रश्न करता है क्या प्यार भी इतनी निर्बल वस्तु है, जो किसी अन्य सुन्दरता को देखते ही कुम्हला जाये?

(२) संस्कृत शब्दावली

माथुर जी की कविताओं में अभिव्यंजना को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने के लिए संस्कृत के शब्दों का प्रयोग मिलता है। इस शब्दावली के चयन में, कवि किसी दुराग्रह या परम्परावादी दृष्टिकोण से ऐसा नहीं करते हुए दिखाई देता, अपितु उस शब्दावली से चयन में शब्द का चयन परिवेश में प्रचलित भाषाई संकल्पना में आव-

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ७९।
२. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ८६।
३. जो बंध नहीं सका, माथुर, पृ० ७०।

श्यक प्रतीत होता है। इसके साथ ही साथ हिन्दी की अपनी ही भाषा से शब्द-चयन की प्रवृत्ति का स्वाभिमान मुखरित होता है। इसके साथ ही साथ ऐसा भी नहीं हुआ है कि कवि ने संस्कृत की तत्सम शब्दावली की भरमार अपनी रचनाओं में की है। भाषा के अभिव्यक्ति पक्ष को अभिव्यंजना की दृष्टि से समृद्धशाली और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग भी किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :—

"संदली, मुद्रिका"[1], "विक्षित, निरावृत"[2], "बर्बरता, नृशंसता, संस्कृति, दुर्दम, वर्तिका"[3], "भरू, निधियाँ।"[4]

"जो बँध नहीं सका" काव्यसंग्रह की अन्तिम कविता में "वर्तिका" शब्द का प्रयोग साभिप्राय है। आरम्भ की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

"वह पात्र लाऊँ कहा से
जिसमें धरूँ यह आग
वह वर्तिका
जिसमें जले यह लौ"[5]

कवि का जो प्रेम है, तथा जिसे वह प्राप्त करना चाहता है, उसे यहाँ वर्तिका के रूप में चित्रित किया गया है। किन्तु वह यह महसूस कर रहा है कि वह स्वयं अभी वैसा उपयुक्त पात्र नहीं है कि उस प्रेम रूपी वर्तिका को अपने अन्दर समाहित कर सके, और तब जो प्रेम की ज्योति है, उस वर्तिका से जल सके। जिस प्रकार पूजा के लिए किसी दीपक के बीच में बाती रखकर उसे जलाया जाता है, तब उस बाती से लौ निकलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने यही रूपक लिया है।

"मंजीर" के अधिकांश गीतों की विशेषता है—निराशा प्रणयजन्य असफलता। "भरे नयन" कविता में वियोग की बड़ी मार्मिक व्यंजना है। संस्कृत शब्दावली के इस कविता में कम शब्दों का प्रयोग है, "निधियाँ" शब्द का प्रयोग द्रष्टव्य है :—

"अभी और देना है कितनी
अपनी निधियाँ और किसी को"[6]

"निधियाँ" शब्द से अभिप्राय है, यद्यपि प्रिय से हमेशा के लिये बिछोह हो चुका है, और वह किसी अन्य की परिणता बन चुकी है, प्रेम का वह अध्याय समाप्त हो चुका है, किन्तु इस समाप्ति के बाद भी वह आँसू भरी हुई उन आँखों की उस खोई चितवन को नहीं भुला सकता, जो अन्तिम विदा के समय उसके मन में हमेशा के लिये

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर।
२. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर।
३. जो बँध नहीं सका, माथुर।
४. छाया मत छूना मन, माथुर।
५. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० १०२।
६. छाया मत छूना मन, माथुर, पृ० ४६।

अंकित होकर रह गई थी। अब उसके गीत, पलकों में अटके हुए, आँसुओं की व्यथा को व्यंजित करते रहेंगे, अर्थात् वह कविता भी अश्रुसिक्त रहेगी।

"बीसवाँ अन्धकार" से अभिप्राय है कि बीसवीं-सदी युद्ध और हिंसा के अंधकारों में डूब रही है। उसी का कवि ने इस कविता में वर्णन किया है। कविता संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, शब्द की बेजोड़ मिसाल है :—

घाव पर बैठी हुई मक्खी सी
आधी विक्षिप्त सदी"[1]

प्रथम पंक्ति उन घृणित स्थितियों को व्यक्त करती है, जो बीसवीं शती में विज्ञान और राजनीति के विनाशक कार्यप्रणाली और व्यावसायिक लिप्सा की विकृति और भय-आतंक पर आधारित अधिनायकवादी अन्यायों का प्रतीक है। ऐसी घृणित स्थिति का समाप्त हो जाना ही अच्छा है। "विक्षिप्त" शब्द सदी के विशेषण रूप में आया है, जो बहुत सार्थक है। "विक्षिप्त" शब्द का अर्थ है, पागल। यहाँ पर सदी का मानवीकरण कर दिया है, ऐसी सदी जो पगलाई हुई सी प्रतीत होती है।

(४) उर्दू शब्दावली

कवि ने काव्य को प्रेषणीय बनाने के लिए और भाषा को जीवन्त बनाने के लिए सार्थक शब्दावली का चयन किया है। इस चयन में कवि के सामने शब्द का महत्त्व होता है, वह किस परिवेश से आया है, इसका महत्त्व नहीं। खड़ी बोली हिन्दी में अनेक अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग मिलता है। उन सार्थक शब्दों को चयन करने में कवि को किसी संकोच का अनुभव प्रतीत नहीं होता, और इन शब्दों के चयन में ऐसी शब्दावली की भरमार भी नहीं होती जो कविता को दुरूह बना दे। कवि ने अपनी रचनाओं में इसी प्रकार की अरबी, फारसी शब्दावली को स्वीकार किया है।

"फाकमस्ती, जिबह, अन्दलीब, कत्लगाह, मलबा, नकाब"[२], "कलम, सुई, बेखबर, जिन्दगी"[३] "रोंआ, मुलम्मा, आबनूस"[४]

"बीसवाँ अन्धकार" इस कविता के आरम्भ में ही "कत्लगाह" शब्द का प्रयोग बहुत ही सार्थक है।

"निकली हुई मन की कत्लगाहों से"[५]

इस पंक्ति में मन की कत्लगाहों वाक्यांश दृष्टव्य है। कवि आधी बीती हुई बीसवीं शताब्दी में हुए खून-खराबे, तथा उसके हिंसात्मक स्वरूप का चित्रण कर रहा

---

१. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ९२।
२. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर।
३. जो बँध नहीं सका, माथुर।
४. शिलापंख चमकीले, माथुर।
५. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ९२।

है। "कत्लगाह" जहाँ जानवरों को काटा जाता है। मनुष्यों के मन ही कटघर (कत्लगाह) बन गये हैं। जब मनुष्यों के मन ही में हिंसा और घृणा के भाव समा जायें तो फिर उनकी विक्षिप्तता की सीमा नहीं रहती, इसी बात को प्रभावी ढंग से व्यक्त करने के लिये मनों को "कत्लगाहों" के रूप में चित्रित किया गया है।

"अंध शिलाओं की दुनिया" इस कविता में उर्दू शब्दावली प्रचुर मात्रा में मिलती है। उदाहरणार्थ—

"चाँद बना आबनूस"[1]

आबनूस शब्द फारसी का है। आबनूस एक जंगली वृक्ष होता है जिसके भीतर की लकड़ी बहुत काली होती है। "अंध शिलाओं की दुनिया" कविता में एक स्थान पर यह भाव व्यक्त किया है कि जब संसार में एक दूसरे के प्रति प्यार, मंगलमय स्वप्न और विश्वास रहा होगा, तब कदाचित् उज्ज्वल, धवल चाँदनी से संसार सागर के किनारे बने होंगे। किन्तु अब जब वे जीवन-मूल्य नहीं रहे, तो वर्तमान तो क्षतविक्षित हुआ ही, भविष्य भी अन्धकारमय हो गया, और इसीलिए जिस चाँद की उज्ज्वल चाँदनी ने संसार-सागर के तटों का निर्माण किया था, वह चाँद अब स्वयं एक जंगली वृक्ष (आबनूस) की भीतरी लकड़ी के समान काला पड़ गया है। "आबनूस" शब्द का प्रयोग वर्तमान के चन्द्रमाओं के अन्तर्वाह्य की कालिमा को बड़े सशक्त ढंग से द्योतित करता है।

"बीसवाँ अन्धकार" कविता कवि माथुर की समस्त विशेषताओं को अपने में समाहित करती हुई परिलक्षित होती है। अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत समस्त शब्दावली के दर्शन इस कविता में होते हैं।

"लिबर्टी के नाम पर
लिबर्टी को जिबह कर"[2]

"लिबर्टी" शब्द पाश्चात्य सभ्यता के संदर्भ में किया गया है। प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की स्वतन्त्रता को समाप्त करने में लगा है। "जिबह"—मुर्गे आदि को मारने के समय जो गला काटा जाता है, उसे कहते हैं। वास्तव में आज तकनीकी सभ्यता लिबर्टी के नाम पर लिबर्टी को ही समाप्त कर रही है।

(५) अंग्रेजी शब्दावली

आधुनिक सभ्यता के युग में पनपने वाले समाज में आधुनिकता की संभावनाएँ विकसित हो रही हैं। आधुनिक समाज में अनेक जीवनमूल्य पाश्चात्य देशों से आ गये हैं, उन्हें व्यावहारिक जीवन में अपनाते हुए देखा जा सकता है। इन सभी का कविता पर भी प्रभाव पड़ता है।

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ४४।
२. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ५६।

माथुर जी ने विदेश में जाकर विश्व की समस्याओं के साथ सीधा साक्षात्कार किया है। उनकी दृष्टि जीवन के नये-नये आयामों तक गई है। उन्होंने विदेशों में जाकर कोरी वैज्ञानिक चेतना को ही नहीं, अपितु उसके माध्यम से मनुष्य को उसकी समस्त दुर्बलताओं के साथ इतिहास के परिप्रेक्ष्य में रखकर समझने का प्रयत्न किया है। यांत्रिकता ने मनुष्य की रागचेतना को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया है, वह सभी प्रभाव जहाँ कविताओं के भावना के रूप में उभरे हैं, वहीं जीवन में निर्वासित होने वाले वह आधुनिक व्यवहार मे पाश्चात्य शब्द कवि को कम महत्वपूर्ण प्रतीत नहीं होते। जीवन में व्यवहृत होने वाले इन सहज शब्दों को वास्तविक अभिव्यक्ति का रूप प्रदान करने के लिए आंग्ल शब्दों का प्रयोग मिलता है।

"प्रिजिम, कारचोबी, माइक्रोस्कोप"[1], "लिबर्टी, इन्वेशन, एप्रन, वेम्पायर, स्टैनगन"[2], "मैगेजीन, क्यू, क्रासिंग, ट्रैफिक, कैबरे"[3], "न्यूयार्क, गेट्टियम"[4], "फाल्कन, पिरामिड, स्फिंक्स"[5]

कथा-साहित्य की भाँति कविता के क्षेत्र में भी पत्र-शैली का प्रयोग हुआ है। "जो बँध नहीं सका" काव्य संग्रह की "प्यार की तीन व्यंजनाएँ" नामक कविता पत्र-शैली की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें तीन अलग-अलग पत्रों में प्रेयसी के प्रति अत्यंत मार्मिक शैली में अपना प्रणय निवेदन किया गया है। इस कविता में अंग्रेजी, उर्दू शब्दावली प्रचुर मात्रा में मिलती है।

"माइक्रोस्कोप सिर्फ औरत के पास है"[6]

यह अंग्रेजी शब्द है। प्रयोग बहुत सार्थक है। "माइक्रोस्कोप" जिस प्रकार छोटी से छोटी चीज को देखने के लिए प्रयोग में आता है, उसी प्रकार स्त्रियाँ यह समझती हैं कि वह यंत्र उनके पास है, जिसके द्वारा वह मर्द के छोटे से छोटे दोष ढूंढ़ लेती हैं। कवि ने स्त्री की पैनीदृष्टि को व्यंग्य के माध्यम से सराहा है।

"हब्श देश" कविता अफ्रीका की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर लिखी गई कविता है। इस कविता में भी आंग्ल, उर्दू, संस्कृत, अरबी-फारसी शब्दों की भरमार है। कविता में, मध्य में स्वयं अफ्रीका अपने लिए "मौन पिरामिड" विशेषण का प्रयोग करता है—

---

१. जो बँध नहीं सका, माथुर।
२. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर।
३. साक्षी रहे वर्तमान, माथुर।
४. नाश और निर्माण, माथुर।
५. शिलापंख चमकीले, माथुर।
६. जो बँध नहीं सका, माथुर, पृ० ६८।

"मैं अकेला
मौन पिरामिड"[1]

"पिरामिड" अंग्रेजी शब्द है, इस शब्द का अभिप्राय पत्थर के बड़े-बड़े स्तूप, गगनचुम्बी कब्रों से है। अफ्रीका में पिरामिड बहुत हैं, यह स्वयं बोलते नहीं। कवि का अभिप्राय है कि मेरी स्थिति इन्हीं मौन पिरामिडों की तरह है, जिस तरह से यह कुछ नहीं बोल सकते, उसी तरह मैं भी शान्त हूँ।

"बीसवाँ अन्धकार", "भीतरी नदी की यात्रा" काव्यसंग्रह की प्रसिद्ध कविता है। "इन्जेक्शन" शब्द का प्रयोग कितना सारगर्भित है—

"लगाता
अपनी ही पीढ़ी में
जहरीले, नशीले इन्जेक्शन"[2]

"जहरीले इन्जेक्शन" अर्थात् जो नई पीढ़ी आ रही है, उसे भी तकनीकी सभ्यता समाप्त करने के लिये तत्पर है। "इन्जेक्शन" शब्द साभिप्राय है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के जहरीला इन्जेक्शन लग जाने पर उसकी मृत्यु हो जाती है, उसी प्रकार यह सभ्यता भी आने वाली सभ्यता को निगल रही है।

"बीसवाँ अन्धकार" कविता में "एप्रन" शब्द का भी प्रयोग बहुत सार्थक है—

"पहने काला बासदार एप्रन"[3]

"एप्रन" चोगे के अर्थ में आता है, जो कि पहना जाता है। यहाँ तकनीकी का मानवीकरण किया गया है। अर्थात् तकनीकी सभ्यता काला चोगेदार "एप्रन" पहने हुए है।

(९) स्वरचित शब्दावली

प्रत्येक सर्जनशील चिन्तक निर्माता होता है। उसमें स्वयं के द्वारा सर्जना की आकांक्षा निहित रहती है। कवि जब काव्य की सर्जना करता है, तब उसमें निजत्व को अभिव्यक्त करने की भावना मुखरित होती है। काव्यभाषा में नवनिर्मित शब्दों का महत्व होता है। कवि जब उपलब्ध शब्द को विवशता की अभिव्यक्ति के लिये अपर्याप्त पाता है, तब वह नये शब्दों का निर्माण करता है, यह निर्माण कवि की प्रतिभा और उसके व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य होता है। इस प्रकार की विशिष्टता से युक्त शब्दावली आपकी कविताओं में निम्नलिखित रूप में मिलती है, जो आपके व्यक्तित्व की परिचायक है—

१. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ५६।
२. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ६३।
३. भीतरी नदी की यात्रा, माथुर, पृ० ६२।

"छुवन, चंदिरा, मेवरा, मेघिमा, क्वारे मन्दिर, उम्र का कटोरा, चित्रगंध"[१] "देवरोल, सुनैली, पियराना, चंदरिमा"[२] "वायु का कठुला, बिकली"[३]

"शिलापंख चमकीले" काव्य संग्रह की प्रसिद्ध कविता है—"सूरज का पहिया"। इस कविता की प्रथम पंक्ति में कवि द्वारा निर्मित शब्द दर्शनीय है—

"मन के विश्वास का यह सोनचक्र रुके नहीं"[४]

"सोन चक्र" से अभिप्राय बढ़ती आस्था की निरन्तर गति से है। विश्वास "सोनचक्र" है। कवि ने अपनी इस पंक्ति में मन के विश्वास को गतिशील सोने के चक्र के रूप में चित्रित किया है। सोना बहुत ही मूल्यवान होता है, और चक्र निरन्तर गति का प्रतीक है। इस प्रकार मन के विश्वास के लिए यहाँ सोनचक्र का प्रयोग बड़ा ही सार्थक है। सोनचक्र के स्थान पर "स्वर्णचक्र" का भी प्रयोग कर सकता था, किन्तु स्वर्णचक्र में वह लय नहीं आ पाती जो मन के साथ सोनचक्र शब्द के प्रयोग से आई है। इसके अतिरिक्त "ण" कर्कश ध्वनि है, "न" अल्पप्राणों से भी कोमल है।

"छाया मत छूना मन" कविता में स्वरचित शब्दों की भरमार है। कविता के आरम्भ की दो पंक्तियाँ देखिये—

"जीवन में हैं सुरंग सुधियाँ सुहावनी,
छवियों की **चित्रगन्ध** फैली मनभावनी"[५]

"**चित्रगन्ध**" का सामान्य अर्थ है, चित्र को ही देखकर गन्ध आने लगती है, अर्थात् उसकी (प्रिया) की स्मृति में उसकी गन्ध भी आने लगती है। "चित्रगन्ध" में एक सघन भाव-बिम्ब है। इसमें वस्तु-वातावरण तथा अनुभव एक साथ संवेग के साथ से मिल गये हैं। चित्र-वास्तविकता अर्थात् वस्तु का अनुभव है। "गन्ध" उसकी समस्त अनुभव की प्रतीति है, और चित्रगन्ध में वस्तु और स्थिति एकीकृत होकर एक नई अर्थ-वत्ता प्रदान करते है।

"सूरज का पहिया" कविता में एक और शब्द आता है—"चंदरिमा"।

"**चंदरिमा** की कली"[६]

यहाँ "चंदरिमा" स्त्रीलिंग शब्द है। "चंदरिमा" से अर्थ है पूर्ण चन्द्रमा की चाँदनी। यहाँ उम्र को उसी तरह कान्तियुक्त बताया है, जैसे "चंदरिमा की कली" होती है। बड़ा नया शब्द है।

---

१. छाया, मत छूना मन, माथुर।
२. शिलापंख चमकीले, माथुर,।
३. धूप के धान, माथुर,।
४. शिलापंख चमकीले, माथुर पृ० १।
५. छाया मत छूना मन, माथुर पृ० ११।
६. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० १।

(७) नये समासान्त-पद

माथुर जी प्रयोगोन्मुखी कवि हैं। उनके काव्य में अभिव्यक्ति का स्वर प्रमुख है इसलिये भाषा को बलवती बनाने के लिये समासान्त पदावली का प्रयोग मिलता है। इस समासान्त पदावली के प्रयोग से भाषा की कसावट और सामासिक पदावली का लाघव भी प्रकट होता है। भाषा में जीवंतता का प्रभाव इस समासान्त पदावली से कवि को अभिप्रेरित है। इनकी कविता में समासान्त पदावली की छटा का अवलोकन करें—

"धूरी साँझ, दियाबरी, स्लेटी अँधेरा, बाँझ खोज, त्वचा सूखी, व्योम फाड़, शब्दम-पश्टम, आकाश दिये, कामना का सियाह"[1] "समाधि-सिंधु"[2]

"साक्षी रहे वर्तमान" काव्य-संग्रह की प्रसिद्ध कविता "आने दो आँच" समासान्त पदों से युक्त रचना है। पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"खोलो देह-बंध
मन समाधि-सिंधु हो जाए"[3]

इस कविता में "समाधि-सिन्धु" पद का प्रयोग द्रष्टव्य है। यह कविता कवि ने अपनी प्रेयसी (पत्नी) के लिये लिखा है। मन की उपमा "समाधि-सिन्धु" से दी गई है। जिस प्रकार समाधि और सिन्धु बहुत विशाल और मूक होते हैं, उसी प्रकार कवि कल्पना करता है कि प्रिय का प्यार इतना मिले कि कवि का मन समाधि और सिन्धु के समान मूक हो जाये, उस समय का वर्णन करने के लिये उसके पास शब्द न हों। प्रयोग बहुत सार्थक है।

"शिलापंख चमकीले" काव्य-संग्रह नये समासान्त पदों से युक्त रचना है। उदाहरण प्रस्तुत हैं—

"रंगीन डोरियाँ ऊर्ध्व कामनाओं वाली
ये खींचे जिनसे नये-नये आकाश-दिये"[4]

"आकाश-दिये" पद से अभिप्राय है बहुत ऊँचा आकाश को छूने वाला प्रकाश का स्रोत। कवि ने जीवन को उन्नयन की ओर ले जाने वाली जो कल्पनाएँ की थीं, वे सब समाप्त हो गईं। स्वयं ही जिन हाथों ने उन्नति के जो दिये जलाये थे, वे भी बुझ गये। असंतुलित जीवन-स्थिति का चित्रण। "आकाश-दिये" सार्थक प्रयोग है।

इस समस्त शब्दावली से यह स्पष्ट होता है कि प्रयोगशील कवि के पास भाषा की अतुल शब्द-सम्पदा का भण्डार है। वह अर्थबोध, भावबोध एवं संदर्भ के लिये उचित शब्दों को विभिन्न स्रोतों से स्वीकार करता है। शब्द चाहे जिस भाषा से आया हो,

---

१. शिलापंख चमकीले, माथुर।
२. साक्षी रहे वर्तमान, माथुर।
३. साक्षी रहे वर्तमान, माथुर, पृ० ६०।
४. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ७६।

इसकी चिन्ता कवि को नहीं। कवि ने काव्य की प्रभावोत्पादकता के लिये नये शब्दों का चयन भी किया है। देशज, तत्सम, तद्भव और विदेशी हर प्रकार के शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। नये गढ़े हुए शब्दों से कवि की सुरुचि, शब्द-बोधक्षमता और उसके वैशिष्ट्य का पता लगता है। इस सबसे माथुर जी की अद्भुत कौशल से युक्त शब्दयोजना का बोध होता है। नये गढ़े हुए शब्दों में न तो कहीं भद्दापन है, न प्रयोग का दुराग्रह। इसके विपरीत अर्थ-व्यंजना की प्रभाव दृष्टि ही उनको अभीष्ट है।

(घ) लाक्षणिकता

लाक्षणिक विधान से भाषा की शक्ति का पता चलता है। नई कविता में लाक्षणिकता का यथेष्ट विकास हुआ है। माथुर जी का कवि लाक्षणिक प्रयोगों के प्रति पूर्ण रूप से सचेष्ट है। इन प्रयोगों में नया रंग और अनूठापन है। इनकी रचना-प्रक्रिया में अंग्रेजी शब्दों का भी उपयोग हुआ है। कवि की विभिन्न रचनाओं से कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है—

आहत मिठास (जीवन का माधुर्य जो नष्ट हो गया)
अछूती डगर (वह मार्ग जिस पर कोई चला नहीं)
नपुंसक भूख (वह भूख जिसके तृप्त होने की आशा नहीं)
आलस भरा अँधेरा (ऐसा अँधेरा जिसमें सब सोये हों)
रेशमी मिठास (कोमल प्रेम माधुरी)
प्यार की एक घूँट (प्यार की लघु मात्रा)
बोझिल उजियाला (मन्द मटियाला धुँधला प्रकाश)
चरित्र की कमान (संतुलित आचरण)
खट्‌मिट्ठी चाँदनी (दुःख सुख के मिश्रित भावों को जगाने वाली चाँदनी)
एनेमिक प्रयास (निष्फल प्रयत्न)
स्टेराइल जिन्दगी (नीरसता से भरी जिन्दगी)
धुली डगर (चाँदनी ने मानों डगर को धो दिया हो)

उपर्युक्त प्रयोगों में लक्षण का चमत्कार है, जिसमें अनेक रूप, रंगों की छटा सर्वथा नूतन है। ये प्रयोग जीवन के विभिन्न पक्षों का उद्‌घाटन करने के साथ-साथ भाव-संवेदना को पुष्ट करते हैं।

(ङ) शब्द-ध्वनि

कविता केवल शब्दों का व्यवस्थित रूप से गठन ही नहीं होती, अपितु अन्तर्निहित भावों की ध्वन्यात्मक अभिव्यंजना भी होती है। कविता की भाषा सामान्यभाषा से इसलिये अलग है, क्योंकि शब्द कविता के गठन में प्रयुक्त होकर ध्वन्यात्मकता और लयात्मकता की उस भावभूमि पर कविता को लाकर खड़ा कर देते हैं, जिससे कविता

में संगीत की गेयता का बोध व्यापक रूप से होने लगता है।

प्रयोगवादी कवियों ने बौद्धिकता जनित रूक्षता को अपनाने के कारण अपनी कविताओं में परम्परागत छन्द-बद्ध गेयता को तनिक भी स्थान नहीं दिया है, किन्तु माथुर ने अनेक सुन्दर छन्द बद्ध और तर्कपूर्ण गीत भी लिखे हैं। उदाहरण के लिये उनके सुप्रसिद्ध संगीतात्मक गीत की कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं—

"छाया मत छूना, मन
होगा दुःख दूना, मन"[१]

शब्दों की ध्वन्यात्मकता व लयात्मकता का भी कवि ने पूरा-पूरा ध्यान रखा है। उसने प्रत्येक शब्द की आत्मा को उद्घाटित करने की चेष्टा की है। उनके द्वारा व्यंजित अर्थ-व्यंजनाओं को स्पष्ट किया है। कुछ शब्दों को कवि ने वातावरण का ध्वनिभाव लेकर गढ़ा है, जिसमें प्रमुख हैं—"सूनसान" तथा खंडहरों, आदि।

गूँजता था सूनसान
ऊजड़ खंडरों में
गिरते थे पत्ते
वन-पंछी नहीं बोलते थे"[२]

माथुर जी के अनुसार उपर्युक्त पंक्तियों में "सूनसान" शब्द में "ऊ" की ध्वनि लम्बाई और दूरी व्यक्त करती है, "आ" की ध्वनि विस्तार। बीच में "न" की ध्वनि सनसनाहट और गहराई व्यक्त करती है। इस प्रकार "सूनसान" शब्द गहरे सूनसान के यथार्थ रूप को प्रकट करता है।

माथुर जी ने अपनी कविता में ध्वन्यर्थ-व्यंजक शब्दों का भी प्रयोग किया है। ध्वनिमूलक शब्द स्वतः एक प्रकार का बिम्ब प्रस्तुत करते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"सनसनाती साँस सूनी
वायु का कठुला खनकता
झींगुरों की खंजड़ी पर
साँस-सा बीहड़ झनकता"[३]

इसमें सनसनाती, खनकता, झनकता आदि शब्द ध्वनिमूलक हैं। इनसे ध्वनि की अनुभूति होती है, और वह ध्वनि एक चित्र प्रस्तुत करती है। इन शब्दों के प्रयोग से कविता में संगीतात्मकता की वृद्धि होती है।

कवि के गीतों में काव्यतत्त्व के साथ संगीतमयता का स्वरूप भी मिलता है। इस संगीतमयता का कारण वह परम्परागत राग-रागनियों का स्वरूप नहीं होता जिनके

---

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ५४।
२. धूप के धान, माथुर।
३. धूप के धान, माथुर, पृ० ८७।

आधार पर कवियों ने अपने काव्य का सृजन किया। वह संगीतात्मकता आधुनिक काल में बौद्धिक कविता के प्रभाव में लिखने वाले कवि के लिये मात्र शब्दों के सही संयोजन से स्वतः प्राप्त हो जाती है।

"जीवन में हैं सुरंग सुधियाँ सुहावनी
छवियों की चित्र-गन्ध फैली मनभावनी
तन सुगन्ध शेष रही बीत गयी यामिनी
कुन्तल के फूलों की याद बनी चाँदनी"[1]

इस कविता में कवि ने किसी विशिष्ट राग और रागिनी का प्रयोग तो नहीं किया है, परन्तु शब्दों को इस ढंग से संयोजित किया है कि गेयता स्वतः इस क्रम से स्फुटित होती हुई परिलक्षित होती है। जहाँ शब्दों के क्रम-संयोजन पर कवि ने ध्यान रखा है, वहीं पर ध्वनियों की समानता पर भी ध्यान रखने के कारण गेयात्मकता का निर्वाह होते हुए दिखाई देता है। जैसे—

"ये मिट्टी की गन्ध से सोंधी हवाएँ
ये जामुन के रंग-सी नीली घटाएँ
उड़ी आ रही हैं लहर-सी फुहारें
उमगते उरज मेघमाती भुजाएँ"[2]

कवि ने शब्द-चयन में इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि शब्द भावों का अन्तर्चित्र खींचते हुए और कथ्य की व्यंजना को प्रकट करते हुए दिखाई देते हैं। शब्दों की यह चयन-प्रक्रिया भाव के बिम्ब को ही नहीं उभारती, अपितु कथ्य की ध्वनि को भी ध्वन्यात्मक रूप में अभिव्यक्त करती है—

"काले अगरु से उठे आज बादल"

'बादलों का उठना और घुमड़ना' इस भाव की व्यंजना को इस पंक्ति के शब्दों में इस प्रकार से पिरोया है कि स्वतः ध्वनि उन पंक्तियों में निश्रित होती हुई सुनाई देती है।

कुछ रचनाओं में कवि ने छन्द-विधान के साथ ध्वनि का ताजा प्रयोग किया है। इस ध्वन्यात्मकता के निर्वाह में तुकान्त योजना मिलती है। तुकान्त का यह प्रयास कविता में गेयता को बढ़ाता है। जैसे—

"सेजो पै आ जाना निंदिया कुमारी—
रात का आँचल आधा खिसल गया
आँखों में बोझिले सपने लिटा जा,
बातों का फूल भी हलके मसल गया

१. छाया मत छूना मन, माथुर, पृ० ११।
२. छाया मत छूना मन, माथुर, पृ० १३।

चाँद में सोने का दीपक उजल गया"[1]

कवि ने अनेक गीतों में फैटेन्सी शिल्प का प्रयोग किया है। जैसे

"पलकों से कुछ उड़ी छा गई
चित्र डूबे
हुये दिपगार
साँवले आइने
अक्स पड़ने लगे
गन्ध लेने लगी आकार"[2]

इस प्रकार की कविताओं में कवि ने अर्थ की समस्त आच्छायाओं को व्यक्त करने वाले जिन अच्युत शब्दों का प्रयोग किया है, वे यांत्रिक ढंग से छन्द की आवृत्ति के पोषक नहीं हैं। गेयता को बढ़ाने वाले, और गीत के संगीत-सौष्ठव को उभारने में सक्षम प्रतीत होते हैं। इस प्रकार के गीतों में कथ्य की जरूरत के अनुसार छन्द को कहीं-कहीं तोड़ दिया है, शब्द थक गये हैं, लय लम्बी हो गई है। उसके पश्चात् भी कविता का आन्तरिक सौन्दर्य और प्रवाह नष्ट नहीं हुआ है—[3]

"मन्दी उजेली अटारियों में,
शरमीली का सोते में घूँघट हट रहा
लहराता चोटी का लाल गुलाब भी,
अधढले गालों के नीचे सिमट रहा
चरणों की रुनझुन बेहोश सो रही—
दूर का गीत भी होले से मिट रहा
सेजों पे आ जाना निंदिया कुमारी"[4]

कवि ने तुकान्त योजना में अनुप्रास की छटा का प्रयोग भी किया है। स्वर-ध्वनियों की तुकान्त के लिए कवि ने कहीं-कहीं पर व्यंजन-ध्वनियों के समान शब्दों से तुकान्त और लयवत्ता उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। जैसे—

"हरी दूब की किरन सी लता में।"

इस तरह कवि ने अपने गीत और उसमें निहित गेयता को परम्परागत प्रचलित आधुनिक गीतों से भिन्न रखा है। तुकान्त और अनुप्रास पर आधारित गीतों में गेयता का स्वरूप प्रभावकारी मिलता है। जैसे—

"तुम, ताजी नयी घटा नील-मोर रंग की
जाल के चंदोवे, साड़ी-कसो, नीची, तंग-सी

---

१. छाया मत छूना मन, माथुर, पृ० २७।
२. छाया मत छूना मन, माथुर, पृ० १७।
३. नयी कविता का स्वरूप विकास, प्रो० श्यामसुन्दर घोष।
४. छाया मत छूना मन, माथुर पृ० २७।

बाँहों भरी देह थी, पेड़ा की सुगन्ध-सी
नसों की नदियों में घूमी जलतरंग-सी"[1]

स्पष्ट है कि माथुर जी की कविता में शब्द-संगीत प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। इस संदर्भ में प्रो० श्यामसुन्दर घोष का कथन पठनीय है—

"जहाँ नयी कविता में एक नवीन लयात्मकता, तालबद्धता और संगीत का समावेश हुआ है, वहाँ उसमें उस पुरानी लयात्मकता, तालबद्धता और संगीत का भी थोड़ा सा अंश शेष है, जो छायावादी प्रगतिवादी काव्य की विशेषता रही है।"[2]

(च) छन्द-विधान

शब्द की गत्यात्मक योजना और भाषा का प्रवाह-धर्म एक ही वस्तु है। शब्दों की गत्यात्मक योजना से ही भाषा में प्रवाह का संचार होता है। प्रत्येक भाषा की अपनी एक शब्दयोजना होती है, और इसीलिये प्रत्येक भाषा का अपना एक प्रवाह होता है। भाषा की उसी प्राकृतिक लय में एक विशेष लय की प्राप्ति के लिये जो नाद-विधान होता है, वही छन्द है।

"कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छंद हृत्कंपन, कविता का स्वभाव ही छंद में लयमान होना है—कवि सुमित्रानन्दन पंत के इस कथन में भावना का आवेग भले ही हो, जहाँ तक कविता और छन्द के पारस्परिक और अभिन्न सम्बन्ध के व्यक्तीकरण का प्रश्न है, वह पर्याप्त सजीव, सत्य और स्पष्ट है। छन्द समस्त भारतीय काव्य के मूलाधार रहे हैं उनमें परिवर्तन, संशोधन, और परिवर्द्धन अवश्य होता रहा है, परन्तु छन्दविहीन काव्य की कल्पना कभी भी भारतीय मस्तिष्क में नहीं आ सकी।"[3]

छन्दों के प्रति नये कवियों का दृष्टिकोण पूर्णतः विद्रोहात्मक रहा है। नये कवियों ने छन्द-रचना की पूर्व-प्रचलित सभी पद्धतियों को पूर्णतया अस्वीकार करते हुए अतुकान्त और मुक्त छन्द के नूतन रचनाविधान को स्वीकार किया है। नवीन भाव-बोध को परम्परागत छन्दों में अभिव्यक्त करने से कथ्य का सम्पूर्ण सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। मुक्त छन्द में भावों की प्रवाह-मयता ज्यों की त्यों बनी रहती है।

"मुक्त छन्द की विशेषता उसका प्रवाह, तालबद्धता, और लयात्मकता है। इसी के आधार पर मुक्त छन्द जीवित रहता है। मुक्त छन्द की पंक्तियों का सम्बन्ध बाह्य न होकर आन्तरिक है। उसका प्रवाह, ताल, लय, भावों और अर्थों द्वारा अनुशासित होता है। छायावाद तक इस सत्य को ठीक-ठीक समझा गया। कुछ कवियों ने विशेषकर निराला ने, बहुत सफल मुक्त छन्द लिखे, पर उसके बाद मुक्त छन्द की समस्याओं पर किसी का ध्यान न गया।"[4]

---

१. छाया मत छूना मन, माथुर पृ० १५।
२. नयी कविता का स्वरूप विकास, प्रो० श्यामसुन्दर घोष, पृ० ११४।
३. नया हिन्दी काव्य, डॉ० शिवकुमार मिश्र, पृ० ३५८।
४. नयी कविता का स्वरूप विकास, प्रो० श्यामसुन्दर घोष पृ० ११३।

"नयी कविता में छन्दों की विशेषता यह है कि वे अपनी शक्ति के बल पर पाँव रोपना चाहते है, संगीत का सहारा नहीं लेते। जहाँ नयी कविता में एक नवीन लयात्मकता, तालबद्धता और संगीत का समावेश हुआ है, वहाँ इसमें उस पुरानी लयात्मकता, तालबद्धता और संगीत का भी थोड़ा सा अंश है, जो छायावादी-प्रगतिवाद काव्य की विशेषता रही है।"[1]

छन्द सम्बन्धी नवीनता माथुर जी के काव्य में सर्वाधिक उपलब्ध होती है। उन्होंने मुक्त छन्द को ही पसन्द किया है। छन्द के क्षेत्र में अनेक नवीन प्रयोग भी किये हैं। "तार सप्तक" के वक्तव्य में उन्होंने छन्द सम्बन्धी नवीन विचारधारा का परिचय इस प्रकार दिया है—"मुक्त छन्द का मैंने सम्पूर्ण विधान रचा है। मुक्त छन्द को दो भागों में विभक्त किया है—वार्णिक और मात्रिक तथा इनके रूपान्तर। वार्णिक में मैंने कवित्त के विराम भी शुद्ध माने हैं, जब तक वे अनुच्चरित (अन-एक्सेण्टेड) वर्ण पर समाप्त न होकर उच्चरित (एक्सेण्टेड) पर समाप्त होते हैं। इस भाँति कवित्त के नियमों को लेकर कितने ही प्रकार की मुक्तछन्द पंक्तियाँ निर्मित की हैं। एक कविता में एक ही प्रकार का मुक्त छन्द प्रयुक्त होना आवश्यक समझता हूँ। यदि उच्चारित वर्णविन्यास (सिलेबल) से पंक्ति आरम्भ हुई हो तो समस्त पंक्तियाँ उच्चरित से ही प्रारभ होनी चाहिये।...पंक्तियों के विरामों की ध्वनि-मात्राएँ पूर्णतः सम एवं शुद्ध होना अत्यन्त आवश्यक मानता हूँ। इन नियमों के विरुद्ध लिखा गया मुक्त छन्द अशुद्ध मानता हूँ।"[2]

मुक्त छन्द सम्बन्धी मान्यताओं को माथुर जी ने अपने काव्य में पूरी तरह निभाने की चेष्टा की है। इस प्रयास में उन्हें अन्य नये कवियों की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है। डा० शिवकुमार मिश्र के अनुसार—

"माथुर जी अपने विविध प्रयोगों के बल पर न केवल अपने मुक्त छन्द को अधिक सुथरा बनाने में सफल हुए हैं, अपितु उन्होंने उसे एक सहज संगीतात्मकता भी प्रदान की है। उनका मुक्त छन्द चाहे वह कवित्त का आधार लिये हो, चाहे सवैये का, चाहे गजल अथवा बहर की लय पर आधारित हो, चाहे किसी अन्य लोकप्रचलित माध्यम पर, सब में लय का समावेश पूरे आकर्षण के साथ विद्यमान मिलेगा।"[3]

माथुर जी ने कवित्त और घनाक्षरी आदि परम्परागत छन्दों को तोड़ने के साथ ही साथ उर्दू की "गजल" और "बहर" की लय के आधार पर तथा अंग्रेजी छन्दों के आधार पर रचना की है। माथुर जी के काव्य में छन्द सम्बन्धी नवीनता के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

---

१. नयी कविता का स्वरूप विकास, प्रो० श्यामसुन्दर घोष, पृ० ११५।
२. तारसप्तक, (वक्तव्य) माथुर, पृ० १२५-१२६।
३. नया हिन्दी काव्य, डा० शिवकुमार मिश्र, पृ० २६८।

"आज है केसर रंग रंगे वन,
रंजित शाम भी फागुन की खिली पीली कली सी,
केसर के वसनों में छिपा तन,
सोने की छाँह-सा,
बोलती आँखों में
पहिले वसंत के फूल का रंग है"[1]

उपर्युक्त कविता में सवैया को तोड़कर मुक्त छन्द की रचना की गई है, जिसमें आन्तरिक लयबद्धता और संगीतात्मकता का पूर्ण निर्वाह किया गया है।

"नये साल की सांझ" कविता में छन्द-रचना वातावरण निर्माण के लिए गजल के काल-मान पर की गई है—

"ये नये साल की है सांझ नई
एक और वर्ष की किरन उजल के डूब गई
उठ रहा है वह नया दूज का चाँद,
दुनिया चाँद श्वेत हंसली सा"[2]

"शाम की धूप" कविता में उर्दू की बहर को तोड़कर उनके कालमान और लय के आधार पर नया मुक्त छन्द रचा है—

"चल पड़ी तेज हवा
बदल गया मौसम
आ गई धूप में कुछ गरमाई
बढ़ गया दिन का उजेला रास्ता
जिसपे सूरज के चमकते पहिये
शाम को देर तक चले जाते"[3]

लोकगीतों के आधार पर भी छन्द योजना उपलब्ध होती है। ऐसे गीतों में लोकधुनों का आश्रय लिया गया है। लोकगीतों में ग्रामीण-जीवन के विविध पक्षों को उद्घाटित करने के साथ-साथ रोमानी भावनाओं का प्रकाशन भी सफलतापूर्वक किया है। इस दृष्टि से "चाँदनी गरबा" लोकगीत महत्वपूर्ण है—

"उजला पाख क्वांर का फूला कास सा
खिली चाँदनी रात की कली सुहावनी
नरम लचूनी रंग घुले आकाश में,
छिटक रही है पूनमा की चाँदनी"[4]

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० १११।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० १६०।
३. धूप के धान, माथुर, पृ० २७।
४. धूप के धान, माथुर, पृ० ७२।

काव्य में लयात्मकता का निर्वाह करने के लिये उपर्युक्त "चाँदनी मरवा" नामक लोकगीत में कवि ने पूरनमासी के स्थान पर "पूरनमा" शब्द का प्रयोग किया है। छन्द में "पूरनमासी" शब्द के स्थान पर उसका दूसरा पर्याय भी नहीं रखा है, क्योंकि देशज वातावरण के अनुरूप यही शब्द संगत था।

माथुर जी ने छन्दों को अनेक स्थलों पर भंग किया है। ऐसा उन्होंने भाववस्तु में नव्यता लाने के लिये किया है। इस दृष्टि से माथुर जी के विचार द्रष्टव्य है—"जिस पंक्ति में मेरा कथ्य पूरा हो गया है, किन्तु छन्द के अनुसार चरण की मात्राएं या शक्तियाँ पूरी नहीं हुई, उसे शुद्ध रखने के लिये अनावश्यक शब्दों, पर्यायों या विशेषणों की भरती नहीं की, जान बूझकर न्यूनाधिक रहने दिया है।"[1]

कवि के इस कथन की पुष्टि "छाया मत छूना मन" कविता से स्पष्टतः की जा सकती है—

"यश है, न वैभव है, मान है न सरमाया
जितना ही दौड़ा तू उतना ही भरमाया
प्रभुता का शरण-बिम्ब केवल मृग तृष्णा है
हर चंदिरा में छिपी एक रात कृष्णा है"[2]

"हर चंदिरा में छिपी एक रात कृष्णा है" इस पंक्ति का "में" शब्द दो मात्रा का है, जबकि छन्द के अनुसार यहाँ एक मात्रा की ही आवश्यकता है। "में" शब्द में एक अधिक है, किन्तु छन्द भंग होते के बाद भी उसे उसी रूप में रहने दिया है, क्योंकि "चंदिरा" तथा 'छिपी" जैसे अर्थवान शब्द को बदला नहीं जा सकता। पंक्ति के "में" शब्द को उर्दू शैली की तरह हलन्त करके पढ़ना वांछित नहीं है, वह वैसा ही पूरी ध्वनि के साथ पढ़ा जायेगा। लयान्विति फिर भी भंग नहीं होगी, यदि चंदिरा शब्द को पढ़ते समय चाँदा या चन्द्रा की तरह न पढ़कर पूरा स्वर-ध्वनियों के साथ पढ़ा जाये, जिसके फलस्वरूप चंदिरा के "दि" तथा "रा" पर ठहरना पड़ेगा और संघात "च" पर पूरा-पूरा असर पड़ेगा। पंक्ति इसी रूप में सहज थी, और भाववस्तु की अचूक अभिव्यक्ति करती थी, अतः उसे छन्द की लीक पीटने के लिये संशोधित नहीं किया।

छन्द-भंग का एक अन्य उदाहरण "अनकही बात" कविता में देखा जा सकता है—

"खेल से,
पल्ला जो उँगली पर कसा
मन लिपट कर रह गया
छूटा नहीं।"[3]

---

१. नयी कविता सीमाएँ और संभावनाएं, माथुर, पृ० १२३।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० १०१।
३. शिला पंख चमकीले, माथुर, पृ० ५१।

"पत्ता" शब्द में एक मात्रा कम होने पर भी पूरी पंक्ति में आंतरिक लयात्मकता है, फलस्वरूप मात्रा की कमी खटकती नहीं।

स्पष्ट है कि माथुर जी ने कहीं भी छन्दों के बन्धन को स्वीकार नहीं किया है। लयात्मकता व भावबोध की स्पष्टता के कारण जहाँ कहीं भी उन्हें छन्द भंग करने की आवश्यकता अनुभव हुई है, वहाँ उन्होंने पूर्ण स्वतंत्रता से काम लिया है। इस संदर्भ में स्वयं माथुर जी ने "धूप के धान" में लिखा है—

"अपने छन्दबद्ध गीतों में मैंने बिम्ब विधान और रंग योजना का विशेष ध्यान रखा है। उनकी पीठिका अधिकतर नगरीय संवेदना से ही सम्बद्ध है। छन्द को अनेक स्थानों पर भंग भी किया है, जिससे एकरसता उत्पन्न न हो, तथा छन्द और तुकान्त भाववस्तु का अनुगमन करें, भाववस्तु उनकी यान्त्रिकता की नहीं।"[1]

माथुर जी ने तुकान्त कविताएँ भी लिखी हैं, किन्तु मुक्त छन्द को विशेष प्रश्रय दिया है। उनकी रचनाओं मे अधिकांश कविताओं का आधार लय है, जिनमें लयाधार है ही नहीं, वे शिल्प की दृष्टि से कविता न होकर गद्य के अधिक समीप हैं, जैसे "शाम की धूप" कविता की निम्न पंक्तियाँ—

"पेड़ के पास सूर्य जा पहुँचा,
जिससे पत्तों का रंग लाल हुआ
शाम का झुटपुटा-सा होता है"[2]

माथुर जी ने अपनी रचनाओं मे निम्नलिखित छन्दों का प्रयोग किया है—पीयूष वर्ष, सखी, रोला, सार, सरसी, होर, तारक। इन छन्दों के अतिरिक्त कुछ छन्दों को मिलाकर नये छन्दों का सृजन किया है—सिन्धु और मल्लिका, विष्णुपद गीता और सरसी, योग सिन्धु और रूपमाला को मिलाकर नया छन्द बन गया है। माथुर जी ने रुबाइयों और गजलें भी लिखी हैं। उदाहरण के लिये रोला छन्द में लिखित "मिट्टी के सितारे", "माटी और मेघ", सार छन्द में "नई दिवाली", सरसी छन्द में सायंकाल और पन्द्रह अगस्त होर छन्द में युगारम्भ, प्लवगंम छन्द में "चाँदनी शरवा, मालिनी और सिन्धु छन्द में "रात हेमन्त की कविताएं" देखी जा सकती है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि माथुर जी ने परम्परागत पुराने कुछ छन्दों के योग से नये छन्द का निर्माण किया है। इस सन्दर्भ में डा० शिवकुमार मिश्र ने लिखा है—

"माथुर जी के छन्द विधान के सम्बन्ध में यदि यह कहा जाये कि उन्होंने उसे स्त्रीत्व की सुकुमारता ही प्रदान की है, पौरुष के ओजयुक्त प्रवाह की सृष्टि नहीं की, तो कदाचित् अत्युक्ति न होगी। इसके लिये उनकी सहज कोमल रूमानी प्रवृत्ति ही उत्तरदायी मानी जा सकती है।"[3]

---

१. धूप के धान, माथुर, भूमिका, पृ० १४।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० २८
३. नया हिन्दी काव्य, डा० शिवकुमार मिश्र, पृ० ३६९-७०।

निष्कर्षतः माथुर जी की कविताओं द्वारा भाषा, शिल्प तथा छन्द के एक बहुत नये और विस्तृत क्षेत्र का उद्घाटन हुआ है। उनके बाद की कविताओं में (उनके बाद की पीढ़ी की) उनके प्रयोगों से बहुत कुछ मार्ग दर्शन मिला है।

(छ) काव्य शैली

नये कवियों में माथुर जी ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनके काव्य में शैली के विविध रूप दृष्टिगत होते हैं। उनके काव्य में छायावादी गीत शैली से लेकर आधुनिकतम पद्य, संलाप एवं एकालाप शैली तक के दर्शन होते हैं, जिसमें उनकी उच्च प्रतिभा व भावबोध की सूक्ष्मता मिलती है।

"उनकी चेतना अन्य कवियों की अपेक्षा सहज काव्यमयी है—उनका सौन्दर्य-बोध पाश्चात्य विचारों से गढ़कर तैयार किया हुआ नहीं है—नये उपकरण नव जीवन की चेतना के साथ अनाविल सौन्दर्य-भावना को मूर्तित करने के लिये ही प्रयुक्त हुए हैं, नये उपकरणों को जोड़कर नई सौन्दर्य-भावना को संघटित करने का कृत्रिम प्रयास यहाँ नहीं है।"[1]

नगरीय बोध के कवि होने पर भी माथुर जी ने लोकगीतों तक की धुनों का सुन्दर प्रयोग किया है। उनके काव्य में पाये जाने वाले काव्य-रूप इस प्रकार हैं—

(१) प्रगीत (लिरिक)

प्रगीतों का उत्कर्ष छायावाद-युग में सर्वाधिक मिलता है। इस प्रकार की कविताएं माथुर जी के प्रथम काव्य-संग्रह "मंजीर" में मिलती हैं, जिसमें प्रभावोत्पादकता के साथ-साथ संगीतमयता भी है। संगीतमय शब्दों में विविध मनोदशाओं की हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति मिलती है। यथा—

तुमने प्यार नहीं पहचाना
तुमने समझा जिसको गागर
आग भरा वह मेरा सागर
वे मेरे मोती थे जिनको
तुमने समझ लिया था पत्थर
तुमने छोड़ा धूल बताकर
मिटती लहर सोचकर तुमने उठता ज्वार नहीं पहिचाना"[2]

(२) गीत

गीत के सम्बन्ध में माथुर जी का विचार है—"मैं गीत को अनुभूति का प्रतीक

---

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—माथुर, कैलाश वाजपेयी' डा० नगेन्द्र, पृ० ३१।
२. मंजीर, माथुर, पृ० ५०।

चित्र मानता हूँ। अभिधामूलक अभिव्यंजना के स्थान पर सांकेतिकता की सबसे अधिक आवश्यकता गीत में होती है, यह मेरी स्थापना है''।[१]

गीतों की परम्परागत टेकनीक में भी माथुर जी ने परिवर्तन किया है। उन्होंने सर्वत्र चार पंक्ति वाले ''चरणों'' का निर्वाह नहीं किया है। भावाभिव्यंजन की आवश्यकतानुसार उन्होंने गीत के बीच में अतुकान्त पंक्तियों का प्रयोग भी किया है। इससे यांत्रिक रूपाकार में काफी परिवर्तन हुआ है, और गीतों में भाव-विस्तार के लिये स्वतत्रता भी मिली है। ''हेमन्ती पूनो'' कविता का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

''आज दिखता है दही सा चाँद शीतल
कौन जाने स्याह शीशा चाँद हो कल
उड़े उजली धूल बनकर चाँदनी भी
आबनूसी मूर्ति सी हो आयु उज्ज्वल
इसलिये हेमन्त की
यह मंद ठिठुरन
तन छुअन से
उष्म तुम कर दो, रसीली''[२]

गीत के सम्बन्ध में माथुर जी की धारणा पृथक है —

''गिरिजा कुमार जी ने पहली वार समसामयिक काव्य की तुलना में परम्परा से हटकर गीत को नये धरातल पर प्रतिष्ठित किया, और नये उपमानों और प्रतीकों के माध्यम से भाषा को बिम्बात्मकता की ओर मोड़ दिया। समसामयिक गीतों से माथुर जी के गीत इसलिये भी अलग हैं कि उनकी गीतात्मकता में आधुनिक भाव और सौन्दर्यबोध है, सामन्ती रोमांस नहीं''।[३]

कहीं-कहीं कवि ने परम्परागत रूपाकार का भी प्रयोग किया है, जिसमें प्रारम्भ की दो पंक्तियाँ जिनकी तुकें आपस में मिलती हैं इसके पश्चात् चार पंक्ति वाले टाइप बन्द अंतरे। ये चारों पंक्तियाँ भी तुकान्त होती हैं। इस प्रकार की शैली का प्रयोग भी माथुर जी के काव्य में मिलता है—

''छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन
जीवन में हैं सुरंग सुधियाँ सुहावनी
छवियों की चित्रगन्ध फैली मनभावनी
तन सुगंध शेष रही बीत गई यामिनी
कुंतल के फूलों की याद बनी चाँदनी''[४]

---

१. नयी कविता सीमाएँ और संभावनाएं, माथुर, पृ० १२६।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ११२।
३. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—माथुर, कैलाश बाजपेयी, डा० नगेन्द्र, पृ० १४।
४. धूप के धान, माथुर, पृ० १०१।

अंग्रेजी एलजी के आधार पर माथुर जी ने शोकगीत भी लिखे हैं। शोकगीत से अभिप्राय है किसी स्नेही व्यक्ति के दिवंगत होने पर उसके प्रति शोकपूर्ण रचना— गाँधी के निधन पर लिखी "सायंकाल" नामक कविता का उदाहरण —

"सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ
काल पुरुष मिट गया, धरा का सूना भाल हुआ
आदि ज्योति उठ गई आज
मिट्टी के घेरे पार
युग की अक्षय आत्मा सिमटी
बनी एक चीत्कार
आज समय के चरण रुक गये
छुई प्रलय की हार"[1]

(३) मोनोलॉग या एकालाप

शैली के इस रूप में कविता में भाषण निहित रहता है, और श्रोता मौन रहता है। इस प्रकार की कविता में संवादों व घटनाओं का अभाव रहने पर भी चरित्र-विशेष के मनोविश्लेषण की संभावनाएँ रहती हैं। इस दृष्टि से माथुर जी की "याज्ञवल्क्य और गार्गी" एकालाप महत्वपूर्ण है, जिसमें अव्यक्त अक्षर निर्गुण ईश्वर को "अणु" शक्ति के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है।

"प्रश्न मत पूछो
निरुत्तर हूँ
× × ×
क्योंकि क्षय अव्यक्त, अक्षर
सूक्ष्म निर्गुण तत्व में
जीवित धरा में
रस ठना है
हो गया है विघन अणु का
परम ब्रह्म अनादि अणु का"[2]

(४) डायलॉग अथवा संलाप शैली

इस काव्य-रूप के अन्तर्गत दो पात्रों आदि के मध्य संलाप होने के कारण नाटकीयता की नियोजना की जाती है, किन्तु काव्यगत संवाद नाटक के संवाद से भिन्न होते हैं। माथुर जी ने इस संलाप शैली का उपयोग "देह की आवाज" कविता में किया है। इसमें शरीर और मन के बीच छन्दमय वार्तालाप है।

---

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ४४।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ७८।

"मन ने शरीर से पूछा
क्यों है इतना आकर्षण
रसमय चुम्बकीय कसी देह का
× × ×
पशुओं जैसे सब काम
देह करती है
छिन भरी जन्मती, जीती है, मरती है
× × ×
उत्तर में उत्तर में फिर आवाज
देह की बोली
ये बुद्धिज्ञान, आत्मा की सभी अदितियाँ
है देह-तेज की ज्योतित भावकृतियाँ
खिलता है देह बीज से
पंकज मन का"[1]

(५) पत्र-शिल्प

कथा-साहित्य की भांति कविता के क्षेत्र में भी इस शैली का प्रयोग हुआ है। इसमें पत्र की कल्पना करके उत्तर देने की प्रक्रिया का समावेश होता है। पत्र-शिल्प का प्रयोग माथुर जी ने अपने नवीन काव्य संग्रह "जो बँध नहीं सका" की "प्यार की तीन व्यंजनाएं" कविता में किया है। तीन अलग-अलग पात्रों में अपने प्रणय-भावनाओं को प्रेयसी के प्रति निवेदित किया गया है—

"दो खत भेज चुका हूँ
पर उत्तर नहीं आया
तुम्हारा
हमेशा यही करती हो
सोचती ही नहीं
कि इधर भी डाकखाना है
और डाकिया रोज यहाँ भी आता है"[2]

(६) लोकगीतों की धुनों पर आधारित गीत

नयी कविता में भाषा को अधिकाधिक जनसामान्य के स्तर तक लाने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार के प्रयोग माथुर जी की रचनाओं में भी मिलते हैं। गुजराती

१. धूप के धान, माथुर, पृ० १०३, १०६।
२. जो बंध नहीं सका, माथुर, पृ० ६८-६६।

लोक-नृत्य "गरवा" के साथ गाये जाने वाले गीतों के आधार पर उन्होंने "चाँदनी-गरबा" गीत की रचना की। इसके विषय में माथुर जी ने स्वयं लिखा है—"चाँदनी गरबा" का छन्द एक गुजराती लोकगीत से लिया है, जिसे गरबा नृत्य के समय गाया जाता है।"[1] गीत की कुछ पंक्तियाँ देखिये—

"उभरे रोएँ छुवा गई है चाँदनी
सौंण मुकीले चुभा गई है चाँदनी
चंचल नयनी गोरी हिरनी चाँदनी"[2]

(७) समाज यथार्थ शिल्प

इस शिल्प के भी सर्वप्रथम प्रयोगकर्ता माथुर जी हैं, और इस दृष्टि से श्रेष्ठ रचना है—ढाकबनी। कवि के अनुसार—"ढाकबनी" में जहाँ एक ओर वातावरण निर्माण के लिए जनपदीय (बुन्देलखण्ड) उपमान, प्रतीक और शब्द-योजना का आधार लिया गया है, वहां दूसरी ओर समाज-यथार्थ के शिल्प का प्रथम बार उपयोग किया गया है।[3] ग्रामीण जीवन का अभावग्रस्त यथार्थ चित्र कवि ने इसमें प्रस्तुत किया है। उदाहरणस्वरूप—

"घन बनस्पति भरे जंगल
और यह जीवन भिखारी
बाप नलका घूमता है
भौंरे हैं हल कुल्हाड़ी।"[4]

माथुर जी ने कई लम्बी कविताओं की रचना भी की है। ये वृहदाकार कविताएँ उनके काव्य की श्रेष्ठ उपलब्धि हैं। उदाहरणस्वरूप—"मंजीर" की 'जौहर की धूल', 'नाश और निर्माण' की 'ज्यौनार', 'धूप के धान' की 'एशिया का जागरण', 'पहिये', 'भीड़ रोमांस', 'देह की आवाज', 'तूफान-एक्सप्रेस की रात', 'हल्दा-देश' आदि। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कवि की नई कविताएँ दस-दस पृष्ठ तक की हैं। हिन्दी कविता को यह उनकी अमूल्य देन है, जो उनकी काव्य-शैली का रूप प्रस्तुत करती है।

•

१. धूप के धान (निवेदन) माथुर, पृ० १५।
२. धूप के धान, माथुर, पृ० ७३।
३. धूप के धान, माथुर, पृ० १५।
४. धूप के धान, माथुर, पृ० ८७।

उपसंहार

आधुनिक बोध और नूतन काव्यसंवेदनाओं के सफल कलाकार के रूप में गिरिजा कुमार माथुर ''तारसप्तक'' के कवियों में सबसे अलग दिखाई पड़ते हैं।

अपनी रोमानी संवेदना, सामाजिक यथार्थ, युगीन परिप्रेक्ष्य में मानव की परिस्थितियों के सही मूल्यांकन तथा नवीन वैज्ञानिक चेतना की सरस व सरल अभिव्यक्ति के साथ-साथ टेकनीक के क्षेत्र में किये गये क्रान्तिकारी परिवर्तनों के कारण माथुर जी निःसंदेह नयी कविता की एक ऐसी पृथक् और महत्वपूर्ण इकाई के रूप में सामने आते हैं जिनके काव्य के समग्र मूल्यांकन की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

गिरिजा कुमार माथुर की जीवन विविधताओं का चलचित्र है। विविध स्थान, परिस्थितियाँ एवं विविध विचारधाराओं के गहरे प्रभाव से कवि के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। उनके हृदय में एक ओर स्नेह की तरलता है, दूसरी ओर विद्रोह की आग; एक ओर त्रस्त ओर उत्पीड़ित मानवता के प्रति असीम करुणा है, दूसरी ओर अन्याय ओर शोषण के प्रति आक्रोश तथा एक ओर वर्तमान के प्रति खीझ है, तो दूसरी ओर भविष्य के प्रति आशा और विश्वास। उनका व्यक्तित्व कुछ ऐसे विरोधी तत्वों से निर्मित है, जिसमें कुसुम-सी कोमलता और वज्र-सी कठोरता का योग है।

साहित्य को समझने की अथवा उसको विश्लेषित करने की अनेक दृष्टियाँ हैं। आज समीक्षा-जगत में साहित्य को विश्लेषित करने की एक नवीन दृष्टिशैली विज्ञान के रूप में विकसित हुई हैं।

संरचना एक मनोवैज्ञानिक यथार्थ है, आंतरिक अनुभव की उपलब्धि है। इसका अपना अस्तित्व है तथा अपने अस्तित्व को हमारी चेतना पर आरोपित करना इसकी आंतरिक विशेषता है। संरचना पूर्ण होती है, जीवंत होती है। वह गतिशील है, स्थिर या जड़ नहीं। उसमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, विकास होता रहता है। तभी वह एक पूर्ण वस्तु बनती है।

किसी कृति मे सूक्ष्म प्रभाव निष्पन्न करने वाले तत्वों का समग्र अवलोकन ''बुनावट'' है। भाषा और साहित्य के सन्दर्भ में बुनावट का सम्बन्ध कथ्य के ऐन्द्रिक पक्ष से रहता है। यदि बुनावट की स्थिति एक भवन के ढाँचे के समान है, तो बनावट का स्थान उसमें लगे सौंदर्य उपकरणों के समान है। बुनावट का पूरा क्षेत्र ऐन्द्रिक होने के कारण रूपगत होता है।

कोई भी काव्यकृति किसी विशिष्ट उद्देश्य अथवा प्रयोजन को लेकर लिखी जाती है। इसे मूल प्रयोजन, मूल प्रतिपाद्य अथवा केन्द्र विन्दु कुछ भी कह सकते हैं।

माथुर जी ने अपने हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति गीतों के माध्यम से की है। गीतिकाव्य मूलतः वैयक्तिक होता है, क्योंकि उसमें हृदयगत भावों का सहज उच्छलन होता है। वैयक्तिक कवियों की भांति माथुर जी के काव्य की प्रमुख विशेषता है— प्रेम और शृङ्गार। रंग, रस और रोमान की प्रवृत्ति उनके काव्य में सर्वत्र देखी जा सकती है। माथुर जी ने स्वयं इसे अपने काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है, और उसकी स्थूल व केन्द्रीय अभिव्यक्ति भी की। ''मंजीर'', ''नाश और निर्माण'' ये दोनों रचनाएं रोमानी रूप और आभा से मण्डित हैं। ''मंजीर'' में इन्होंने किशोर हृदय की रंगीन भाव-कल्पनाओं को स्वर प्रदान किया है।

कवि के काव्य में स्त्री परकीया या अनैतिक सम्बन्ध की मार्जन बनकर नहीं आती, वहां प्रेम, शृङ्गार कामानुभूति एक स्वस्थ सामाजिक चेतना बनकर प्रस्तुत होती है। माथुर जी के शब्दों में--

''हमारे यहां नारी को विधायक, कलात्मक, नैतिक शक्ति, सामाजिक स्रोत के रूप में प्रकट किया गया है''[1]

माथुर जी साहित्यकार के सामाजिक दायित्व को स्वीकार करते हैं। सामाजिक वैषम्य की पीडा का उन्होंने अनुभव किया है, और उसे स्वच्छ तथा संयत रूप में वाणी प्रदान की है। प्रगतिवादी कवि के रूप में माथुर जी की यह स्वस्थ प्रगतिचेतना निःसंदेह स्पृहणीय है, क्योंकि उसमें लकीर का फकीर बनकर वर्गसंघर्ष की भावना का विवेचन मात्र नहीं है। वस्तुतः हिन्दी कविता में नवीन सामाजिक चेतना का समावेश करने में माथुर जी का योगदान कम नहीं है, किन्तु उन्होंने उसे व्यापक नैतिक धरातल पर ही ग्रहण किया, रूढ़ सिद्धान्तवाद के रूप में नहीं।

माथुर जी के काव्य में प्रकृति सम्बन्धी कविता पूंजीवादी विकृति के खिलाफ एक जबरदस्त आवाज है। कवि ने पहली बार व्यापक पृष्ठभूमि में विस्तृत भूखण्ड का चित्रण किया है, जिसमें उनकी भूमावादी प्रवृत्ति स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। कथ्य के अभाव में विशुद्ध लेण्डस्केप उतारना भी कवि की अपनी विशेषता है।

नयी कविता के क्षेत्र में माथुर जी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है— नवीन वैज्ञानिक चेतना का सूत्रपात, वैज्ञानिक उपकरणों को काव्य-सामग्री के रूप में प्रस्तुत करके कवि ने अछूते क्षेत्र का उद्घाटन किया है। इसके साथ ही विज्ञान की बौद्धिकता व काव्य की भावनात्मकता में ऐक्य स्थापित किया है। वैज्ञानिक प्रगति के परिप्रेक्ष्य में मानव-विकास की संभावनाओं के प्रति आशा व्यक्त की गई है। इस दृष्टि से ''पृथ्वीकल्प'' सुन्दर प्रतीक नाट्य है।

जीवन में संघर्ष एक ऐसी शक्ति फूंकता है जिससे जीवन को सार्थकता मिलती

---

१. कवि माथुर से साक्षात्कार।

है। जो संघर्ष-विमुख होते हैं, उनका जीवन व्यर्थ जाता है। माथुर जी परिस्थितियों से समझौता करने में कतई विश्वास नहीं करते। अपने उद्देश्य की पूर्ति में सत्य और यथार्थ जीवन में आस्था रखने पर जो संघर्ष करना पड़ता है, उसमें कोई लाभ नहीं देता। वे समझौता किसी भी परिस्थिति में उचित नहीं मानते। समझौता यदि जीवन की अनिवार्यता बन जाये, तो भी कवि झुकने को तैयार न होगा। यह उनके काव्य की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

माथुर जी की कविता का बिम्ब-विधान परम्परावादी बिम्ब-विधान से अलग है, इनकी कविता की जीवन-दृष्टि अलग है, और इनकी काव्य-मान्यतायें भिन्न है।

सूक्ष्म भाव-संवेदनाओं को अभिव्यंजित करने के लिए उन्होंने नये-नये तथा संश्लिष्ट उपमानों की योजना की है, जिनमें गुण-साम्य व प्रभाव पर विशेष बल दिया है।

भाषा के क्षेत्र में नयी कविता ने युगान्तकारी परिवर्तन किया है। कवि माथुर जी ने नयी कविता को सरलता-सादगी और विशिष्टता प्रदान की है। उनके काव्य में प्रगति और प्रयोग का अद्भुत सामंजस्य मिलता है। विषयानुकूल भाषा का प्रयोग माथुर जी के काव्य की विशेषता है। संस्कृत, उर्दू-फारसी, अंग्रेजी, आदि सभी भाषाओं के शब्द इनकी रचनाओं में प्राप्त हैं। कवि की एक विशेष प्रवृत्ति है, शब्द गढ़ना अथवा संगीत उत्पन्न करने के लिये उनके प्रचलित रूप में परिवर्तन करना, जैसे—चंदनी-चाँदिनि अथवा चँदिरा-चन्द्रिका। विषय को प्रभावशाली प्रामाणिक तथा जीवन्त बनाने के लिये उन्होंने देशज शब्दों का भी प्रयोग किया है, यथा – फरिया, हउरी, सुनैती आदि।

शब्दों के प्रति सजगता नयी कविता की चेतना का एक अनिवार्य अंग है, अतः इस क्षेत्र में माथुर जी के मौन की महत्ता स्वयं सिद्ध है। उनकी दृष्टि आस-पास के वातावरण से उपयुक्त शब्दों को चुनती रहती है, और आवश्यकता पड़ने पर वे अपनी ओर से शब्द रच लेते हैं, कभी समास योजना के नवेपन से, कभी ध्वनि की नवीनता से।

शब्दों की व्यञ्जनात्मकता व लयात्मकता का भी कवि ने पूरा-पूरा ध्यान रखा है। उन्होंने प्रत्येक शब्द की आत्मा को उद्घाटित करने की चेष्टा की है। उनके द्वारा व्यंजित अर्थ-व्यंजनाओं को स्पष्ट किया है। कुछ शब्दों को कवि ने वातावरण का ध्वनि-भाव लेकर गढ़ा है, जिनमें प्रमुख हैं—सुनसान तथा बंडेरों आदि।

गीतों की परम्परागत टेकनीक में भी माथुर जी ने परिवर्तन किया है। उन्होंने सर्वत्र चार पंक्ति वाले चरणों का निर्वाह नहीं किया है। भावाभिव्यंजना की आवश्यकतानुसार उन्होंने गीत के बीच में अनुकान्त पंक्तियों का प्रयोग भी किया है। इससे यांत्रिक रूपाकार में काफी परिवर्तन हुआ है और गीतों में भावविस्तार के लिए स्वतंत्रता भी मिली है।

माथुर जी ने पहली बार समसामयिक काव्य की तुलना में परम्परा से हटकर

गीत को नये धरातल पर प्रतिष्ठित किया और नये उपमानों और प्रतीकों के माध्यम से भाषा को बिम्बात्मकता की ओर मोड़ दिया। समसामयिक गीतों में माथुर जी के गीत इसलिये भी अलग हैं कि उनकी गीतात्मकता में आधुनिक भाव और सौन्दर्यबोध है, सामन्ती रोमांस नहीं।

माथुर जी नई कविता की बदलती हुई प्रवृत्तियों और परिस्थितियों के साथ आरंभ से लेकर आज तक जुड़े हुए हैं। सन् १९३७ के आसपास आपने काव्य-क्षेत्र में प्रवेश किया, और तभी से नये प्रतीक, नये बिम्ब, एवं काव्य-वस्तु में भाव और शिल्प के नवीन प्रयोग करते हुए वे निरन्तर काव्य-साधना में तत्पर हैं। आपने नयी कविता को आशा और विश्वास का स्वर दिया है तथा उसमें शील की प्रतिष्ठा करके भविष्य की संभावनाओं का मार्ग प्रशस्त किया है।

माथुर जी उन विकासशील कवियों में से हैं जिन्होंने किसी वाद-विशेष की परिधि में सीमित होकर काव्य-रचना नहीं की है। सब प्रकार के वादों और गुटों से बचकर आपने ईमानदारी के साथ कथ्य और शिल्प-विधान में अभिनव प्रयोग किये हैं। आधुनिक हिन्दी कविता की विभिन्न धाराओं की अतिवादी प्रवृत्तियों से अपने को अछूता रख, उन्होंने उनके बीच परस्पर समन्वय स्थापित किया है।

कवि माथुर की समस्त रचनाओं को पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि वे बहुल आयामी व्यक्तित्व के कवि हैं। प्रकृति, प्रणय, रंग, रस, रोमांस, नई प्रगीतात्मकता, निकटतम सत्यों की अभिव्यक्ति, प्रगतिशील ऐतिहासिकता और वैज्ञानिक युग की विराट पीठिका पर उनकी प्रतिभा फैली हुई है।

ऐसे व्यक्तित्व के धनी और यशस्वी साहित्यकार श्री गिरिजा कुमार माथुर को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा वर्ष १९८२-१९८३ के लिए सम्मानित किया गया था।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

हिन्दी

(१) आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ —मोहन वल्लभ पंत

(२) आज का हिन्दी साहित्य —प्रकाश चन्द्र गुप्त

(३) आधुनिक कविता —ओम प्रकाश शर्मा

(४) आधुनिक काव्य धारा —केसरी नारायण शुक्ल

(५) आधुनिक गीति काव्य —सच्चिदानन्द तिवारी

(६) आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि गिरिजा कुमार माथुर —भूमिका डा० कैलाश वाजपेयी, ले० डा० नगेन्द्र

(७) अत्याधुनिक हिन्दी-साहित्य —कुमार विमल

(८) आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ —डा० नामवर सिंह

(९) आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ —डा० नगेन्द्र

(१०) आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प —डा० कैलाश वाजपेयी

(११) आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ —डा० नगेन्द्र

(१२) आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा —विश्वम्भर नाथ उपाध्याय

(१३) आधुनिक हिन्दी साहित्य —डा० नगेन्द्र

(१४) आधुनिक हिन्दी गीति काव्य विषय और शिल्प —जीवन प्रकाश जोशी

(१५) आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार विधान —डा० जगदीश नारायण त्रिपाठी

(१६) आधुनिक हिन्दी साहित्य —अज्ञेय

(१७) आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि —डा० सुरेश चन्द्र निर्मल

(१८) आलोचना की कुछ नई दिशाएँ —रामप्रसाद मिश्र

(१९) आधुनिक कवियों का जीवन-दर्शन —डा० परशुराम शुक्ल

(२०) आधुनिक हिन्दी कविता —सं० जगदीश चतुर्वेदी

(२१) आधुनिक हिन्दी व्याकरण —डा० कैलाश चन्द्र अग्रवाल
(२२) आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली —डा० रांगेय राघव
(२३) कविता के नये प्रतिमान —नामवर सिंह
(२४) कवि कर्म और काव्य भाषा —परमानन्द श्रीवास्तव
(२५) काव्य रचना प्रक्रिया —सं० डा० कुमार विमल
(२६) गिरिजा कुमार माथुर नई कविता के परिप्रेक्ष्य में —डा० विजय कुमारी
(२७) छाया मत छूना मन —गिरिजा कुमार माथुर
(२८) छायावादोत्तर हिन्दी प्रगति —विनोद गोदरे
(२९) जो बँध नहीं सका —गिरिजा कुमार माथुर
(३०) तारसप्तक —सं०-अज्ञेय
(३१) धूप के धान —गिरिजा कुमार माथुर
(३२) नयी कविता सीमाएँ और संभावनाएँ —गिरिजा कुमार माथुर
(३३) नयी कविता —डा० विश्वम्भर मानव
(३४) नया हिन्दी काव्य —डा० शिवकुमार मिश्र
(३५) नयी कविता और उसका मूल्यांकन —सुरेश चन्द्र सहल
(३६) नयी कविता —नन्द दुलारे वाजपेयी
(३७) नयी कविता —जगदीश गुप्त
(३८) नयी कविता स्वरूप और समस्यायें —डा० जगदीश गुप्त
(३९) नयी कविता का स्वरूप विकास —श्याम सुन्दर घोष
(४०) नयी कविता की चेतना —जगदीश कुमार
(४१) नया साहित्य नये प्रश्न —नन्द दुलारे वाजपेयी
(४२) नयी कविता का परिप्रेक्ष्य —परमानन्द श्रीवास्तव
(४३) नया सतक —सं० डा० राकेश गुप्त एवं श्री ऋषि-कुमार चतुर्वेदी
(४४) नयी कविता प्रेरणा एवं प्रयोजन —डा० विजय द्विवेदी
(४५) नया काव्य नये मूल्य —ललित शुक्ल
(४६) नया हिन्दी काव्य —डा० शिवकुमार मिश्र
(४७) नया हिन्दी काव्य और विवेचना —शम्भुनाथ चतुर्वेदी
(४८) नयी कविता के प्रतिमान —लक्ष्मीकान्त वर्मा
(४९) नयी कविता का भविष्य —गिरिजा कुमार माथुर
(५०) नयी कविता परिवेश, प्रवृत्ति एवं अभिव्यक्ति —डा० गोविन्द रजनीश

(५१) नयी कविता उद्भव और विकास —रामवचन राय
(५२) नयी कविता में बिम्ब का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य —दिल्ली, मैकमिलन, १९७५
(५३) नयी कविता रचना प्रक्रिया —ओम प्रकाश अवस्थी
(५४) नयी कविता प्रेरणा एवं प्रयोजन —विनय द्विवेदी
(५५) नयी कविता उद्भव और विकास —डा० रामवचन राय
(५६) नयी कविता नये कवि —विश्वम्भर मानव
(५७) नयी समीक्षा के प्रतिमान —डा० निर्मला जैन
(५८) प्रयोगवाद और नयी कविता —डा० शम्भुनाथ सिंह
(५९) प्रयोगवादी नयी कविता और हस्ताक्षर-परिशोध —डा० श्रीमोहन प्रदीप
(६०) प्रयोगवादी काव्यधारा —डा० रमाशंकर तिवारी
(६१) भारतीय शैलीविज्ञान —डा० सत्यदेव चौधरी
(६२) भाषा युगबोध और कविता —डा० रामविलास शर्मा
(६३) रीति विज्ञान —डा० विद्यानिवास मिश्र
(६४) पाश्चात्य काव्यशास्त्र —डा० नगेन्द्र
(६५) शैली विज्ञान की रूपरेखा —डा० कृष्ण कुमार शर्मा
(६६) शैली विज्ञान —डा० भोलानाथ तिवारी
(६७) शैली विज्ञान —डा० नगेन्द्र
(६८) शिलापंख चमकीले —गिरिजा कुमार माथुर,
(६९) समकालीन साहित्य आलोचना को चुनौती —डा० बच्चन सिंह
(७०) साक्षी रहे वर्तमान —गिरिजा कुमार माथुर
(७१) संरचनात्मक शैलीविज्ञान —डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव
(७२) साहित्य की संरचना —डा० सुरेश कुमार
(७३) सप्तक त्रय : आधुनिकता एवं परम्परा —डा० सूर्यप्रकाश
(७४) हिन्दी कविता आधुनिक आयाम —डा० रामदरश मिश्र
(७५) हिन्दी की नयी कविता —वी० नारायणन
(७६) हिन्दी कविता तीन दशक —डा० रामदरश मिश्र
(७७) हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि लेखक —डा० उषा यादव डा० राजकिशोर सिंह
(७८) हिन्दी वाक्य रचना —चतुर्भुज सहाय
(७९) हिन्दी नवस्वच्छन्दतावाद —डा० नरेन्द्र देव वर्मा
(८०) हिन्दी गीतिकाव्य —डा० रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

सहायक शोध प्रबन्ध

(१) नयी कविता में रोमानी और यथार्थवादी भूमिका
शोधकर्ता—देवराज आर्य, क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा-१९८० ।

(२) नयी कविता में प्रगतिशील तत्व (सन् १९५० से ७०)
शोधार्थी—कु० कुसुमलता मिश्रा, क० मुं० हिन्दी एवं भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा ।

(३) आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब योजना—१९७०
शोधार्थी—श्रीमती कान्ता शर्मा, क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा ।

(४) घनानन्द की भाषा,
श्रीमती विद्यावती वर्मा, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।

(५) प्रयोगवादी हिन्दी कविता में कल्पना एवं अप्रस्तुत विधान,
श्री मोहन शर्मा १९७१, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।

(६) रामचरित मानस का शैली वैज्ञानिक अध्ययन,
श्रीमती राजरानी शर्मा—१९८४, क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा ।

अंग्रेजी

(१) ए० एफ० स्काट	—मौलिंग एण्ड स्टाइल लंदन, १९५१
(२) एफ० एल० ल्युकस	—स्टाइल (लंदन) १९६५
(३) हरबर्ट रीड	—इंग्लिश प्रोज स्टाइल बोस्टन, १९६३
(४) आइ० ए० रिचर्ड्स	—प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म लंदन, १९६४
(५) आइ० ए० रिचर्ड्स	—ए क्रिटिक आफ माडर्न पोयट्री
(६) जान स्पेंसर	—एन एप्रोच टु दि स्टडी आफ स्टाइल
(७) लुइस मैकनाइस	—माडर्न पोयट्री
(८) माइकेल ग्रेगरी	—एन एप्रोच टु दि स्टडी आफ स्टाइल
(९) वाल्टर रैले	—स्टाइल, लंदन, १९२५
(१०) वी० के० गोकक	—दि पोयटिक एप्रोच टु लैंग्वेज, लंदन, १९५२

पत्र-पत्रिकाएँ

कल्पना	—मार्च, १९५९, मार्च १९६०, मई १९५६
नयी कविता	—अंक ६

आलोचना	—अंक-१२, १४, ८
अवन्तिका	—जनवरी, १९५६
संरचनावाद	—आलोचना, ३८ संपादक—नामवर सिंह
अवन्तिका	—काव्यालोचनांक
माधुरी	—अप्रैल १९२८, सितम्बर १९४१ और अगस्त १९४५
माध्यम	—जुलाई, १९६४
रूपाभ	—फरवरी-जुलाई-१९३५, जनवरी-फरवरी-१९३९
हंस	—प्रगति अंक, अगस्त १९४५
आलोचना	—काव्यभाषा और काव्येत्तर भाषा, त्रैमासिक दिल्ली, १९६३, विद्यानिवास मिश्र
दिनमान	—दिल्ली भाग-५, अंक-२५, २० जुलाई, १९६९